[1990] 1 उम० नि० प० 844

चरण लाल साहू

बनाम

भारत संघ;

राकेश श्रौति

बनाम

भारत संघ और अन्य;

राजकुमार केसवानी

बनाम

भारत संघ और अन्य; तथा

नसरीन बी श्रौर अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

22 दिसंबर, 1989

मुख्य न्यायमूर्ति सब्यसाची मुखर्जी तथा

न्यायमूर्ति के० एन० सिंह,

एस० रंगनाथन, ए० एम० अहमदी और के० एन० साइकिया

संविधान, 1950—अनुच्छेद 14, 19 (1) (छ) तथा 21 [सपठित भोपाल गैस विभीषिका (दावा कार्यवाही) अधिनियम, 1985 की धारा 3, 4, 5, 9 तथा 10]—अधिनियम की सांविधानिक विधिमान्यता—गैस पीड़ित व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए भारत सरकार को दी गई शक्ति तथा पीड़ित व्यक्तियों को स्वयं अपना प्रतिनिधित्व करने से वंचित करने मात्र से अधिनियम संविधान के उक्त अनुच्छेद 14, 19 (1) (छ) तथा 21 का अतिक्रमण नहीं करता, अतः अधिनियम सांविधानिक दृष्टि से विधिमान्य है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 14, 19 (1) (छ) तथा 21 [सपठित भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम, 1985 और भोपाल गैस विभीषिका (दावा रजिस्ट्रीकरण और कार्यवाही) स्कीम, 1985]—दांडिक दायित्व—अधिनियम में दांडिक दायित्व के संबंध में उपबंध करना तात्पर्यित नहीं है, अतः अधिनियम दांडिक दायित्व के संबंध में किसी अधिकार को कम नहीं करता और इसलिए इस आधार पर अनुच्छेद 14, 19 (1) (छ) और 21 का अतिक्रमण नहीं करता।

भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम, 1985 (1985 का 21)--धारा 2 (ख) तथा 3—दायित्व का निर्धारण—अधिनियम विभीषिका से संबद्ध या उससे उद्भूत होने वाले दावों की तुष्टि सुनिश्चित करने के लिए पारित किया गया है, किंतु उसमें दायित्व के विस्तार के संबंध में कोई उपबंध नहीं है, अतः वह दायित्व को न तो कम करता है और न उसकी सीमा निर्धारित करता है।

भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम, 1985 (1985 का 21)—धारा 3 (सपठित प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक सिद्धांत)—दावेदारों का प्रतिनिधित्व करने की सरकार की शक्ति—मात्र इस आधार पर कि यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड में भारत सरकार द्वारा नियंत्रित कुछ वित्तीय संस्थाओं के अंश हैं—उक्त धारा 3 द्वारा केंद्रीय सरकार को प्रदत्त दावेदारों का प्रतिनिधित्व करने की शक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि ऐसे अंशों के बावजूद केंद्रीय सरकार को अधिनियम तथा भोपाल गैस विभीषिका (दावा-रजिस्ट्रीकरण और कार्यवाही) स्कीम, 1985 के अधीन कार्य करने की शक्ति प्रभुत्व-संपन्न संरक्षक के नाते है।

भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम, 1985—धारा 3—अंतरिम राहत—यद्यपि अधिनियम में दावेदारों को अंतरिम राहत देने के संबंध में कोई उपबंध नहीं है फिर भी उक्त अधिनियम के समुचित अर्थान्वयन का प्रभाव यह है कि अंतरिम राहत देने की बाध्यता अधिनियम तथा उसके अधीन बनाई गई स्कीम में अंतर्निहित है।

भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम, 1985—धारा 3—[सपठित भोपाल गैस विभीषिका (दावा-रजिस्ट्रीकरण और कार्यवाही) स्कीम, 1985]—पीड़ित व्यक्तियों का हित—दावेदारों का प्रतिनिधित्व करने की केंद्रीय सरकार की उक्त धारा 3 के अधीन शक्ति के संबंध में यह नहीं कहा जा सकता कि उससे भारत संघ और पीड़ित व्यक्तियों के हितों में संघर्ष होता है क्योंकि भारत सरकार को किन्हीं दावेदारों के संबंध में निर्णय करने की शक्ति नहीं दी गई है बल्कि पीड़ित व्यक्तियों के दावों के लिए मुकदमा करने की शक्ति दी गई है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि भारत संघ स्वयं अपने ही मामले का निर्णायक बन गया है और इसलिए उक्त धारा 3 नैसर्गिक न्याय के इस सिद्धांत का अतिक्रमण नहीं करती कि किसी व्यक्ति को स्वयं अपने मामले का निर्णायक नहीं होना चाहिए।

भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम, 1985—धारा 3—आवश्यकता का सिद्धांत—यद्यपि कि भारत सरकार संयुक्त अपकृत्यकर्ता है अथवा नहीं, यह पृथक् निर्णय का विषय है किंतु यदि यह मान भी लिया जाए तो भी प्रस्तुत मामले में भारत संघ और पीड़ित व्यक्तियों के बीच हितों का संघर्ष नहीं माना जाएगा, क्योंकि आवश्यकता का सिद्धांत लागू होगा अतः यह नहीं कहा जा सकता कि धारा 3 से नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का अतिक्रमण होता है।

भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम, 1985—धारा 3 [सपठित भोपाल गैस विभीषिका (दावा-रजिस्ट्रीकरण और कार्यवाही) स्कीम, 1985]—

1989(12) eILR(PAT) SC 1

उक्त धारा 3 के अधीन दावेदारों का प्रतिनिधित्व करने की केंद्र सरकार की शक्ति को अमार्गदर्शित अथवा अनियंत्रित नहीं कहा जा सकता।

भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम, 1985—धारा 4 [सपठित भोपाल गैस विभीषिका (दावा-रजिस्ट्रीकरण और कार्यवाही) स्कीम, 1985]—सुनवाई का अवसर—किसी परिनिर्धारण से पूर्व पीड़ित व्यक्तियों को नोटिस देकर उन्हें सुनवाई का अवसर देना उक्त धारा 4 तथा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के अनुसार आवश्यक है।

भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम, 1985—धारा 11 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, आदेश 1, नियम 8 (4) तथा आदेश 23, नियम 1 तथा 3-ख]—सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध—उक्त धारा 11 द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता का लागू होना अभिव्यक्ततः अपवर्जित नहीं किया गया है, किंतु इस अधिनियम के अधीन किसी वाद या कार्यवाही को आदेश 1 का नियम 8 (4) और आदेश 23 का नियम 1 लागू नहीं होंगे किंतु आदेश 23 का नियम 3-ख लागू होगा।

'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' का सिद्धांत [सपठित संविधान का अनुच्छेद 38, 39 तथा 29-क और भोपाल गैस विभीषिका (दावा कार्यवाही) अधिनियम, 1985]—संविधान के उक्त उपबंधों तथा अधिनियम के उपबंधों एवं प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक के सिद्धांत का प्रभाव यह है कि राज्य प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक के दायित्व को संविधान तथा अधिनियम के अधीन अपनी बाध्यता की पूर्ति के लिए ग्रहण कर सकता है।

प्रशासनिक विधि [सपठित भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम, 1985]—किसी अधिनियम के उपबंधों की सांविधानिकता का विनिश्चय उन उपबंधों के प्रवर्तन की परिधि के आधार पर किया जाता है न कि इस आधार पर कि उनके द्वारा प्रदत्त शक्ति का अनुचित प्रयोग किया जा सकता है अतः इस आधार पर उक्त अधिनियम को असंवैधानिक नहीं कहा जा सकता।

कानूनों का निर्वचन—सारगर्भित—अर्थान्वयन—न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह संबद्ध कानून की आत्मा ढूंढ़ने का प्रयास करे।

नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत (सपठित भारत का संविधान)—हमारे देश के संविधान में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को आधारभूत स्थान प्राप्त है, अतः जहां किसी कानून द्वारा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत को अपवर्जित किया गया हो, वहां न्यायालयों को सूक्ष्म संवीक्षा करनी चाहिए।

नैसर्गिक न्याय का सिद्धांत—'दूसरे पक्ष को भी सुनो' का सिद्धांत—उक्त सिद्धांत मूलभूत सिद्धांत है, किंतु जहां मामले की परिस्थितियों में उक्त सिद्धांत के अननुपालन से अन्याय न हुआ हो, वहां इस आधार पर कार्यवाही को अविधिमान्य नहीं घोषित किया जा सकता।

न्यायालय की प्रक्रिया और पद्धति—यदि न्यायालय का एक न्यायपीठ दूसरे न्यायपीठ को किसी सीमित प्रश्न के अवधारण के लिए निदेश करता है तो दूसरे न्यायपीठ को अधिकारिता मात्र उस प्रश्न के अवधारण तक ही सीमित होती है।

राज्य की प्रभुत्वसंपन्न शक्ति—प्रभुत्वसंपन्न शक्ति को सामान्य कल्याण से संबंद्ध परिस्थितियों में समायोजित किया जा सकता है।

अपकृत्य विधि [सपठित भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम, 1985]—उक्त अधिनियम तथा अपकृत्य विधि के अधीन सिविल दायित्व के संबंध में दंड के सिद्धांत से अधिक महत्व प्रतिकर के सिद्धांत को दिया गया है।

2 दिसंबर, 1984 को भोपाल नगर में मानव इतिहास की सर्वाधिक त्रासद औद्योगिक दुर्घटना हुई। यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड के भंडार टैंक से प्राणहर गैस विपुल मात्रा में निकल पड़ी, परिणामस्वरूप कम से कम लगभग 3,000 लोगों की मृत्यु हो गई और लाखों की संख्या में लोग प्रभावित हुए जिनमें से अधिकांश लोग और उनकी संतानें अभी भी अनेक रोगों से पीड़ित हैं और इसका कुप्रभाव अगली पीढ़ियों पर भी पड़ रहा है और आगे भी पड़ने वाला है।

यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड एक अंतराष्ट्रीय निगम की समनुषंगी कंपनी है, जिसके 22 प्रतिशत अंशों के स्वामी भारतीय जीवन बीमा निगम तथा भारतीय यूनिट ट्रस्ट भी हैं, जो भारत सरकार के वितीय नियंत्रण में कार्य करते हैं। दिसंबर, 1984 और जनवरी, 1985 के बीच अनेक पीड़ित (शिकार) व्यक्तियों की ओर से अमेरिका के न्यायालयों में वाद फाइल किए गए। कुछ वाद भोपाल के जिला न्यायालय में भी फाइल किए गए। फरवरी, 1985 में संयुक्त राज्य अमेरिका के विविध जिला न्यायालयों में फाइल किए गए वादों को समेकित किया गया और उन्हें जज कीनन के न्यायालय में विनिश्चयार्थ भेजा गया। 29 मार्च, 1985 को भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम, 1985 पारित किया गया कि भोपाल गैस विभीषिका से उद्‌भूत होने वाले या उससे संबद्ध दावों के संबंध में कार्यवाही शीघ्रतापूर्वक, प्रभावी रूप में और साम्यापूर्ण रीति में की जा सके। 8 अप्रैल, 1985 को अधिनियम के आधार पर भारत संघ ने जज कीनन के समक्ष परिवाद फाइल किया। 16 अप्रैल, 1985 को जज कीनन ने निम्नलिखित निदेश दिए—

(i) एक त्रिसदस्यीय कार्यपालक समिति बनाई जाए, जो इस मामले के विवाद्यक विरचित करे और उनका विकास करे तथा विचारण के लिए अथवा समझौता वार्ता के लिए शीघ्रतापूर्वक तैयारी करे। यह समिति भारत संघ द्वारा प्रतिधारित फर्म द्वारा चुने गए एक विधि व्यवसायी तथा व्यष्टिक वादियों द्वारा प्रतिधारित विधि व्यवसायियों द्वारा चुने गए दो अन्य विधि व्यवसायियों द्वारा गठित होनी थी।

(ii) मूल मानवीय शिष्टता का यह तकाजा है कि आहत व्यक्तियों को अस्थायी अनुतोष दिया जाए और यह अनुतोष एक प्रणालीबद्ध और समुचित रूप में बिना अनावश्यक विलंब के और तत्समय लंबित मुकदमेबाजी की स्थिति से निरपेक्षतः दिया जाता रहे।

1989(12) eILR(PAT) SC 1

अधिनियम की धारा 9 के अधीन भारत सरकार ने भोपाल गैस विभीषिका (दावा-रजिस्ट्रीकरण और कार्यवाही) स्कीम, 1985 विरचित की। संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यायालयों ने इस मामले को असुविधाजनक अधिकरण (फोरम नान कनविनिएन्स) के अभिवाक् के आधार पर खारिज कर दिया, किंतु साथ ही निम्नलिखित निदेश दिए—

1. कारपोरेशन भारत के न्यायालयों की अधिकारिता स्वीकार करेगा और परिसीमा कानून पर आधारित प्रतिवादों का अधित्यजन करता रहेगा;

2. कारपोरेशन भारतीय न्यायालय द्वारा अपने विरुद्ध दिए गए किसी भी निर्णय या यदि वह अपील योग्य है तो अपील पर संपुष्ट किए गए निर्णय की संपुष्टि करने के लिए सहमत रहेगा, किंतु यह तब जबकि निर्णय या संपुष्ट निर्णय 'सम्यक् प्रक्रिया की न्यूनतम अपेक्षाओं के अनुरूप हों'; और

3. कारपोरेशन वादियों द्वारा समुचित मांग किए जाने के पश्चात् संयुक्त राज्य की सिविल प्रक्रिया के संघीय नियमों के अधीन प्रकटीकरण के अध्यधीन होगा।

5 सितंबर, 1986 को भारत संघ ने नुकसानी के लिए वाद भोपाल के जिला न्यायालय में फाइल किया, जिसका अंतिम निपटारा उच्चतम न्यायालय द्वारा 14 तथा 15 फरवरी, 1989 के आदेशों द्वारा किया गया। न्यायालय का निष्कर्ष था कि यह मामला इस बात के लिए अत्यंत समुचित मामला है कि पक्षकारों के बीच ऐसा समझौता कराया जाए या मामले का इस प्रकार निपटारा किया जाए, जिसकी परिधि में इस विभीषिका से उत्पन्न होने वाले या उससे संबद्ध सभी मुकदमे, दावे, अधिकार और दायित्व आ जाएं और अन्य आदेशों के साथ-साथ निम्नलिखित आदेश पारित करना न्यायोचित, साम्यापूर्ण और युक्तियुक्त पाया गया—

(1) यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन भोपाल गैस विभीषिका से संबद्ध और उससे उत्पन्न होने वाले सभी दावों, अधिकारों और दायित्वों के पूर्ण परिनिर्धारण के रूप में भारत संघ को 470 मिलियन अमेरिकी डालर की राशि का संदाय करेगा।

(2) पूर्वोक्त राशि का संदाय यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन द्वारा भारत संघ को 31 मार्च, 1989 को या उससे पूर्व किया जाएगा।

(3) परिनिर्धारण को प्रभावी करने में समर्थ बनाने के लिए, भोपाल गैस विभीषिका से संबद्ध और उससे उत्पन्न होने वाली सभी सिविल कार्यवाहियां उच्चतम न्यायालय को एतद्द्वारा अंतरित हो जाएंगी और उनका इस परिनिर्धारण के निबंधनों के अनुसार निपटारा हो जाएगा और विभीषिका से संबद्ध और उससे उत्पन्न होने वाली सभी दांडिक कार्यवाहियां, वे जहां कहीं भी लंबित हों, अभिखंडित हो जाएंगी········।"

तत्पश्चात् एक लिखित ज्ञापन फाइल किया गया और न्यायालय ने 15 फरवरी, 1989 को उस पर सम्यक् विचार करने के पश्चात् आदेश पारित किया। परिनिर्धारण के निबंधन निम्नलिखित थे—

"1. पक्षकार यह अभिस्वीकार करते हैं कि 14 फरवरी, 1989 का आदेश 1986 के वाद सं० 1113 में सभी कार्यवाहियों का संपूर्णतः निपटारा करता है। यह परिनिर्धारण यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन, यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड, यूनियन कार्बाइड ईस्टर्न और उनकी सभी समनुषंगी कंपनियों तथा सहयोजित कंपनियों के विरुद्ध एवं उनके वर्तमान और भूतपूर्व प्रत्येक निदेशक, अधिकारी, कर्मचारी, अभिकर्ता, प्रतिनिधि, अटर्नी, अधिवक्ता और सालिसिटर के विरुद्ध सभी विगत, वर्तमान और भावी दावे, वाद हेतुक तथा सिविल और दांडिक कार्यवाहियां (वे जहां कहीं भी लंबित हों और उनकी प्रकृति कुछ भी हो) जो भोपाल गैस विभीषिका से संबद्ध हों और सभी विगत, वर्तमान या भावी मृत्युओं, वैयक्तिक क्षतियों, स्वास्थ्य पर पड़े प्रभावों, प्रतिकर, हानि, नुकसानी और सिविल तथा दांडिक परिवादों की बाबत, चाहे वे किसी भी प्रकृति के हों, सभी भारतीय नागरिकों और सभी लोक या प्राइवेट सत्ताओं द्वारा किए गए या किए जाने वाले सभी ऐसे दावे और वाद हेतुक, जिनके अंतर्गत एक दूसरे के विरुद्ध किए गए या किए जाने वाले सभी विगत, वर्तमान और भावी दावे, वाद हेतुक और कार्यवाहियां आएंगी, वे चाहे भारत के भीतर हों या उसके बाहर एतद्द्वारा निर्वापित हो गए हैं और उनके अंतर्गत भोपाल गैस विभीषिका (दावा-रजिस्ट्रीकरण और कार्यवाही) स्कीम, 1985 के अधीन फाइल किए गए या फाइल किए जाने वाले सभी दावे बिना किसी निर्बंधन के आते हैं और भारत में ऐसी सभी सिविल कार्यवाहियां, एतद्द्वारा इस न्यायालय को अंतरित की जाती हैं और उन्हें प्रतिकूल प्रभाव सहित खारिज किया जाता है और ऐसी सभी दांडिक कार्यवाहियां, जिनके अंतर्गत अवमान कार्यवाहियां भी आती हैं, अभिखंडित की जाती हैं और अभियुक्तों के संबंध में यह समझा जाता है कि उन्हें दोषमुक्त कर दिया गया।

2. इस न्यायालय के निदेशों के अनुसार पूर्ण संदाय पर जिला न्यायालय, भोपाल में 30 नवंबर, 1986 को दिए गए आदेश के अनुसरण में यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन द्वारा दिया गया वचनबंध प्रभावोन्मुक्त किया जाता है और 1986 में वाद सं० 1113 में पारित किए गए सभी आदेश अथवा उनसे किए गए पुनरीक्षणों में पारित किए गए सभी आदेश भी प्रभावोन्मुक्त हो गए हैं।" .

उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त आदेशों तथा अधिनियम की विधिमान्यता को चुनौती देते हुए उपर्युक्त रिट याचिकाएँ फाइल की गईं। याचियों की ओर से मुख्य दलील यह दी गई कि यदि अधिनियम को उनके द्वारा बताई गई रीति में नहीं पढ़ा जाएगा तो वह पीड़ितों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघनकारी हो जाएगा और इस प्रकार असांविधानिक हो जाएगा। इस दलील के समर्थन में यह कहा गया कि भारत के संविधान के भाग 3 में अंतर्विष्ट भिन्न-भिन्न मौलिक अधिकारों से संबद्ध अनुच्छेद अधिकारों की पूर्णतः पृथक्-पृथक् धाराओं का प्रतिनिधित्व नहीं करते, जो किसी समयबिंदु पर न मिलती हों। वे सभी संविधान की अभिन्न स्कीम का भाग हैं और उन्हें अवश्य ही परिरक्षित रखना चाहिए और उन्हें मनमाने तौर पर नष्ट नहीं किया जा सकता। अतः उपचारों के लिए संघर्ष करने और अपराध के संबंध में बाध्यता के भंग से उत्पन्न होने वाले अपने अधिकारों को प्रवर्तित करने के नागरिकों के

अधिकारों को मिटाया नहीं जा सकता। अतः अधिनियम की धारा 3, 4 और 11, जहां तक उनके द्वारा ऐसा किया जाना तात्पर्यित है और उन्होंने ऐसा किया है, संविधान के अनुच्छेद 14, 19 (1) (छ) तथा 21 का अतिक्रमण करती हैं। उक्त धाराओं द्वारा परिकल्पित प्रक्रिया पीड़ित व्यक्तियों के अपने न्यायोचित शोध्यों (देयों) के संबंध में प्रकथन करने और उन्हें अभिप्राप्त करने के उनके न्यायोचित और विधिसम्मत अधिकारों से उन्हें वंचित करती है। इन अधिकारों को इस प्रकार नष्ट नहीं किया जा सकता। यह दलील दी गई कि विधि के अधीन पीड़ित व्यक्तियों को यह अधिकार है कि वे अपने अधिकारों का समर्थन करें और उनके संबंध में उपचार प्राप्त करें। यह भी दलील दी गई कि भारत संघ, यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन तथा यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड के साथ-साथ संयुक्त अपकृत्यकर्ता है। इसने ऐसे कारखाने की स्थापना अनुज्ञात करते समय उपेक्षा बरती है, क्योंकि यह कारखाना बिना समुचित रक्षोपायों के स्थापित किया गया, जिससे गैस विभीषिका के शिकार व्यक्ति और नागरिक दोनों संकट के लिए उच्छन्न हो गए। ऐसे व्यक्ति या प्राधिकारी को पीड़ित व्यक्तियों के प्रतिनिधित्व का अधिकार नहीं सौंपा जा सकता और पीड़ित व्यक्तियों को उनके अपने मामले के संबंध में अभिवचन करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता। यह दलील दी गई कि अधिनियम का उद्देश्य अत्यंत अनिष्टकर गैस विभीषिका से, जो अभूतपूर्व प्रकृति की थी, जनता को पूर्णतः संरक्षित करने का था। ऐसे उद्देश्य को दांडिक अभियोजन द्वारा दांडिक दायित्व के प्रवर्तन के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतः पीड़ित व्यक्तियों की सलाह लिए बिना समझौता करना विधि की दृष्टि से दूषित और असंवैधानिक है। यह दलील दी गई कि यदि कोई अधिनियम ऐसा समझौता या पीड़ित व्यक्तियों को अपने अधिकार से इस प्रकार वंचित किया जाना अनुज्ञात करता है, तो वह विधि की दृष्टि में दूषित है। दूसरी ओर, केंद्रीय सरकार की ओर से यह दलील दी गई कि अधिनियम भारत के संविधान के अनुच्छेद 39-क के अधीन यथा प्रतिष्ठापित निदेशक तत्वों को प्रभावी करने के लिए पारित किया गया था। यह भी दलील दी गई कि अधिनियम से नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं होता, क्योंकि अधिनियम की धारा में पीड़ित व्यक्तियों को कार्यवाही में भाग लेने का सशर्त अधिकार दिया गया है किंतु साथ ही अधिनियम की धारा 11 के अनुसार सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों को उस सीमा तक अपवर्जित कर दिया गया है, जहां तक उनका संबंध प्रतिनिधित्व और समझौते के अधिकार से है। उन्होंने यह भी दलील दी कि उच्चतम न्यायालय ने 14-15 फरवरी, 1989 का जो आदेश किया था वह उसने संविधान के अनुच्छेद 136 और 142 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए किया और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए वह शक्ति का विधिमान्य प्रयोग है। महान्यायवादी ने यह भी दलील दी कि इतनी बड़ी विभीषिका से संबद्ध मामले में न तो यह आवश्यक था और न संभव था कि पीड़ित एक-एक व्यक्ति के दावे की सीमा निर्धारित की जा सके। इसलिए समझौता आवश्यक था, क्योंकि पीड़ित व्यक्तियों को शीघ्रताशीघ्र राहत देनी थी और यह उद्देश्य अधिनियम के प्रयोजनों के लिए असंगत नहीं कहा जा सकता। साथ ही उन्होंने यह दलील दी कि औद्योगिक कार्यकलाप को विनियमित करना आवश्यक होता है और यह सरकार का कर्तव्य है और मात्र विनियमन करने के आधार पर सरकार को विभीषिका के लिए दायी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि समाज के सामाजिक-आर्थिक कल्याण के लिए सरकार को औद्योगिक कार्यकलाप के लिए अनुज्ञा देनी पड़ती है। यदि हम

1989(12) eILR(PAT) SC 1

ऐसी विभीषिकाओं के लिए लोक कोष को दायी ठहराएंगे तो देश के कल्याण के कार्यकलाप ही रुक जाएंगे और देश का विकास रुक जाएगा। यदि हम थोड़ी देर के लिए याचियों की दलील मान भी लें तो भी इस मामले की परिस्थितियों में आवश्यकता का सिद्धांत लागू होगा। उन्होंने यह भी दलील दी कि तथ्यत: प्रतिनिधित्व का सिद्धांत भी लागू होगा। उन्होंने यह भी दलील दी कि सरकार का दांडिक कार्यवाहियों के अभिखंडन से कोई संबंध नहीं है। अधिनियम ने भारत सरकार को केवल नुकसानी के लिए दावों को प्रवृत्त करने का अधिकार दिया है। दांडिक कार्यवाहियों का अभिखंडन तो उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 136 और 142 के अधीन अपनी व्यापक शक्तियों के प्रयोग में किया और उच्चतम न्यायालय को यह शक्ति है कि वह अधिनियम से आगे जाकर भी राहत देने के लिए कार्य करे, क्योंकि उच्चतम न्यायालय मात्र अपील न्यायालय नहीं है बल्कि साम्या-न्यायालय (कोर्ट ऑफ इक्विटी) भी है। रिट याचिकाओं का निपटारा करते हुए उच्चतम न्यायालय द्वारा,

अभिनिर्धारित—मु० न्या० मुखर्जी : (न्या० के० एन० साइकिया की ओर से भी) :(पैरा 1 से 131 तक)

भोपाल गैस विभीषिका (दावा कार्यवाही) अधिनियम, 1985 में पीड़ितों के अधिकारों की बाबत विशेष प्रक्रिया का उपबंध किया गया है और उस सीमा तक केंद्रीय सरकार ने पीड़ितों के अधिकार अपने हाथ में ले लिए हैं। यह एक विशेष अधिनियम है, जिसमें भोपाल गैस रिसाव विभीषिका से पीड़ितों के एक विशेष वर्ग के लिए एक विशेष प्रक्रिया का उपबंध किया गया है, क्योंकि वे बहुराष्ट्रीय निगम अर्थात् यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन और एक बड़े भारतीय निगम के विरुद्ध खड़े थे और विदेशी समाश्रित वकीलों (कंटिंजेंसी लायर्स) की मौजूदगी को ध्यान में रखते हुए, जिनके सामने पीड़ित उच्छन्न थे, दावेदारों और पीड़ितों को विधिसम्मत रूप से ऐसा वर्ग कहा जा सकता है, जो स्वयं में भिन्न और सुभिन्न है तथा पर्याप्त रूप से पृथक् और इस रूप में अभिज्ञेय है कि वह अपने दावों के प्रभावी, शीघ्रतापूर्वक और सर्वोत्तम लाभदायक रूप में परिनिर्धारण (निपटारे) के लिए विशेष व्यवसहार का हकदार है। निर्विवाद रूप से प्रभेद किया गया है। किंतु यह प्रभेद ऐसे सिद्धांत पर आधारित है, जिसका इस प्रभेद द्वारा प्राप्त किए जाने के लिए आशयित उद्देश्य से तर्कसंगत संबंध है। यह विभीषिका अपने स्वरूप में और औद्योगिक विभीषिकाओं के अभिलिखित इतिहास में विलक्षण थी क्योंकि पीड़ित एक सशक्त बहुराष्ट्रीय कंपनी के विरुद्ध थे और साथ ही विदेशी समाश्रित वकील भी इस दृश्य पर छाये हुए थे, अत: ऐसे प्रभेद और भिन्न बर्ताव के लिए पर्याप्त आधार हैं। गैस रिसाव विभीषिका के पीड़ितों को भिन्न मानने और उनके लिए ऐसी प्रक्रिया का उपबंध करने से, जो न्यायसंगत, निष्पक्ष और युक्तियुक्त है और जो संविधान द्वारा असमर्थित अथवा अप्राधिकृत नहीं है, अनुच्छेद 14 का भंग नहीं होता है। (पैरा 98)

आक्षेपित विधान में अधिष्ठायी और प्रक्रियात्मक अधिकारों पर निर्बंधन या सीमाओं के बारे में निर्णय प्रश्नगत विशेष कानून के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा। इस बारे में युक्तियुक्तता का कोई सामान्य नियम या मानक लागू नहीं किया जा सकता है। इस प्रश्न का निर्णय इस मामले में अभिकथित रूप से जिन अधिकारों का अतिलंघन किया गया है उनकी प्रकृति को, जिस बुराई का उपचार करने की ईप्सा की गई है उसके विस्तार और आत्ययिकता (अर्जेंसी) को, अननुपातिक अधिरोपण और तत्समय वर्तमान स्थितियों को ध्यान

में रखते हुए करना होगा। इन सभी तथ्यों को विचार में रखना होगा। पृष्ठभूमि, कगाल हो गए लोगों की दुर्दशा, पीड़ितों की आवश्यकता की आत्ययिकता, विदेशी समाश्रित वकीलों की मौजूदगी, सामूहिक कार्यवाही में संयुक्त राज्य अमरीका में परिनिर्धारण की प्रक्रिया, विदेशी बहुराष्ट्रीय (कंपनियों) की शक्ति, क्षतियों और नुकसानी की प्रकृति, और अधिनियम की धारा 4 द्वारा यथा अनुध्यात पीड़ितों के सम्मिलित होने के सीमित किंतु महत्त्वपूर्ण अधिकार पर विचार करने पर अधिनियम को अयुक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता। (पैरा 99)

अनेक भारतीय विनिश्चयों में ऐसे जनसाधारण के संरक्षक के रूप में राज्य की संकल्पना का उपयोग किया गया है, जो अपने अधिकारों के लिए लड़ने अथवा उनका प्राख्यान करने के लिए सक्षम नहीं हैं। पीड़ितों की ओर से यह प्राख्यान किया गया है कि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' की संकल्पना का किसी देश की आंतरिक अधिकारिता में वादों के प्रयोजनार्थ अवलंब नहीं लिया जा सकता। इसे केवल देश के बाहर विदेशी अधिकारिता के मामलों की बाबत ही लागू किया जा सकता है और उसे केवल उन व्यक्तियों को ही लागू किया जा सकता है, जो निशक्त हों तथा यह उनके मामले में लागू नहीं होगी, जो अपने अधिकारों का प्राख्यान करने में समर्थ हैं। यह सही है कि पीड़ितों अथवा उनके प्रतिनिधि स्वतः सक्षम हैं तो भी वे 'सक्षम' शब्द के व्यापक अर्थ में अत्यंत असुविधापूर्ण स्थिति में हैं। इन पीड़ितों को उन बहुराष्ट्रीय कंपनियों अथवा सरकार का कोई जोड़ नहीं समझा जा सकता, जिन परिस्थितियों में विभीषिका के पश्चात् पीड़ित अथवा उनके प्रतिनिधि शारीरिक रूप से, मानसिक रूप से, वित्तीय रूप से, आर्थिक रूप से हैं और मुकदमे की स्थिति के कारण भी पीड़ितों को विधिसम्मत रूप से निशक्त समझा जा सकता है। वे अपने हितों की प्रभावी रूप से और सौद्देश्यपूर्ण रूप से देखभाल करने की स्थिति में नहीं थे। इस पृष्ठभूमि में वे ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें राज्य के संरक्षण की आवश्यकता है और इस सामूहिक विभीषिका में दोषियों के विरुद्ध वे अपने अधिकारों का प्राख्यान करने, उन्हें सिद्ध करने और कायम रखने हेतु राज्य की प्रभुता के छत्र के अधीन आते हैं। उस परिप्रेक्ष्य में पीड़ितों को 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' के सिद्धांत को न्यायशास्त्रीय रूप से लागू करना संभव है। अपरंच इस मामले में राज्य स्वयं कानून के आधार पर कार्यवाही कर रहा है। पीड़ितों के लिए और उनकी ओर से अथवा उनके स्थान पर वाद लाने के लिए केंद्रीय सरकार के प्राधिकार के लिए स्वयं अधिनियम के अतिरिक्त किसी अन्य सिद्धांत, संकल्पना अथवा किसी न्यायशास्त्रीय सिद्धांत की आवश्यकता नहीं है। अधिनियम केंद्रीय सरकार को सशक्त करता है और उसे प्रतिस्थापित करता है। अधिनियम धारा 3 के प्रवर्तन द्वारा पीड़ितों को हटाकर उनके स्थान पर केंद्रीय सरकार को रखता है। पीड़ितों को वाद लाने के अधिकार से निर्निहित कर दिया गया है और ऐसे दावे और ऐसे अधिकार केंद्रीय सरकार में निहित कर दिए गए हैं। ऐसी स्थिति में यदि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' सिद्धांत को यथावत् लागू किया जाना उचित नहीं है, तो भी संकल्पना के रूप में यह मार्गदर्शक है। राज्य की शक्ति की अधिकारिता को प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक के पारंपरिक सिद्धांत के निर्बंधनों द्वारा सीमित नहीं किया जा सकता। न्यायशास्त्रीय रूप से इसे परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार बदला या अनुकूलित किया जा सकता है। पीड़ित जिस स्थिति में थे, उसमें राज्य को संरक्षक की भूमिका ग्रहण करनी पड़ी जिससे कि पीड़ितों के अधिकारों की संरक्षा की जा सके। अधिनियम राज्य की प्रभुत्वसंपन्न शक्ति का एक प्रयोग है। यह विशेष रूप में उद्भूत हुई स्थिति में प्रभुता की अभिव्यक्ति का समुचित विकास है। इसको इसी रूप में मानना और स्वीकार करना चाहिए। (पैरा 100)

1989(12) eILR(PAT) SC 1

यद्यपि सूचना के बिना समझौता पूरी तरह ठीक नहीं है, फिर भी अब तक उपलभ्य सामग्री के आधार पर दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के प्रति न्याय तो किया गया है, किंतु न्याय किया गया प्रतीत नहीं होता है। इस मामले में अंतर्ग्रस्त कष्टों और समस्याओं की विशालता को देखते हुए इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि से इस आधार पर समझौते को अपास्त करना अथवा प्रास्थगन में रखना और दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को विनिश्चयोत्तर सूचना देना अंततोगत्वा न्याय के हित में नहीं होगा। यह सही है कि सूचना न देना उचित नहीं था, क्योंकि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत इस देश की सांविधानिक व्यवस्था में मूलभूत स्थान रखते हैं। किसी भी व्यक्ति या व्यक्ति के अधिकार पर उसके विचारों को सुनने का अवसर दिए बिना प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। न्यायालय इस बात के प्रति भी सचेत है कि न्याय एक मनोवैज्ञानिक उत्कंठा है जिसमें मनुष्य उसके अधिकार को प्रभावित करने वाले विनिश्चय लेने के लिए व्यादिष्ट या बाध्य न्यायमंच या प्राधिकरण के समक्ष अपना दृष्टिकोण पेश करने का अवसर प्राप्त करके अपने दृष्टिकोण की स्वीकृति चाहते हैं। फिर भी विशिष्ट स्थितियों में यह ध्यान रखना होगा कि उसका उल्लंघन न्याय के अनुसार कैसे दूर किया जा सकता है। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में जहां उस समय पर्याप्त अवसर सुलभ होगा जब पुनर्विलोकन आवेदन की सुनवाई सूचना देकर की जाएगी, जैसा कि न्यायालय ने निदेश दिया है, आगे किसी अवसर की आवश्यकता नहीं है, और यह नहीं कहा जा सकता कि अन्याय किया गया है। आखिरकार, बहुत अच्छा काम करने के लिए कभी-कभी थोड़ा-सा गलत करना भी अनुज्ञेय है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह उन दुर्लभ अवसरों में से एक है, यद्यपि अपेक्षित सूचना दिए बिना समझौता करना गलत है। अतः इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में न्यायालय की राय है कि यह निदेश देना कि अब सूचना दी जाए, न्याय का संप्रवर्तन नहीं करेगा। (पैरा 124)

यह अधिनियम उच्चतम न्यायालय के निर्वचनानुसार सांविधानिक है। यह इस धारणा पर अग्रसर होता है कि जब तक दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के दावे अपराधियों, अर्थात् यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन और यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड से समझौते द्वारा या न्यायनिर्णयन द्वारा वसूल या प्राप्त नहीं हो जाते और जब तक कि उनकी बाबत कार्यवाहियां जारी रहती हैं, तब तक केंद्रीय सरकार को दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के लिए अंतरिम प्रतिकर या भरण-पोषण भत्ता संदत्त करना चाहिए। अधिनियम की धारा 4 की दृष्टि से समझौता करते समय दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के विचारों को ध्यान में रखना चाहिए और उनका सम्मान करने के प्रयोजन के लिए कोई समझौता करने से पहले समुचित सूचनाएं आवश्यक थीं। फिर भी कुछ मामलों में विनिश्चयोत्तर सूचना पर्याप्त हो सकती है, किंतु इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में 4 मई, 1989 के उच्चतम न्यायालय के आदेश में वर्णित परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तथा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि और अधिक अतिरिक्त आंकड़े और तथ्य दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के पास उपलभ्य नहीं हैं, जो समझौते के आधार का खंडन करने के लिए लाभप्रद रूप से और सार्थक ढंग से पेश किए जा सकें तथा साथ ही इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों ने अपना पक्षकथन रख दिया था या उनकी ओर से उनके विचार इन कार्यवाहियों में पेश किए गए थे और उन्हें लंबित पुनर्विलोकन कार्यवाहियों में और भी अवसर मिलेगा, विनिश्चयोत्तर सुनवाई देने से कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा, इस पहलू पर आगे कोई आदेश आवश्यक नहीं है। प्रतिकर

1989(12) eILR(PAT) SC 1

के संदाय और प्रवर्गीकरण विषयक धाराओं को उल्लिखित रीति से कार्यान्वित किया जाना चाहिए। (पैरा 127)

यह अधिनियम दु:खद औद्योगिक गैस विभीषिका के शिकार मूक, कमजोर, विनम्र और दरिद्र लोगों को राहत और सांत्वना प्रदान करने के श्रेष्ठ वचन पर सोचा गया था। इस अधिनियम ने कमजोर और थके-मांदे, चौकस और असहाय लोगों के मन में ऊंची आशाएं जगाई थीं। अधिनियम से मानवता की आशा पैदा हुई थी। अधिनियम का कार्यान्वयन न्याय के साथ होना चाहिए। कदाचित जिस रूप में दुर्घटना के शिकार व्यक्ति स्थित थे उस रूप में उनके साथ न्याय किया जा चुका है। किंतु यह भी सही है कि न्याय किया गया प्रतीत नहीं होता है। यह एक भारी कमी है। यह अंशतः इस तथ्य के कारण है, न्यायालय जैसा समझ पाया है कि प्रक्रिया का कड़ाई से पालन नहीं किया गया और अंशतः इस वातावरण के कारण भी जो देश में उत्पन्न हो गया था। न्यायिक प्रक्रिया में लोगों की आस्था भंग करने और उच्चतम न्यायालय की विश्वसनीयता को कम करने के प्रयास किए गए थे। यह दुर्भाग्यपूर्ण था। कदाचित् यह भ्रांत जन-मत के कारण और इस तथ्य के भी कारण था कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को समझौता करते समय आरंभ में विश्वास में नहीं लिया गया था। यह एक ऐसा तत्व है, जो नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के पालन की आवश्यकता पर जोर देता है। न्यायपालिका की विश्वसनीयता उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितना दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के कष्टों का निवारण। आशा है, इन न्यायनिर्णयों से वह विश्वसनीयता पुनः स्थापित होगी। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत हमारे सांविधानिक ढांचे में अखंड रूप से समाविष्ट हैं और उनकी पुरातन गरिमा और प्रधानता को स्थिति या मामले-विशेष की तात्कालिकता से विलुप्त नहीं होने दिया जा सकता और न होने दिया जाना चाहिए। इस न्यायालय को हमेशा समस्त न्यायनिर्णयों में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के पालन की श्रेष्ठता पर बल देना चाहिए किंतु साथ ही इन्हें विशिष्ट परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मामले-विशेष में एक विशिष्ट रीति से लागू किया जाना चाहिए। अतः यह दोहराना आवश्यक है कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों से किए गए वायदे और उनके दिलों और मन में जगाई गई आशाएं तभी कुछ सीमा तक पूरी की जा सकती हैं जब वसूल की गई रकम उल्लिखित रीति से स्कीम के अनुसार दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों में तेजी से वितरित की जाए यह कुछ सीमा तक कष्ट निवारण होगा। यह दोहराना भी आवश्यक है कि विधि के ऐसे सिद्धांत बनाने का प्रयास किया जाए जो सरकार और प्राधिकारियों को ऐसी सामग्री और चीजों में व्यापार करना अनुज्ञात करने के लिए मार्गदर्शन प्रदान कर सकें, जिनके खतरनाक परिणाम हो सकते हैं। ऐसा पर्याप्त विनिर्दिष्ट रक्षोपायों के अंतर्गत किया जाना चाहिए, विशेष रूप से भारत में व्यापार करने वाले और राष्ट्रीय निगमों की दशा में। इस दिशा में जागरूकता आरंभ हो गई है। आशा है कि इस जागरूकता के बाद कार्यवाही होगी। यह दोहराना भी आवश्यक है कि नुकसानी से संबंधित और अंतरित नुकसानी या प्रतिकर का इस प्रकार के शिकार व्यक्तियों को संदाय करने से संबंधित विधि का समुचित अभिकरणों द्वारा गंभीरतापूर्वक और वैज्ञानिक तरीके से विवेचन किया जाना चाहिए। (पैरा 128)

भोपाल गैस विभीषिका और उसके दुष्परिणामों से ऐसे कुछ सिद्धांत और मानदंड अधिकथित करने की आवश्यकता बलवती हो जाती है जिनका खतरनाक तत्वयुक्त सामग्री

वाले उद्योग चलाने के लिए अनुज्ञा या अनुज्ञप्तियां प्रदान करने से पूर्व, सरकार अनुसरण करे। अतः सरकार को स्वयं या विशेषज्ञ समिति द्वारा इस समस्या पर विचार करवाना चाहिए कि किन शर्तों पर भारत में उद्योग चलाने के लिए प्रभावी अनुज्ञप्तियां और/या अनुज्ञा प्रदान की जाएगी तथा इन शर्तों का प्रवर्तन सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त रक्षोपाय बनाए जाने चाहिएं और प्रवर्तन की स्कीम इंगित की जानी चाहिए। सरकार को ऐसी अनुज्ञप्तियां या अनुज्ञाएं मंजूर करने की पूर्व शर्त के रूप में उद्योगों द्वारा एक ऐसी निधि बनाए जाने पर आग्रह करना चाहिए, जो ऐसी औद्योगिक संक्रियाओं के उपेक्षापूर्ण कार्य से हुई दुर्घटना या विभीषिका की दशा में रिसाव या नुकसान होने की दशा में अथवा ऐसी घटनाओं को निवारित करने वाले उपायों को सुनिश्चित न करने की दशा में उक्त निधि में से नुकसानी के संदाय के लिए उपलभ्य हो। सरकार को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि पक्षकार परिकलन के लिए पृथक् रूप से बनाई गई प्रक्रिया द्वारा उक्त नुकसानी में से ऐसी नुकसानी का संदाय करने के लिए तथा उपेक्षापूर्ण कृत्य के शिकार या दुःखी व्यक्तियों को लंबी और विलंबित प्रक्रिया में तंग किए बिना नुकसानी के संदाय के लिए सहमत हों। विशेष प्रक्रिया का उपबंध किया जाना चाहिए और उद्योगों को अनुज्ञप्ति की मंजूरी की शर्त के रूप में ऐसी प्रक्रिया का पालन करने या कानूनी मध्यस्थ की बात मानने के लिए सहमत होना चाहिए। रिसाव और दुर्घटना की दशा में नुकसानी का आधार किए गए नुकसान की प्रकृति, उसके परिणाम और संदाय करने में पक्षकारों की योग्यता और सामर्थ्य को ध्यान में रखते हुए, कानूनी तौर पर नियत किया जाना चाहिए। इसमें भयोपरक या दंडात्मक नुकसानी का भी उपबंध किया जाना चाहिए, जिसका आधार उचित विशेषज्ञ समिति द्वारा या सरकार द्वारा बनाया जाना चाहिए। इस प्रयोजन के लिए सरकार को ऐसे निकाय से मामले की छानबीन करवानी चाहिए जैसी वह आवश्यक समझे, जैसे विधि आयोग या अन्य सक्षम निकाय। यह भविष्य के लिए महत्वपूर्ण है। (पैरा 129)

न्या० के० एन० सिंह (सम्मत निर्णय) : (पैरा 132 से 139 तक)

मानव-अधिकारों के हमारे राष्ट्रीय आयामों के संदर्भ में, संविधान के अनुच्छेद 21, 48-क और 51(छ) द्वारा जीवन, स्वतंत्रता, प्रदूषणयुक्त वायु और जल का अधिकार प्रदत्त किया गया है। राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह इन गारंटीकृत सांविधानिक अधिकारों को संरक्षण प्रदान करने के लिए प्रभावी कदम उठाए। हमारी अपनी संप्रभुता को ध्यान में रखते हुए, पारदेशीय निगमों पर संयुक्त राष्ट्र आचरण संहिता के खंड 9 और 13 द्वारा यथा उपदर्शित, पारदेशीय आयाम और मानक विकसित करके इन अधिकारों को एकीकृत और स्पष्ट किया जाना चाहिए। हमारे लोगों की गरिमा और संप्रभुता को कायम रखते हुए, अंतर्राष्ट्रीय बाध्यताओं के विकासशील मानकों को सम्मान दिया जाना चाहिए और राज्य को विधियां अधिनियमित करके नागरिकों के सांविधानिक अधिकारों को रक्षोपाय प्रदान करने के लिए प्रभावी कदम उठाने चाहिए। इस प्रकार बनाई गई विधियों में, जीवन, स्वतंत्रता तथा पर्यावरण और परिवेश की सुरक्षा से संबंधित सांविधानिक अधिकारों को सुनिश्चित करते हुए, भारतीय भूमि पर उद्योग चलाने के लिए नियम और मानक विहित करते हुए, पारदेशीय निगमों को अनुज्ञप्ति मंजूर करने हेतु शर्तों का उपबंध किया जा सकता है, जिससे कि लोग स्वस्थ और स्वच्छ जीवन व्यतीत करने में समर्थ हो सकें। पारदेशीय निगम को हमारे देश की

1989(12) eILR(PAT) SC 1

विधियों का अनुसेवी और दायी बनाया जाना चाहिए तथा दायित्व केवल संबद्ध कंपनी तक ही निर्बंधित नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि मुख्य निगम को भी मनुष्यों या परिवेश को कारित किसी भी नुकसान के लिए दायी बनाया जाना चाहिए। विधि में यह अपेक्षा अवश्य ही की जानी चाहिए कि पारदेशीय निगम ऐसी नुकसानी का संदाय करने के लिए सहमत हो, जो उसके अधीन गठित कानूनी अभिकरणों और फोरमों (न्यायाधिकरणों) द्वारा अवधारित की जाए तथा दुर्घटना से पीड़ित व्यक्तियों को लंबी मुकदमेबाजी के चक्कर में न पड़ना पड़े। विद्यमान सिविल विधि के अधीन, नुकसानी का अवधारण लंबी मुकदमेबाजी के पश्चात् सिविल न्यायालयों द्वारा किया जाता है, जिससे कि नुकसानी अभिनिर्णीत करने का प्रयोजन ही नष्ट हो जाता है। इस स्थिति से निपटने के लिए, विलंब से बचने के लिए और पीड़ितों को तुरंत राहत सुनिश्चित करने के लिए, उच्चतम न्यायालय का यह सुझाव है कि संसद् द्वारा बनाई गई विधि में, औद्योगिक विभीषिका या दुर्घटना से पीड़ित व्यक्तियों को प्रतिकर अवधारित करने के लिए विशेष प्रक्रिया द्वारा विनियमित अधिकरणों के गठन के लिए उपबंध किया जाना चाहिए, जिसके विरुद्ध अपील, अधिकरण द्वारा अवधारित रकम के निक्षेप के पश्चात्, विधि के प्रश्न के सीमित आधार पर ही उच्चतम न्यायालय को हो सकेगी। विधि में कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान दुर्घटना से पीड़ित व्यक्तियों को अंतरिम अनुतोष (राहत) का भी उपबंध किया जाना चाहिए। इन उपायों से खतरनाक उद्यमों से पीड़ित होने वाले व्यक्तियों का दुःख और कष्ट कम होगा। (पैरा 137)

हमारे देश में औद्योगिक विकास और उसमें अंतर्वलित खतरे कानूनी 'औद्योगिक विभीषिका निधि' (इंडस्ट्रियल डिजास्टर फंड) गठित करने की अनिवार्य आवश्यकता प्रस्तुत करते हैं, जिसके लिए अभिदाय सरकार और उद्योगों द्वारा किए जा सकते हैं, चाहे वे अंतर्राष्ट्रीय निगम हों या स्वदेशी उपक्रम (पब्लिक या प्राइवेट) हों। अभिदाय का परिमाण, उद्यम की खतरनाक प्रकृति के परिमाण और अन्य संबंधित बातों को ध्यान में रखते हुए, निकाला जा सकता है। निधि प्रकृति में स्थायी होनी चाहिए, जिससे कि पीड़ितों को तुरंत प्रभावी अनुतोष (राहत) प्रदान करने के लिए धन शीघ्रता से उपलब्ध हो सके। ऐसा करने से विलंब से बचा जा सकेगा, और पीड़ितों को शीघ्र प्रभावी अनुतोष प्रदान किया जा सकेगा। अतः सरकार और संसद् को, इन सुझावों को ध्यान में रखते हुए, पारदेशीय निगमों पर संयुक्त राष्ट्र आचरण संहिता में यथा अंतर्विष्ट अंतर्राष्ट्रीय मानकों और मार्गदर्शक सिद्धांतों से संगत विधियां अधिनियमित करने के लिए तुरंत कार्यवाही करनी चाहिए। (पैरा 138)

न्या० रंगनाथन (न्या० अहमदी की ओर से भी) : (सम्मत निर्णय) (पैरा 140 से 171 तक)

निर्दिष्ट प्रश्न केवल अधिनियम की विधिमान्यता तक सीमित है और समझौते की विधिमान्यता से उसका संबंध नहीं है, तथापि इस पहलू पर भी आनुषंगिक रूप से विचार किया गया है। वस्तुतः न्याय किया गया है और किसी समझौते के लिए सुसंगत सभी तथ्यों और पहलुओं पर विचार किया गया है। 4 मई, 1989 के आदेश से यह दर्शित होता है कि न्यायालय ने समझौते के निबंधनों पर आंकड़ों तथा न्यायालय के समक्ष रखी गई सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पूर्ण रूप से विचार किया था और उसका यह समाधान हो

गया था कि प्रस्थापित समझौता एक निष्पक्ष और युक्तियुक्त समझौता है, जिसका अनुमोदन किया जा सकता है । इस तरह के मामले में विनिश्चयोत्तर सुनवाई का कोई लाभ नहीं होगा । एक पुनर्विलोकन याचिका पहले ही फाइल की जा चुकी है और वह सुनवाई के लिए सूचीबद्ध हो गई है । (पैरा 164)

एक औद्योगिक विभीषिका निधि (इसको कोई भी नाम दिया जा सकता है) के सृजन के लिए न्या० के० एन० सिंह द्वारा की गई प्रस्थापना गंभीर रूप से विचार किए जाने योग्य है । उनकी इस प्रस्थापना का भी पृष्ठांकन किया है कि केंद्रीय सरकार को यह सलाह दी गई है कि भविष्य में वह पारदेशीय कंपनी को इस देश में कारबार करने के लिए अनुज्ञा देने से पहले कतिपय रक्षोपायों पर बल दे । (पैरा 169)

न्या० के० एन० सिंह ने इस संदर्भ में बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए यूनाइटेड नेशंस कोड ऑफ कंडक्ट (संयुक्त राष्ट्र संघ आचार संहिता) पर विस्तार में विचार किया है जिसका अनेक देशों द्वारा अनुमोदन किया जाना है । न्यायालय यह उम्मीद करता है कि इस तरफ की विपदाएं, जैसी कि इस देश में घटित हुई हैं, निकट भविष्य में ऐसे मामलों पर अंतर्राष्ट्रीय संहिता की शीघ्र स्वीकृति के लिए उत्प्रेरित करेंगी । (पैरा 170)

मु० न्या० मुखर्जी (न्या० साइकिया की ओर से भी) :

प्रश्नगत अधिनियम में संपृक्त पक्षकारों या व्यक्तियों के आपराधिक दायित्व पर, यदि कोई हो, चर्चा करना तात्पर्यित नहीं है और न ही इसमें उनसे निकलने वाले परिणाम के संबंध में चर्चा की गई है । यह स्थिति अधिनियम के उपबंधों और उद्देशिका से स्पष्ट है । विद्वान् महान्यायवादी का भी यह कहना है कि अधिनियम के अंतर्गत आपराधिक दायित्व नहीं आता है । जो शक्ति केंद्रीय सरकार को दी गई है वह 'दावों' का, जिससे धन संबंधी दावे अभिप्रेत हैं, प्रतिनिधित्व करना है । धारा 3 की उपधारा (3) से यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 3 की उपधारा (1) के उपबंध उन दावों के संबंध में भी लागू होंगे, जिनके संबंध में इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व किसी न्यायालय में या अन्य प्राधिकारी के समक्ष (चाहे भारत के भीतर या भारत से बाहर) वाद या अन्य कार्यवाहियां संस्थित की गई हैं, किंतु भारत से बाहर किसी न्यायालय में या अन्य प्राधिकारी के समक्ष इस अधिनियम के प्रारंभ से ठीक पूर्व लंबित किसी दावे के संबंध में किसी ऐसे वाद या अन्य कार्यवाही की दशा में विभेद किया गया है और यह उपबंध किया गया है कि केंद्रीय सरकार ऐसे दावेदार का प्रतिनिधित्व, यदि ऐसा न्यायालय या अन्य प्राधिकारी इस प्रकार अनुज्ञा दे तो, करेगी और उसके स्थान पर या उसके साथ कार्य करेगी । अत: ऐसे मामलों में जहां ऐसे वाद या कार्यवाहियां इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व भारत के बाहर किसी न्यायालय या किसी प्राधिकारी के समक्ष संस्थित की गई है, वहां यह धारा शिकार व्यक्तियों या उनके वारिसों या उनके विधिक प्रतिनिधियों के स्थान पर केंद्रीय सरकार को प्रतिस्थापित करने में अपने ही बल पर प्रवृत्त नहीं हो जाएगी, बल्कि केंद्रीय सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह ऐसे दावेदार के स्थान पर या उसके साथ कार्य करे, परंतु यह तब जब ऐसा न्यायालय या अन्य प्राधिकारी इस प्रकार अनुज्ञा दे । इसकी भारत के बाहर के देशों या स्थानों की, जहां वाद या कार्यवाहियां संस्थित की जानी हैं या संस्थित की गई हैं, प्रक्रिया के साथ अनुषक्ति और अनुरूपता होनी आवश्यक है । अत: केंद्रीय सरकार भारत

के बाहर संस्थित की गई कार्यवाहियों के संबंध में ऐसे न्यायालयों या प्राधिकारियों के आदेशों के अध्यधीन दावेदारों के साथ कार्य करने के लिए प्राधिकृत की गई है। (पैरा 34)

अधिनियम के सुसंगत उपबंधों को समुचित रूप से पढ़ने पर यह बात प्रकट है कि भोपाल गैस रिसाव विभीषिका से उद्भूत होने वाला आपराधिक दायित्व इस अधिनियम की विषय-वस्तु नहीं है और यह नहीं कहा जा सकता कि इस अधिनियम ने उसे किसी भी रूप में प्रभावित, न्यून अथवा उपांतरित किया है। अधिनियम के सुसंगत उपबंधों का यह सही विश्लेषण और परिणाम है। अतः कुछ पीड़ितों की ओर से दी गई यह दलील गलत है कि अधिनियम अविधिमान्य है, क्योंकि इसने अपचारी के विरुद्ध, चाहे वह यूनियन कार्बाइड कार्पोरेशन या यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड हो अथवा संयुक्ततः और पृथक्तः भारत सरकार, मध्य प्रदेश सरकार या श्री अर्जुन सिंह, भूतपूर्व मुख्य मंत्री, मध्य प्रदेश हो, दांडिक कार्यवाही करने के पीड़ितों के अधिकार को न्यून किया है अथवा छीन लिया है। किसी आपराधिक दायित्व की बाबत किसी अधिकार को कम नहीं किया गया है। आपराधिक दायित्व अधिनियम की विषय-वस्तु नहीं है। (पैरा 34 और 89)

इस कांड में अंतर्वलित किसी भी पक्षकार के दांडिक उत्तरदायित्व के बारे में इस अधिनियम में कुछ नहीं कहा गया है। इसलिए स्पष्टतः समझौते के इस भाग में एक ऐसा निबंधन है जो इस अधिनियम के परिक्षेत्र से बाहर है। इसलिए इस अधिनियम की विधिमान्यता पर इस आधार पर आक्षेप नहीं किया जा सकता कि इसमें अपचारियों के दांडिक कार्यवाहियों को वापस लेने के लिए अनुज्ञात किया गया है और उनके विरुद्ध कार्यवाहियां वापस नहीं ली जानी चाहिए थीं। उक्त समझौते पर पहुंचने में इस पहलू पर विचार किया जा सकता था अथवा नहीं उस समझौते में यह निबंधन शामिल किया गया है अथवा नहीं, एक ऐसा प्रश्न है जो समझौते की विधिमान्यता से संबंधित है। यह प्रश्न न्यायालय के समक्ष किए गए निर्देश के निबंधनों के बाहर है। धारा 2 के खंड (ख) के अंतर्गत पीड़ितों के ऐसे सभी दावे आते हैं, जो प्रतिकर और नुकसानी के लिए अथवा जीवनहानि या वैयक्तिक क्षति या कारबार और पेड़-पौधों और जीव जन्तुओं की हानि के लिए विभीषिका से उद्भूत हों या संबंधित हों। किंतु दायित्व का विस्तार क्या है यह एक अलग प्रश्न है। यह अधिनियम तात्पर्यित रूप से उक्त गैस रिसाव विभीषिका से उद्भूत होने वाले दायित्व के विस्तार के बारे में नहीं है अथवा उससे संबंधित नहीं है। अतः यह दलील देना अनुचित और गलत होगा कि अधिनियम ने पक्षकारों के दायित्व—चाहे वह आपराधिक, दंडात्मक अथवा आत्यंकित हो, को रिसाव की बाबत सीमित किया है। अधिनियम ने उस दायित्व को सिद्ध और प्रवर्तित करने के लिए पद्धति और प्रक्रिया का उपबंध किया है। अधिनियम द्वारा दायित्व के विस्तार को किसी भी रूप में नहीं किया गया है। (पैरा 162 और 90)

यह परिस्थिति कि वित्तीय संस्थाएं यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड में शेयर धारण किए हुई थी भारत सरकार को प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक के रूप में और अधिनियम के अधीन अपने कानूनी कर्त्तव्यों के निर्वहन से निरर्हित नहीं करेगी। वाद केवल यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन के विरुद्ध ही फाइल किया गया था न कि यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड के विरुद्ध। भारत सरकार द्वारा किए हुए दावे के आधार पर यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड एक आवश्यक पक्षकार नहीं थे। यह केवल अन्य बातों के साथ-साथ यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन के दायित्व

के अनेक विधिक आधारों और उद्यमों दायित्व के आधार पर बहुराष्ट्रीय कंपनी के प्रति ही दावा किया गया था। यदि भारत सरकार ने यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड के विरुद्ध वाद संस्थित किया होता तो कतिपय विस्तार तक यह एम० सी० मेहता वाले मामले [1987] 2 उम० नि० प० 765 के इस न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए यूनियन कार्बाइड कार्पोरेशन के विरुद्ध अपने मामले को कमजोर करता। वस्तुत: केंद्रीय सरकार का यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड में कोई शेयर नहीं है। ये पृथक् कानूनी संगठन हैं अर्थात् भारतीय यूनिट ट्रस्ट और जीवन बीमा निगम, जिनके यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड में 20 से 22 प्रतिशत के शेयर हैं। जीवन बीमा निगम और भारतीय यूनिट ट्रस्ट में सरकार का कुछ अधिकार अथवा नियंत्रण है। यह नहीं कहा जा सकता कि भोपाल गैस रिसाव विभीषिका के दावों की बाबत केंद्रीय सरकार के और पीड़ितों के बीच वास्तविक रूप से हित का कोई विरोध है। दूसरे, इस प्रकार की स्थिति में केंद्रीय सरकार एकमात्र ऐसा प्राधिकरण है, जो पीड़ितों के मामले की पैरवी कर सकता है और उनका प्रभावी रूप से प्रतिनिधित्व कर सकता है। यह संकल्पना कि जहां हित-भेद हो वहां हित-भेद रखने वाले व्यक्ति को इस प्रकार का काम नहीं सौंपा जाना चाहिए, वर्तमान स्थिति में लागू नहीं होती। प्रस्तुत मामले में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन का कोई प्रश्न नहीं उठता और इस सिद्धांत को लागू करने की कोई गुंजाइश नहीं है कि कोई भी व्यक्ति अपने निजी मामले का निर्णायक नहीं होना चाहिए। केंद्रीय सरकार किसी दावे का निर्णय नहीं कर रही थी बल्कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के दावों के लिए लड़ रही थी और उन्हें अग्रसर कर रही थी। इन परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है और दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की ओर से पक्षधर होने का अधिकार केंद्रीय सरकार को सौंपना अनुचित या दोषपूर्ण था। न्यायनिर्णयन --न्यायालयों द्वारा किया जाएगा। अत: नैसर्गिक न्याय के किसी भी सिद्धांत के उल्लंघन की कोई गुंजाइश नहीं है। (पैरा 74 और 102)

राज्य पर यह एक आज्ञापक बाध्यता है कि वह 'आधारभूत मानव शिष्टता के नाते' पीड़ितों का तब तक भरण-पोषण करे, जब तक दावे सिद्ध नहीं हो जाते और विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों से वसूल नहीं हो जाते। अधिनियम और स्कीम तथा अधिनियम की आत्मा से प्रकट 'प्रमुख अस्पष्ट प्रतिपादना' यह है कि जब तक पीड़ितों के अधिकारों की पैरवी की जाती है, तब तक राज्य को पीड़ितों का संरक्षण और परिरक्षण करना चाहिए, अन्यथा अधिनियम का उद्देश्य विफल हो जाएगा और इसका प्रयोजन निष्फल हो जाएगा। अत: पीड़ितों के सतत पोषण के लिए अंतरिम निर्वाह व्यय का निरंतर संदाय ऐसी बाध्यता है, जो राज्य के शक्ति ग्रहण करने से और पीड़ितों के अधिकारों के अस्थायी रूप से वंचित किए जाने तथा पीड़ितों के अपने अधिकारों के लिए लड़ने के अधिकारों से निर्निहित किए जाने से उद्भूत हुई है। यही एक मात्र ऐसा युक्तियुक्त निर्वचन है जो न्यायसंगत, निष्पक्ष और उचित है। वस्तुत: अधिनियम की भाषा में इस निर्वचन को समर्थन मिलता है। इस 'प्रमुख अस्पष्ट प्रतिपादना' के आधार पर ही अधिनियम अग्रसर होता है। इस वचन अथवा आधार पर ही राज्य दावे की कार्यवाही करने और उसकी पैरवी करने के अधिकार और बाध्यता को अपने ऊपर लेने में और स्वयं पीड़ितों को अपने आप न्यायालयों से समावेदन करने से वंचित करने में न्यायोचित है। यदि इसे केवल इस प्रकार पढ़ा जाए केवल तभी इसे सांविधानिक रूप से विधिमान्य ठहराया जा

1989(12) eILR(PAT) SC 1

सकता है। यह बात ध्यान में रखनी होगी कि अधिनियम की भाषा इस अर्थान्वयन का विरोध नहीं करती बल्कि इसके विपरीत धारा 9, 10 और अधिनियम की स्कीम यह इंगित करती है कि अधिनियम में ऐसी बाध्यता है। यदि इसे इस प्रकार पढ़ा जाए, केवल तभी इस निर्जीव अधिनियम में जान डाली जा सकती है जिससे कि इससे अर्थपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण बनाया जा सके। अतः अधिनियम को इसी रूप में पढ़ा जाना चाहिए। (पैरा 101)

यह प्रश्न कि भारत संघ संयुक्त अपकृत्यकर्ता के रूप में दायित्वाधीन है अथवा नहीं, एक कठिन और विभिन्न प्रश्न है। किंतु यदि यह मान लिया जाए कि यह संभव था कि केंद्रीय सरकार इस प्रकार के मामले में दायित्वाधीन हो सकती है तो भी केंद्रीय सरकार दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ और प्राधिकृत होनी चाहिए। ऐसी स्थिति में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन की कोई गुंजाइश नहीं होगी। 'आवश्यकता का सिद्धांत' इस प्रकार की स्थिति में लागू होगा। हाल्सबरीज लाज आफ इंग्लैंड, चतुर्थ संस्करण, पृ० 89, पैरा 73 में इस सिद्धांत की व्याख्या की गई है, जहां यह दोहराया गया था कि यदि किसी मामले को तय करने के लिए सक्षम अधिकरण के सभी सदस्य निरर्हता के अध्यधीन थे, तो भी वे सामान्य विधि के आवश्यकता के सिद्धांत के प्रवर्तन के फलस्वरूप उस मामले की सुनवाई के लिए प्राधिकृत और बाध्य किए जा सकते थे। ऐसे न्यायनिर्णायक से, जो उस मामले में, जिसका उसे विनिश्चय करना है, विद्वेष या हित के आधार पर निरर्हता के अध्यधीन है, कुछ परिस्थितियों में न्यायनिर्णयन के लिए अपेक्षा उस दशा में की जा सकती है, यदि दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है, जो न्यायनिर्णायक होने के लिए सक्षम या प्राधिकृत हो अथवा यदि उसके बिना गणपूर्ति न हो सके अथवा यदि कोई अन्य सक्षम अधिकरण गठित न किया जा सके। (पैरा 105)

केंद्रीय सरकार को प्रदत्त की गई शक्ति असारणीबद्ध नहीं है। यह शक्ति अधिनियम के प्रयोजन से परिसीमित है। यदि शक्ति का अनुचित प्रयोग या अतिक्रमण किया जाता है, तो उस शक्ति के प्रयोग को प्रश्नगत किया जा सकता हैं और अपास्त किया जा सकता है किंतु अधिनियम के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उससे इस आधार पर दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के अधिकारों का उल्लंघन होता है। यह प्रश्न की शक्ति का प्रयोग कैसे किया जाना चाहिए इस प्रश्न से भिन्न और पृथक् है कि वह शक्ति विधिमान्य है अथवा नहीं। (पैरा 103)

सांविधानिक अपेक्षाएं और धारा की भाषा, अधिनियम का प्रयोजन और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत अधिनियम की धारा 4 के इस निर्वचन की ओर ले जाते हैं कि प्रस्थापित या अनुध्यात समझौते की दशा में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को, जो प्रभावित हैं या जिनके अधिकार प्रभावित होने वाले हैं, उनके विचार जानने के लिए सूचना दी जानी चाहिए। धारा 4 महत्त्वपूर्ण है। यह केंद्रीय सरकार को केवल यह व्यादेश देती है, 'केंद्रीय सरकार किसी ऐसे विषय का सम्यक् ध्यान रखेगी, जिस पर ऐसे व्यक्ति द्वारा अपने दावे के संबंध में जोर दिया जाना अपेक्षित है।' इसलिए धारा 4 में अनुध्यात स्थिति में केंद्रीय सरकार इस बात के लिए बाध्य है कि वह दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के विचारों को ध्यान में रखें और इस बाध्यता का निर्वहन केंद्रीय सरकार द्वारा तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को यह न बता दिया जाए कि कोई समझौता प्रस्थापित, आशयित या

अनुध्यात है। यह आवश्यक नहीं है कि ऐसे मतों के लिए सभी दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की सम्मति आवश्यक होगी। दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की प्रतिनिधि के रूप में केंद्रीय सरकार को दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के विचारों को जान लेना चाहिए और उन्हें न्यायालय के समक्ष ऐसी रीति से, जैसी वह ठीक समझे, समझौता किए जाने से पूर्व पेश करना चाहिए। यदि दुर्घटना के शिकार व्यक्ति अधिनियम के अधीन कार्यवाही के दौरान मामले के किसी पहलू का उल्लेख करना चाहते हैं और समझौता वस्तुतः कार्यवाहियों में एक महत्वपूर्ण प्रक्रम है, अतः दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को अवसर दिए जाने चाहिएं। हो सकता है, अलग-अलग सूचनाएं आवश्यक न हों। न्यायालय को ऐसी स्थिति में सूचना देने की प्रक्रिया अपनानी चाहिए तथा जनसंचार माध्यम की मदद से दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के विचारों को आमंत्रित करते हुए सार्वजनिक सूचना भी दी जा सकती है। (पैरा 117)

इस अधिनियम के अनुसार सिविल प्रक्रिया संहिता का लागू होना अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित नहीं किया गया है। अधिनियम की धारा 11 अध्यारोही प्रभाव का उपबंध करती है और यह इंगित करती है कि सिविल प्रक्रिया संहिता समेत अन्य विधि में इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत किसी भी बात की उपेक्षा की जानी चाहिए और अधिनियम अभिभावी रहना चाहिए। हमारा ध्यान संहिता के आदेश 1, नियम 8(4) के उपबंधों की ओर आकर्षित किया गया था। यह कहना उपयुक्त होगा कि आदेश 1, नियम 8, अधिनियम के अधीन किसी वाद या कार्यवाही पर लागू नहीं होगा। यह मामला ऐसा नहीं है कि किसी का दूसरों के साथ सामान्य हित हो। यहां वादी, अर्थात् केंद्रीय सरकार ने दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को प्रतिस्थापित और निर्निहित कर दिया हैं। संहिता का आदेश 23, नियम 3-ख एक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी संकेत करता है तथा उक्त उपबंध में अंतर्निहित सिद्धांत इस मामले को लागू होंगे। इस नियम 3-ख में उपबंधित है कि प्रतिनिधि वाद में करार या समझौता न्यायालय की ऐसी इजाजत के विना, जो कार्यवाही में अभिव्यक्त रूप से अभिलिखित हो, नहीं किया जाएगा तथा नियम 3-ख के उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट है कि ऐसी इजाज़त देने के पूर्व न्यायालय ऐसी रीति से, जैसी बह ठीक समझे, ऐसे व्यक्तियों को सूचना देगा, जिनके बारे में उसे यह प्रतीत हो कि वे वाद में हितबद्ध हैं। पुनः प्रतिनिधि वाद की परिभाषा खंड घ के अनुसार उक्त नियम के स्पष्टीकरण के अंतर्गत किसी अन्य वाद के रूप में दी गई है, जिसमें पारित की गई डिक्री उस संहिता के या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंध के फलस्वरूप किसी भी व्यक्ति को आबद्ध कर सकेगी, जो वाद में पक्षकार नहीं है। इस मामले में निस्संदेह दुर्घटना के शिकार व्यक्ति समझौते द्वारा आबद्ध होंगे, हालांकि वे वाद में पक्षकार नहीं हैं। इस स्थिति को सभी ने मान लिया है। यदि ऐसा है, तो यह संहिता के आदेश 23 के नियम 3-ख के शब्दों में और के प्रयोजन के लिए प्रतिनिधि वाद होगा। यदि इस नियम के सिद्धांत नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत हैं तो न्यायालय की राय में इसके पीछे जो सिद्धांत हैं वे लागू होंगे तथा यह भी कि धारा 4 का अर्थान्वयन भी इसी प्रकार किया जाएगा। (पैरा 115 और 116)

इस देश में और विदेशों में ज्ञात एक ऐसी संकलपना भी है जिसे 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' (पेरेन्स पैट्रिया) कहा जाता है। डा० एस० के० मुखर्जी ने अपने लेख 'हिन्दू लॉ आफ रिलीजस एंड चैरिटेबल ट्रस्ट्स' टैगोर लॉ लैक्चर्स, पांचवां संस्करण, पृ० 404 पर 'प्रभुत्व-संपन्न संरक्षक' की संकलपना के प्रति निर्देश करते हुए यह विचार व्यक्त किया है कि आंग्ल

विधि में (प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक) के रूप में क्राउन खैराती न्यासों के अध्यधीन रहते हुए सभी संपत्ति का सांविधानिक संरक्षी है, क्योंकि ऐसे न्यास सारवान् रूप से लोक-महत्व के विषय होते हैं। अतः स्थिति इस प्रकार है कि भारतीय संकल्पना के अनुसार 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' का सिद्धांत किंग को सभी नागरिकों के संरक्षक के रूप में और जनक के रूप में मान्यता प्रदान करता है। सुधाकरन चंखानी **बनाम** ठाकुर प्रसाद शाह (ए० आई० आर० 1942 कलकत्ता 311) में रिपोर्ट के पृ० 318 पर कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा इस स्थिति को स्पष्ट किया गया था। उस स्थिति को उक्त उच्च न्यायालय ने बंकू बिहारी मंडल **बनाम** बंकू बिहारी हाजरा और एक अन्य (ए० आई० आर० 1943 कलकत्ता 203) में रिपोर्ट के पृष्ठ 205 पर दोहराया। इस स्थिति की मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा मेडोई डालावाए टी० कुमारस्वामी मुदालियर **बनाम** मेडोई डालावाए राजाम्मल (ए० आई० आर० 1957 मद्रास 563) में रिपोर्ट के पृष्ठ 567 पर आगे सविस्तार परीक्षा की गई थी और इसे स्पष्ट किया गया था। इस न्यायालय ने भी रामस्वरूप **बनाम** एस० पी० साही [(1959) 2 सप्लीमेंट एस० सी० आर० 583] में रिपोर्ट के पृ० 598 और 599 पर डा० मुखर्जी के मतों का अवलंब लेते हुए 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' की संकल्पना को मान्यता दी थी। 'वर्ड्स एंड फ्रेजिज' (शब्द और पद) स्थायी संस्करण, खंड 33 के पृ० 99 पर यह कहा गया है कि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' की संकल्पना का तात्पर्य यह है कि विधानमंडल को अंतर्निहित शक्ति और प्राधिकार है कि वह विधितः अक्षम व्यक्तियों, जैसे कि अवयस्क, उन्मत्त और अक्षम व्यक्तियों के शरीर और उनकी संपत्ति का संरक्षण करे। किंतु 'पेरेंस पैट्रिया' (प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक) शब्द, जिनका अर्थ है 'देश का पिता', आरंभ में किंग के लिए उपयोग किए जाते है और उनका उपयोग <u>निर्योग्यता के अधीन व्यक्तियों पर संरक्षकता ही उसकी प्रभुत्वसंपन्न शक्ति के प्रति निर्देश करते हुए राज्य को अभिहित करने के लिए किया जाता है।</u> (अधोरेखांकन जोर देने के लिए किया गया है)। यह स्पष्ट किया गया है कि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक) अधिकारिता प्रभुत्व संपन्न का अधिकार है और उससे प्रभुत्वसंपन्न पर, लोक हित में, निर्योग्यता के अधीन उन व्यक्तियों के संरक्षण करने का कर्तव्य अधिरोपित होता है, जिनका कोई अधिकारवान् संरक्षक नहीं है। 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' पद का अर्थबोध भिन्न-भिन्न देशों में अलग-अलग है, उदाहरणार्थ इंग्लैंड में इसका अर्थबोध किंग है, अमेरिका में जनता आदि है। सरकार का यह कर्तव्य है कि वह निर्योग्यता के अधीन व्यक्तियों का संरक्षण और नियंत्रण करे। संकल्पना के रूप में 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' सिद्धांत राज्य की बाध्यता है कि वह अपनी बाध्यताओं का निर्वहन करने के लिए अपने नागरिकों के अधिकारों और विशेषाधिकारों को अभिरक्षा में ले ले। हमारे संविधान के अधीन राज्य के लिए यह आज्ञापक बनाया गया है कि वह अपने सभी नागरिकों के लिए संविधान द्वारा गारंटीकृत अधिकार सुनिश्चित करे और जहां नागरिक अपने अधिकारों को मांगने और सुनिश्चित करने की स्थिति में नहीं हैं, वहां राज्य सामने आए और नागरिकों के अधिकारों का संरक्षण करे और उनके लिए लड़े। संविधान के निदेशक तत्वों के साथ पठित उसकी उद्देशिका तथा उसके अनुच्छेद 38, 39 और 39-क राज्य को यह व्यादेश देते हैं कि वह इन उत्तरदायित्वों को संभालें। यह एक ऐसा संरक्षा उपाय है, जिसे समाज कल्याणकारी राज्य करने के लिए वचनबद्ध है। राज्य के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी बाध्यताओं का प्रभावी रूप से निर्वहन करने के लिए राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के साथ मूल अधिकार सुनिश्चित करे। इस प्रयोजन के लिए, यदि आवश्यक हो तो, व्यष्टिक

शिकार व्यक्तियों या उनके वारिसों को कुछ अधिकारों और विशेषाधिकारों से वंचित करे, जिससे कि उनके अधिकार अच्छी तरह से संरक्षित हो सकें और उन्हें आगे और सुनिश्चित किया जा सके। अत: संकल्पना के रूप में और विधिशास्त्रीय दृष्टिकोण से, विशेषतया भारत के संविधान की उद्देशिका और निदेशक तत्वों के आदेश की पृष्ठभूमि के आधार पर केंद्रीय सरकार को इस बात के लिए प्राधिकृत करना संभव था कि वह दावों के संबंध में बहुराष्ट्रीय निगम के विरुद्ध लड़ने के लिए शिकार व्यक्तियों के दावों को अपने हाथ में ले ले। इस स्थिति के कारण शिकार व्यक्ति इस मामले की परिस्थितियों में अपने दावों की पूर्णतया और उचित रूप से पैरवी करने के लिए निर्योग्यता के अधीन थे। (पैरा 35 और 36)

याचियों के काउंसेल ने यह निवेदन किया कि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' को इस देश में व्यक्तियों द्वारा उठाई गई क्षति और नुकसानी के लिए रकम की वसूली के आधार के रूप में न्यायिक मान्यता प्राप्त नहीं हुई है। उस सीमा तक उनका कहना ठीक हो सकता है, किंतु 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' का सिद्धांत भारत में विभिन्न संदर्भों और आकस्मिकताओं में प्रयोग किया गया है। यह बात ध्यान में रखनी होगी कि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' का सिद्धांत संकल्पना और विधिशास्त्र की दृष्टि से देश के राज्यक्षेत्र के बाहर शिकार हुए कुछ व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने तक ही सीमित नहीं है। यह सच है कि अब तक अमरीका में इस सिद्धांत का उपयोग इसी प्रकार किया गया है। जहां किसी देश के नागरिक किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी की उपेक्षा से हुई विभीषिका के शिकार हुए हों, वहां ऐसी विशिष्ट स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें उस विशिष्ट स्थिति के लिए उपयुक्त और प्रभावी प्रक्रिया की आवश्यकता होती है और शिकार हुए व्यक्तियों की शिकायतों और मांगों को प्रभावी बनाना होता है, जिसके लिए परंपरागत प्रतिपक्षी पद्धति (ऐडवर्सरी सिस्टम) पूर्णत: अपर्याप्त होगी। राज्य को अपनी प्रभुत्वसंपन्न बाध्यताओं के निर्वहन के लिए आगे आना चाहिए। भारत सरकार अपनी सांविधानिक बाध्यताओं से शिकार हुए व्यक्तियों के दावों को अपने ऊपर लेने के लिए आवश्यकता की घड़ी में उनकी रक्षा करने के लिए बाध्य है। यह ध्यातव्य है कि शक्ति का प्रदान किया जाना और उसके प्रयोग की रीति दो भिन्न-भिन्न विषय हैं। यह निवेदन किया गया कि वाद का संचालन और यदि आवश्यक हो तो समझौता करने की शक्ति अधिनियम के प्रयोजन के लिए केंद्रीय सरकार में निहित थी। समझौता करने और कार्यवाहियों का संचालन करने की शक्ति अनियंत्रित अथवा मनमानी नहीं है। इनका प्रयोग स्पष्ट रूप से, शिकार हुए व्यक्तियों के हितों के लिए ही किया जाना था। कानून ने दुरुपयोग की संभावना से उसमें अविधिमान्यता का कोई तत्व नहीं जुड़ जाता। इस संबंध में बेल फास्ट कारपोरेशन **बनाम** ओ० डी० कमीशन वाले मामले (1960 अपील केसेज 490) में न्या० वाइकाउंट साइमंस द्वारा दिए गए निष्कर्ष सुसंगत हैं जिनमें इस बात पर जोर दिया गया था कि किसी उपाय की विधिमान्यता का अवधारण किसी मामले-विशेष में उसके लागू होने के आधार पर नहीं किया जा सकता। इस न्यायालय ने सीमा-शुल्क कलक्टर, मद्रास **बनाम** नाथेल्ला समसथ चेट्टी वाले मामले [(1962) 3 एस० सी० आर० 786 (825)] में इस बात पर जोर दिया कि कानून की संवैधानिक वैधता उसके उपबंधों और युक्तियुक्त रूप से उसके लागू किए जाने की सीमा के अर्थान्वयन के आधार पर अवधारित करनी होगी। यह बात ध्यान में रखने की है कि इस प्रकार निर्णीत किए जाने पर यह युक्तियुक्ता के परीक्षण पर खरी उतरती है, तब दी गई शक्ति का अनुचित रूप से प्रयोग किए जाने की संभावना विधि को

अविधिमान्य उद्घोषित करने के लिए कोई आधार नहीं रह जाती। इस संबंध में भी पी०जे० इरानी **बनाम** मद्रास राज्य और डी० के० त्रिवेदी **बनाम** गुजरात राज्य वाले मामले [(1962) 2 एस० सी० आर० 169] में दिए गए निष्कर्षों को भी कृपया देखें। (पैरा 62 और 63)।

राज्य पर यह एक आज्ञापक बाध्यता है कि वह 'आधारभूत मानवीय शिष्टता के नाते' पीड़ितों का तब तक भरण-पोषण करे जब तक दावे सिद्ध नहीं हो जाते और विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों से वसूल नहीं हो जाते। अधिनियम और स्कीम तथा अधिनियम की आत्मा (भावना) से प्रकट 'प्रमुख अस्पष्ट प्रतिपादना' यह है कि जब तक पीड़ितों के अधिकारों की पैरवी की जाती है, तब तक राज्य को पीड़ितों का संरक्षण और परिरक्षण करना चाहिए, अन्यथा अधिनियम का उद्देश्य किफल हो जाएगा और इसका प्रयोजन निष्फल हो जाएगा। अतः पीड़ितों के सतत पोषण के लिए अंतरिम, निर्वाह व्यय का निरंतर संदाय ऐसी बाध्यता है जो राज्य के शक्ति ग्रहण करने से और पीड़ितों के अधिकारों के अस्थायी रूप से वंचित किए जाने तथा पीड़ितों के अपने अधिकारों के लिए लड़ने के अधिकारों से निर्निहित किए जाने से उद्भूत हुई है। यही एकमात्र ऐसा युक्तियुक्त निर्वचन है जो न्यायसंगत, निष्पक्ष और उचित है। वस्तुतः अधिनियम की भाषा में इस निर्वचन को समर्थन मिलता है। यदि हम सही सुविदित पद का प्रयोग करें, तो कह सकते हैं कि यह अधिनियम इसी 'प्रमुख अस्पष्ट प्रतिपादना' के आधार पर अग्रसर होता है, यद्यपि कि यह बात अभिव्यक्ततः कही नहीं गई है। इस वचन अथवा आधार पर ही राज्य दावे की कार्यवाही करने और उसकी पैरवी करने के अधिकार और बाध्यता को अपने ऊपर लेने में और स्वयं पीड़ितों को अपने आप न्यायालयों से समावेदन करने से वंचित करने में न्यायोचित है। यदि इसे केवल इस प्रकार पढ़ा जाए केवल तभी इसे सांविधानिक रूप से विधिमान्य ठहराया जा सकता है। यह बात ध्यान में रखनी होगी कि अधिनियम की भाषा इस अर्थान्वयन का विरोध नहीं करती बल्कि इसके विपरीत धारा 9, 10 और अधिनियम की स्कीम यह इंगित करती है कि अधिनियम में ऐसी बाध्यता है। यदि इसे इस प्रकार पढ़ा जाए केवल तभी इस निर्जीव अधिनियम में जान डाली जा सकती है जिससे कि इसे अर्थपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण बनाया जा सके। अतः अधिनियम को इसी रूप में पढ़ा जाना चाहिए। अधिनियम के इस निर्वचन के प्रति इस दृष्टिकोण को विधिसम्मत रूप से 'आन्वयिक अंतर्बोध' (कंस्ट्रक्टिव इंट्यूशन) कहा जा सकता है, जो संसद् के अधिनियमों को समझने का एक अनुज्ञेय ढंग है। 'अधिनियम की आत्मा (भावना)' अथवा उस रिष्टि की मात्रा को खोजने के लिए जिसके प्रति यह उद्दिष्ट है (जो दोनों संसद् के आशय के पर्यायवाची हैं) से इस उदार निर्वचन की संभावना प्रशस्त हो जाती है 'जो कि न्यायिक शक्ति की ऐसी नाजुक और महत्वपूर्ण शाखा है, जिसकी स्वीकृति खतरनाक है और जिससे इंकार करना विनाशक है।' यदि यह स्वतंत्रता दी जाती है तो यह एक बहुत ही विरला अवसर होगा जिसका दुरुपयोग नहीं किया जाना चाहिए और यह अधिनियम को अपनाने और उसे अर्थ, स्पष्ट और अस्पष्ट, देने के लिए न्यायाधीशों के लिए चुनौती है और इस प्रकार संसद् के आशय को कार्यान्वित करना और अधिनियम के उद्देश्य को पूरा करना है। (पैरा 101)

यह तथ्य निर्विवाद है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन करना होगा। यह न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों से सुस्थिर है। भारतीय संविधान इसकी स्पष्ट आज्ञा देता है। अन्यथा, अधिनियम और कार्यवाही संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन में होंगे और अनुच्छेद 19 (1) (छ) के लिए घातक होंगे तथा ऐसी प्रक्रिया से वंचित करके, जो न्यायसंगत, ऋजु और युक्तियुक्त है, संविधान के अनुच्छेद 21 को भी नकारना होगा। 'नैसर्गिक न्याय' पद की स्थिर और सुनिश्चित परिभाषा नहीं की जा सकती। इसे परिशुद्ध लौह सांचा सूत्र (स्ट्रेट जैकेट आफ कास्ट आइरन फारमूला) में कैद नहीं किया जा सकता। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत लेखबद्ध नहीं हैं इसलिए ऐसे सिद्धांतों की निःशेषी तालिका बनाना संभव नहीं था। उच्चतम न्यायालय ने यह दोहराया कि 'दूसरे पक्षकार को भी सुनो' एक अत्यन्त कारगर सिद्धांत है जो न्यायालय द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए विवक्षित किया गया है कि कानूनी प्राधिकरण न्यायसंगत विनिश्चय करे और उसका उद्देश्य शक्ति के दुरुपयोग या गलत प्रयोग पर निष्पक्ष नियंत्रण रखना है। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत उन्हीं क्षेत्रों में प्रभावी हो सकते हैं, जो विधिमान्य रूप से बनाई गई किसी विधि के अंतर्गत नहीं आते। एकरूपता से लागू करने के पूर्ण सिद्धांत से प्रभेदित रूप में, साधारण सिद्धांत यह प्रतीत होता है कि जहां कानून स्पष्ट शब्दों में पूर्व सुनवाई के इस सिद्धांत को अपवर्जित नहीं करता, अपितु गुणागुण पर मूल आदेश के पूर्ण पुनर्विलोकन के समान विनिश्चयोत्तर सुनवाई को भी अनुध्यात करता है, वहां ऐसे कानून का अर्थ यह लगाया जाएगा कि वह विनिश्चयपूर्व प्रक्रम पर 'दूसरे पक्षकार को भी सुनो' के सिद्धांत को अपवर्जित करता है। यदि शक्ति प्रदान करने वाला कानून प्रभावित व्यक्ति को विनिश्चय पूर्व सुनवाई देने के बारे में मौन है तो विनिश्चयोत्तर सुनवाई के बाद प्रशासनिक विनिश्चय उपयुक्त होगा। यदि कोई विधान या कानून अभिव्यक्त रूप से या आवश्यक विवक्षा द्वारा नैसर्गिक न्याय के किसी सिद्धांत विशेष को लागू करना अपवर्जित करता है तो न्यायालय को उसकी सूक्ष्म संवीक्षा करनी चाहिए। यदि ठीक या गलत कारणों से दावे के एक भाग के बारे में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के विचारों पर कम से कम विचार किए बिना ही समझौता या समायोजन किया जाना ईप्सित है तो वह दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के अधिकारों का अयुक्तियुक्त हनन होगा। आखिरकार, यह ध्यातव्य है कि किसी कृत्य या प्रक्रिया से प्रभावित लोगों के मन में इस अर्थ में अन्याय से यह भावना पैदा होती है कि उनकी व्यथाओं, विचारों या दावों पर सुनवाई या विचार नहीं किया गया है। ऐसी भावना अपने आप में ही अन्याय या दोष है। विधि का अर्थान्वयन या कार्यान्वयन इस प्रकार किया जाए कि उन लोगों के मन में ऐसी भावना पैदा न हो जिनके फायदे के लिए वह विधि बनाई गई है। समझौता करने से पूर्व सुनवाई या प्रतिनिधित्व का अधिकार उस अर्थ में समझी गई विधि की सम्यक् प्रक्रिया में समाविष्ट प्रतीत होता है, जिसमें इस शब्द का प्रयोग इस देश की सांविधानिक शब्दावली में किया गया है, हालांकि संभवतः मूलतः ऐसा आशय नहीं था। सभी सभ्य देशों ने 'सुने जाने के अधिकार' को विधि की सम्यक् प्रक्रिया का अंग माना है, जहां उनके अधिकारों, विशेषाधिकारों अथवा दावों से संबंधित प्रश्नों पर विचार किया जाए या निर्णय किया जाए। कपूर, एस० एल० **बनाम** जगमोहन और अन्य वाले मामले [(1981) 3 उम० नि० प० 935] में न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए न्या० चिन्नप्पा रेड्डी ने यह मत व्यक्त किया था कि यह संकल्पना हमारी प्रणाली की बुनियाद है कि न्याय किया ही नहीं जाना चाहिए बल्कि किया गया प्रतीत भी होना चाहिए।

यह दोहराया गया है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों में अपवर्जनकारी सिद्धांत की कोई गुंजाइश नहीं है जो इस बात पर आश्रित हों कि यदि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का पालन किया जाता तो कोई अंतर पड़ता। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का अनुपालन किसी भी व्यक्ति के प्रतिकूल होता है और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत से इन्कार करने के सबूत से पृथक् प्रतिकूल प्रभाव का सबूत होना अनावश्यक है और यह कहा गया है कि यह सिद्ध करने का भार उस व्यक्ति पर है, जिसने नैसर्गिक न्याय से वंचित किया है, कि उस व्यक्ति पर जिसे नैसर्गिक न्याय से वंचित रखा गया है प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है। अतः नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन अवश्य किया जाना चाहिए। यह एक सामान्य अपेक्षा है। (पैरा 109, 110, 111, 112 और 113)

यद्यपि सूचना के बिना समझौता पूरी तरह ठीक नहीं है, फिर भी अब तक उपलभ्य सामग्री के आधार पर दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के प्रति न्याय तो किया गया है किंतु न्याय किया गया प्रतीत नहीं होता है। किंतु इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि से इस आधार पर समझौते को अपास्त करना अथवा प्रास्थगन में रखना और दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को विनिश्चयोत्तर सूचना देना अंततोगत्वा न्याय के हित में नहीं होगा। यह सही है कि सूचना न देना उचित नहीं था, क्योंकि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत इस देश की सांविधानिक व्यवस्था में मूलभूत स्थान रखते हैं। किसी भी व्यक्ति पर या उसके अधिकार पर उसके विचारों को सुनने का अवसर दिए बिना प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। न्याय एक मनोवैज्ञानिक उत्कंठा है, जिसमें मनुष्य अपने अधिकार को प्रभावित करने वाले विनिश्चय करने के लिए व्यादिष्ट या बाध्य न्यायमंच या प्राधिकरण के समक्ष अपना दृष्टिकोण पेश करने का अवसर प्राप्त करके अपने दृष्टिकोण की स्वीकृति चाहते हैं। फिर भी विशिष्ट स्थितियों में यह ध्यान रखना होगा कि उसका उल्लंघन न्याय के अनुसार कैसे दूर किया जा सकता है। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, जहां उस समय पर्याप्त अवसर सुलभ होगा जब पुनर्विलोकन आवेदन की सुनवाई सूचना देकर की जाएगी, आगे किसी अवसर की आवश्यकता नहीं है, और यह नहीं कहा जा सकता कि अन्याय किया गया है। आखिरकार, बहुत अच्छा काम करने के लिए कभी-कभी थोड़ा-सा गलत करना भी अनुज्ञेय है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह उन दुर्लभ अवसरों में से एक है, यद्यपि अपेक्षित सूचना दिए बिना समझौता करना गलत है। अतः इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में न्यायालय की राय है कि यह निदेश देना कि अब सूचना दी जाए, इस स्थिति में न्याय में फलीभूत नहीं होगा। (पैरा 124)

अधिनियम की सांविधानिक विधिमान्यता के प्रश्न पर विचार करने से पूर्व, रिट याचिका सं 164/86 और 268/89 की बाबत संविधान-न्यायपीठ द्वारा, जिसमें पांच विद्वान् न्यायाधीश थे और जिसकी अध्यक्षता भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा की गई थी, पारित तारीख 3 मार्च, 1989 के आदेश के प्रति निर्देश करना आवश्यक है। उक्त आदेश में यह उल्लेख किया गया है कि इन मामलों को एकमात्र इस प्रश्न का कि 'क्या भोपाल गैस विभीषिका (दावा कार्यवाही) अधिनियम, 1985 अधिकारातीत है?' विनिश्चय करने के लिए संविधान न्यायपीठ के समक्ष 8 मार्च, 1989 को सूचीबद्ध किया जाएगा। यह उक्त संविधान न्यायपीठ द्वारा पारित न्यायिक आदेश है। यह कोई प्रशासनिक आदेश नहीं है।

इसलिए, ये मामले इस न्यायालय के समक्ष हैं। अतः प्रश्न यह उद्भूत होता है कि ये मामले क्या हैं ? पूर्वोक्त आदेश में विनिर्दिष्ट रूप से यह कथन किया गया है कि ये मामले इस न्यायपीठ के समक्ष 'इस एकमात्र प्रश्न' का विनिश्चय करने के लिए रखे गए थे कि क्या अधिनियम अधिकारातीत है ? अतः, ये मामले इन रिट याचिकाओं के निपटारे के लिए इस न्यायपीठ के समक्ष नहीं हैं। 89 की रिट याचिका सं० 268 में तारीख 14/15 फरवरी, 1989 के आदेश को अपास्त करने की पारिणामिक प्रार्थना है। किंतु तारीख 3 मार्च, 1989 वाला उपर्युक्त आदेश चूंकि केवल यह इंगित करता है कि ये मामले 'एकमात्र-इस प्रश्न' की बाबत इस न्यायपीठ के समक्ष रखे गये हैं कि क्या भोपाल गैस विभीषिका (दावा कार्यवाही) अधिनियम शक्तिबाह्य है या नहीं, अतः उस आदेश के आधार पर इस प्रश्न पर विचार करना संभव नहीं है कि क्या वह परिनिर्धारण विधिमान्य है। (पैरा 87 और 88)

सामान्यतया सिविल दायित्व की माप करने में विधि ने दंड की अपेक्षा प्रतिकर के सिद्धांत को अधिक महत्व दिया है। किंतु दांडिक प्रतितोष में क्षत व्यक्ति का प्रतिकर और भयोपरति के रूप में दंड दोनों ही अंतर्वलित हैं। रूक्स **बनाम** बर्नार्ड वाले मामले (1964 अपील केसेज 1129) में हाउस आफ लार्ड्स ने इन समस्याओं का विवेचन किया था, जिनसे वर्धित और अनुकरणीय नुकसानी के बीच अंतर उपदर्शित होता है। सामंड आन दी ला आफ टार्ट्स, 15वां संस्करण में पृष्ठ 30 पर इस बात पर जोर दिया गया है कि नुकसानी का कृत्य दंड की अपेक्षा प्रतिकर है, किंतु दंड की भी सदैव ही उपेक्षा नहीं की जा सकती। ऐसे मत भी हैं, जो इस आधार पर निवारक नुकसानी (इक्जेंपलरी डैमेजेज) के विरुद्ध हैं कि इनसे सिद्धांतः अपकृत्य विधि के उद्देश्य अर्थात् प्रतिकर का अतिलंघन होता है न कि दंड का और इनकी प्रवृत्ति दांडिक विधि में जुर्माने के समतुल्य किसी चीज का अधिरोपण है, किंतु दांडिक विधि में सुरक्षोपायों का उपबंध नहीं किया गया है। रूक्स **बनाम** बर्नार्ड वाले पूर्वोक्त मामले (1964 अपील केसेज 1129) में हाउस आफ लार्ड्स ने मामलों के तीन वर्ग माने हैं, जिनमें निवारक नुकसानी दिए जाने का न्यायानुमत समझा गया है। यह कहा गया है कि अधिनिर्णय से न केवल पक्षकारों को प्रतिकर मिलना चाहिए बल्कि उससे दोषी व्यक्ति और अन्य व्यक्ति भविष्य में वैसा ही आचरण करने से भयोपरत होने चाहिएं। यह कहा गया है कि निवारक अथवा भयोपरत करने वाली नुकसानी देने के प्रश्न ने प्रायः विधि के सिविल और दांडिक कृत्यों में भ्रांति पैदा की है। यद्यपि बहुत से व्यक्तियों द्वारा यह समझा जाता है कि सिविल दायित्व के क्षेत्र में यह दंड का विधिसम्मत अतिक्रमण है, क्योंकि यह विधि के उल्लंघन पर अवरोध के रूप में प्रवर्तित होता है, जो (विधि) अंततोगत्वा समाज के फायदे के लिए है। इस मामले में यदि कदाचित कार्यवाही शुरू की जाती तो यह महसूस किया जा सकता था कि इस गैस विभीषिका का परिणाम नुकसानी की संकल्पना का सूत्रीकरण हो सकता है, जिसमें सिविल और दांडिक दोनों ही दायित्व मिले हुए हों। किंतु ऐसी सिविल कार्यवाही की बाबत जिसे एकीकृत किया जा सके और न्यायिक प्रक्रिया द्वारा प्रवर्तित किया जा सके, दंडात्मक नुकसानी की वास्तविक संकल्पना विकसित करने में गंभीर कठिनाइयां हैं। इससे अभिवचन, सबूत और पता लगाने की गंभीर समस्याएं पैदा होतीं और यह कार्य रोचक और चुनौती भरा होने पर भी यह बहुत अनिश्चित है कि ऐसी संकल्पना पर आधारित विनिश्चय अंतर्राष्ट्रीय मानकों द्वारा स्वीकृत विधि की 'सम्यक् प्रक्रिया' के अनुसार विनिश्चय

1989(12) eILR(PAT) SC 1

हुआ होता। इस प्रयत्न में कठिनाइयां थीं। किंतु यथा विद्यमान उपबंधों के अनुसार ये बातें अधिनियम को सांविधानिक रूप से अविधिमान्य नहीं बनातीं। (पैरा 92)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1988]	[1988] 3 उम० नि० प० 27=(1988) 2 एस० सी० सी० 602 : **ए० आर० अंतुले** बनाम **आर० एस० नायक और एक अन्य;**	52, 55
[1987]	[1987] 3 उम० नि० प० 252=(1987) 2 एस० सी० सी० 469 : **मैसर्स मैकिनन मैकंजी एण्ड कं० लि०** बनाम **आइ डी कोस्टा और एक अन्य;**	52
[1987]	[1987] 3 उम० नि० प० 421=(1987) 1 एस० सी० सी० 370 : **शीला बर्से** बनाम **सचिव, चिल्ड्रन एंड सोसाइटी और अन्य;**	52
[1987]	[1987] 4 उम० नि० प० 505=(1987) 3 एस० सी० सी० 367 : **पुष्पा देवी एम० जातिया** बनाम **एम० एल० वधावन;**	76
[1987]	[1987] 4 उम० नि० प० 774=(1987) 3 एस० सी० सी० 698 : **मैसर्स व्यापार सहायक (प्राइवेट) लि० और अन्य** बनाम **विश्वनाथ और अन्य;**	76
[1986]	[1986] 2 उम० नि० प० 765=(1987) 1 एस० सी० आर० 819 : **एम० सी० मेहता ओर एक अन्य बनाम भारत संघ;**	38, 51, 74, 86, 91, 92, 122, 135, 143
[1986]	[1986] 1 उम० नि० प० 269=(1985) सप्ली० एस० सी० आर० 51 : **ओलगा टेलिस** बनाम **बी० एम० सी०;**	41, 42, 109
[1986]	[1986] 3 उम० नि० प० 709=(1986) सप्ली० एस० सी० सी० 20 : **डी० के० त्रिवेदी** बनाम **गुजरात राज्य;**	63

1989(12) eILR(PAT) SC 1

[1985] [1985] 4 उम० नि० प० 106=(1985) सप्ली० 2 एस० सी० आर० 131 :
भारत संघ बनाम तुलसी राम पटेल; 42, 110

[1985] [1985] 1 उम० नि० प० 186=(1984)4 एस० सी० सी० 103 :
जे० महापात्रा एंड कंपनी और एक अन्य बनाम उड़ीसा राज्य और एक अन्य; 75

[1984] [1984] 3 उम० नि० प० 533=(1984) 2 एस० सी० आर० 795 :
लक्ष्मी कांत पाण्डे बनाम भारत संघ; 52

[1982] [1982] 3 एस० सी० सी० 182 :
इंडिया माइका एंड माइकेनाइट इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम बिहार राज्य और अन्य; 77

[1982] [1982] 1 उम० नि० प० 1197=(1981) 3 एस० सी० आर० 474 :
गोकाराजू रंगराजू और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य; 76

[1981] [1981] 4 उम० नि० प० 1157=(1981) 2 एस० सी० आर० 533 :
स्वदेशी काटन बनाम भारत संघ; 42, 109

[1981] [1981] 3 उम० नि० प० 935=(1981) 1 एस० सी० आर० 745 :
कपूर, एस० एल० बनाम जगमोहन; 42, 113

[1981] [1981] 4 एस० सी० सी० 505 :
राम गोपाल बनाम श्रीमती सारूबाई और अन्य; 77

[1981] [1981] 2 उम० नि० प० 985=(1980) 3 एस० सी० आर० 1159 :
अंबिका प्रसाद मिश्र और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 52

[1980] [1980] उम० नि० प०=ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 1888 :
धर्मपाल सिंह बनाम निदेशक, लघु उद्योग सेवाएं और अन्य; 76

[1980] [1980] 2 उम० नि० प० 961=(1979) 3 एस० सी० आर० 1014 :
आर० डी० शेट्टी बनाम इंडियन एअरपोर्ट अथारिटी आफ इंडिया और अन्य; 29

1989(12) eILR(PAT) SC 1

[1979]	[1979] 4 उम० नि० प० 1061=(1979) 2 एस० सी० आर० 476 : **विशेष न्यायालय विधेयक, 1978 के संबंध में निर्देश;**	52
[1979]	[1979] 1 उम० नि० प० 243=(1978) 2 एस० सी० आर० 621 : **मेनका गाधी** बनाम **भारत संघ;**	29, 41, 42, 109
[1978]	ए० आई० आर० 1978 एम० पी० 209 : **नंदराम हीरालाल** बनाम **भारत संघ और एक अन्य;**	53
[1977]	[1977] 2 उम० नि० प० 293=(1976) 3 एस० सी० आर० 1005 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **पुसू और एक अन्य;**	77
[1975]	[1975] 1 उम० नि० प० 1321=(1975) 2 एस० सी० आर० 491 : **रोशनलाल कुथ्थियाल और एक अन्य** बनाम **आर० बी० मोहन सिंह ओबराय;**	78
[1974]	[1974] 2 उम० नि० प० 912=(1974) 3 एस० सी० आर० 882 : **गंगा बाई** बनाम **विजय कुमार;**	41
[1974]	[1974] 1 उम० नि० प० 577=(1974) 2 एस० सी० आर० 348 : **ई० पी० रायप्पा** बनाम **तमिलनाडु राज्य और एक अन्य;**	29
[1966]	(1966) 1 एस० सी० सी० 937 : **एन० के० मोहम्मद सिलेमान** बनाम **एन० सी० मोहम्मद इस्समेल और अन्य;**	76
[1965]	(1965) 1 एस० सी० आर० 375 : **कस्तूरी लाल रलिया जैन** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य;**	73
[1963]	(1963) 3 एस० सी० आर० 22 : **आर० विश्वनाथन** बनाम **रूकनूलमुल्कसयैद अब्दुल वाजिद;**	54
[1963]	(1963) सप्ली० 2 724 : **एम० नारायणन नाम्बियार** बनाम **केरल राज्य;**	54
[1962]	(1962) 3 एस० सी० आर० 786 : **कलक्टर, सीमा-शुल्क, मद्रास** बनाम **नाथेलासमपाथु चेट्टी;**	63
[1962]	(1962) सप्ली० 2 एस० सी० आर० 989 : **राजस्थान राज्य** बनाम **मुसम्मात विद्यावती और एक अन्य;**	73

[1962]	(1962) 2 एस० सी० आर० 169 : **पी० जे० ईरानी बनाम मद्रास राज्य;**	63
[1961]	(1961) 1 एस० सी० आर० 497 : **के० एम० नानावती बनाम मुंबई राज्य;**	77
[1959]	(1959) 2 एस० सी० आर० 583 सप्ली० : **राम स्वरूप बनाम एस० पी० साही;**	35, 63
[1958]	ए० आई० आर० 1958 एस० सी० 149 : **बशेशर बनाम आयकर आयुक्त;**	52
[1957]	ए० आई० आर० 1957 मद्रास 563 : **मदैदालवोई टी० कुमारास्वामी मुदालियार बनाम मिवोई दालवोई साजम्माल;**	35, 63
[1955]	(1955) 1 एस० सी० आर० 1045 : **बोधन चौधरी बनाम बिहार राज्य;**	52
[1955]	(1955) एस० सी० आर० 279 : **रामकिशन डालमिया बनाम तेंदुलकर;**	52
[1955]	(1955) 2 एस० सी० आर० 1 : **संग्राम सिंह बनाम निर्वाचन अधिकरण, कोटा;**	111
[1952]	(1952) 2 एस० सी० आर० 597 : **मद्रास राज्य बनाम बी० जी० रो;**	26, 99
[1952]	(1952) ए० आई० आर० 1952 इलाहाबाद 275 : **राम स्वरूप बनाम नानक राम;**	66
[1951]	ए० आई० आर० 1951 कलकत्ता 456 : **चिंताहरण घोष और अन्य बनाम गुजाराद्दी शेक और अन्य;**	35, 66
[1943]	ए० आई० आर० 1943 कलकत्ता 203 : **बंकू बिहारी मंडल बनाम बंकू बिहारी हाजरा और एक अन्य;**	35, 63
[1942]	ए० आई० आर० 1942 कलकत्ता 311 : **बुधकरण चंखानी बनाम ठाकुर प्रसाद शाह;**	35, 63
	27 आई० ए० 216 : **मलिक अर्जुन बिन शिदरामव्वा पासरे बनाम नरहरी सिन शिवप्पा और एक अन्य.**	76

निर्दिष्ट विदेशी मामले

458 यू० एस० 592, 73 लायर्स एडिशन, सेकेंड 995, 1026, सीटी 3260 : **अल्फर्ड डी० स्नैप एंड संस इनकारपोटेड बनाम प्यूरटो रीको;**	35, 36

205 यू० एस० 230, 51 लायर्स एडिशन 1038, 27 एस० सी० टी० 618 :
जोर्जिया बनाम **टेन्नेस्सी कापर कंपनी**; 35

[1964] 1964 एस० सी० 1129 :
रूक्स बनाम **बर्नार्ड**; 92

[1960] 1960 अपील केसेज 490 :
बेल फास्ट कारपोरेशन बनाम **ओ० डी० कमीशन**; 63

[1957] (1957) 2 क्वीन्स बेंच 55 (पृ० 64) :
जोंस बनाम **नेशनल कोल बोर्ड लिमिटेड**; 130

[1868] 1868 जिल्द 3 एल० आर० ई० एंड आई० अपील केसेज 330 :
रिलैंड्स बनाम **फ्लेचर.** 91

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 1989 की रिट याचिकाएं सं० 268 तथा 281 एवं 1986 की रिट याचिकाएं सं० 164 तथा 1551.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका।

न्यायालय में उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से महान्यायवादी के० परासरन, सर्वश्री आर०के० गर्ग, एल० एन० सिन्हा, वेपा पी० सारथी, शांति भूषण, राकेश लूथरा, सी० एल० साहू, इंदीवर गुडविल, एन० एस० मलिक, एन० एस० पुंडिर, आर०सी० कौशिक, डी०के० गर्ग, राजीव धवन, अनिप सचदे, आर० सी० पाठक, एच०डी० पाठक, हरीश उप्पल, एस०के० गंभीर गोपाल सुब्रह्मण्यम्, डी० एस० शास्त्री, अरुण शर्मा, सी०वी०एस० राव, सतीश के०अग्निहोत्री, अशोक कुमार सिंह, आर० के० जैन, कैलाश वासदेव, प्रशांत भूषण और डा० वी० गौरी शंकर तथा सुश्री इंदिरा जयसिंह एवं कुमारी कामिनी जायसवाल और कुमारी ए० सुभाषिणी।

न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित न्यायधीशों ने अलग-अलग दिया।

मु० न्या० सब्यसाची मुखर्जी—प्रश्न यह है कि क्या भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम, 1985 (इसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) सांविधानिक रूप से विधिमान्य है।

2. यह अधिनियम भयावह त्रासदी के परिणामस्वरूप पारित किया गया था। 2 दिसंबर, 1984 की रात को भारत के मध्य प्रदेश राज्य के भोपाल नगर में ऐसी घटना

घटी, जो अभिलिखित मानव इतिहास में सर्वाधिक त्रासद औद्योगिक विभीषिका है। उस रात यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'यूनियन कार्बाइड' कहा गया है) के भोपाल संयंत्र के एम० आई० सी० (मिक) स्टोरेज टैंक से प्राणहर गैस विपुल मात्रा में निकल पड़ी और परिणामस्वरूप असंख्य लोगों की मृत्यु हुई और अकथनीय विभीषिका का लोगों को सामना करना पड़ा। यूनियन कार्बाइड के स्वामित्वाधीन और उसके द्वारा संचालित एक रासायनिक संयंत्र भोपाल नगर के उत्तरी भाग में स्थित था। उसके दक्षिण ओर असंख्य छोटी-छोटी झोंपड़ियां थीं, जिनमें कंगाल आबादकार (इम्पावरिश्ड स्कैटर्स) रहते थे। यूनियन कार्बाइड सेविन और तैमिक नामक अथवा नाशक जीवमान का निर्माण भोपाल संयंत्र में करती थी और जैसा कि संयुक्त राज्य के जिला न्यायालय के न्यायाधीश जान एफ० कीनन ने अपने निर्णय में कहा है, यह विनिर्माण निर्विवाद रूप से भारत सरकार के अनुरोध पर और उसके अनुमोदन से किया जाता था। यूनियन कार्बाइड समुचित भारतीय विधि के अधीन सन् 1964 में निगमित हुई थी। इसकी अंशधृतियों के 50.99 प्रतिशत की स्वामी यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन है, जो न्यूयार्क स्थित कारपोरेशन है। यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड इस कारपोरेशन की एक समनुषंगी कंपनी है, जिसके 22 प्रतिशत अंशों के स्वामी भारतीय जीवन बीमा निगम तथा भारतीय यूनिट ट्रस्ट हैं।

3. मैथिल आइसोसियानेट (मिक) एक अत्यंत विषैली (जहरीली) गैस है, जो सेविन एवं तैमिक के विनिर्माण में प्रयोग किया जाने वाला एक तत्व है। इस त्रासदी की रात को एम० आई० सी० (मिक) संबद्ध संयंत्र से प्रभूत मात्रा में निकल पड़ी। गैस के इस प्रकार निकलने के वास्तविक कारण और परिस्थितियां अभी तक अभिनिश्चित नहीं हुई हैं और न ही स्पष्ट रूप से साबित हुई हैं। इस विभीषिका के परिणाम अत्यंत भयावह थे। यद्यपि इस संबंध में कोई भी निश्चित रूप से नहीं बता सकता कि गैस के इस प्रकार निकलने के तुरंत और सीधे परिणामस्वरूप वस्तुतः कितने लोगों की मृत्यु हुई, अनुमान के अनुसार ऐसे मृत लोगों की संख्या लगभग 3,000 है। कुछ लोगों को ऐसी क्षतियां पहुंचीं, जिनके प्रभाव को विद्वान् काउंसेल सुश्री इंदिरा जयसिंह ने कैंसरजनक (कासिनजेनिक) और व्यक्ति-विकास पर कुप्रभाव डालने वाला (अन्टोजेनिक) बताया है। कुछ लोगों को गंभीर और स्थायी क्षतियां पहुंचीं और कुछ को मामूली और अस्थायी। पशु धन की अपार क्षति हुई और उन्हें कई रोग भी लग गए। कारबार में व्यवधान पड़ा। वातावरण प्रदूषित हो गया और पारिस्थितिकी (इकोलाजी) पर भी कुप्रभाव पड़ा। पेड़-पौधे तथा जीव-जन्तु भी विक्षुब्ध हुए।

4. 7 दिसंबर, 1984 को कारपोरेशन के अध्यक्ष श्री वारेन एंडरसन भोपाल आए, जिन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। बाद में उन्हें जमानत पर छोड़ दिया गया। दिसंबर, 1984 और जनवरी, 1985 के बीच अनेक आहत व्यक्तियों की ओर से अमेरिका के न्यायालयों में अमेरिकी विधि-व्यवसायियों द्वारा वाद फाइल किए गए। यह कहा गया है कि विभीषिका के एक सप्ताह के भीतर ही अनेक अमेरिकी विधि-व्यवसायी, जिन्हें कुछ लोगों ने रोगी वाहन अनुगामी (एम्बुलेंस चेजर्स) कहा गया है, भोपाल आए और उन्होंने कारपोरेशन तथा यूनियन कार्बाइड के विरुद्ध वाद फाइल करने के लिए वकालतनामे अभिप्राप्त किए। कहा गया है कि उनकी फीस नुकसानी प्राप्त करने की आकस्मिकता के अधीन नुकसानी के एक प्रतिशत पर

आधारित थी। कुछ वाद भोपाल के जिला न्यायालय में व्यष्टिक दावेदारों द्वारा कारपोरेशन (अमेरिकी कंपनी) तथा यूनियन कार्बाइड लिमिटेड के विरुद्ध फाइल किए गए।

5. 6 फरवरी, 1985 को या उसके आसपास संयुक्त राज्य अमेरिका के विविध जिला न्यायालयों में फाइल किए गए वादों को बहु-जिला मुकदमेबाजी से संबद्ध न्यायिक पैनल द्वारा समेकित किया गया और उसे न्यूयार्क के दक्षिणी जिले के जिला न्यायालय को समनुदिष्ट किया गया। इस न्यायालय के पीठासीन न्यायाधीश सभी तात्विक समयों पर जज कीनन थे।

6. 29 मार्च, 1985 को प्रश्नगत अधिनियम पारित किया गया। यह अधिनियम यह सुनिश्चित करने के लिए पारित किया गया कि भोपाल गैस विभीषिका से उद्भूत होने वाले या उससे संबद्ध दावों के संबंध में कार्यवाही शीघ्रतापूर्वक, प्रभावी रूप में और साम्यापूर्ण रीति में की जा सके। 8 अप्रैल, 1985 को अधिनियम के आधार पर भारत संघ ने न्यूयार्क के दक्षिणी जिले के संयुक्त राज्यीय जिला न्यायालय के समक्ष परिवाद फाइल किया। 16 अप्रैल, 1985 को न्यूयार्क के दक्षिणी जिले में स्थित संयुक्त राज्य के जिला न्यायालय के न्यायाधीश कीनन ने अपने समक्ष अंतरित और स्वयं को समनुदिष्ट समेकित वाद में विचारण पूर्ण प्रथम सम्मेलन के दौरान निम्नलिखित निदेश दिए—

(i) एक त्रि-सदस्यीय कार्यपालक समिति बनाई जाए, जो इस मामले के विवाद्यक विरचित करे और उनका विकास करे तथा विचारण के लिए अथवा समझौता वार्ता के लिए शीघ्रतापूर्वक तैयारी करे। यह समिति भारत संघ द्वारा प्रतिधारित फर्म द्वारा चुने गए एक विधि व्यवसायी तथा व्यष्टिक वादियों द्वारा प्रतिधारित विधि व्यवसायियों द्वारा चुने गए दो अन्य विधि व्यवसायियों द्वारा गठित होनी थी।

(ii) मूल मानवीय शिष्टता का यह तकाजा है कि आहत व्यक्तियों को अस्थायी अनुतोष दिया जाए और यह अनुतोष एक प्रणालीबद्ध और समुचित रूप में बिना अनावश्यक विलंब के और तत्समय लंबित मुकदमेबाजी की स्थिति से निरपेक्षत: दिया जाता रहे।

7. 24 सितंबर, 1985 को भारत सरकार ने अधिनियम की धारा 9 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए भोपाल गैस विभीषिका (दावा रजिस्ट्रीकरण और कार्यवाही) स्कीम, 1985 विरचित की (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'स्कीम' कहा गया है)।

8. 12 मई, 1986 को जज कीनन ने एक आदेश पारित किया, जिसके द्वारा उन्होंने कारपोरेशन के आवेदन को, जो असुविधाजनक अधिकरण के अभिवाक् पर आधारित था, मंजूर कर लिया, जैसा कि इसमें इसके पश्चात् उपदर्शित किया गया है। 21 मई, 1986 को प्राइवेट वादियों की ओर से ऋजु सुनवाई के लिए आवेदन किया गया था। 26 जून, 1986 को व्यष्टिक वादियों ने जज कीनन के आदेश को चुनौती देते हुए अपील सैकेण्ड सर्किट के लिए संयुक्त राज्य अपील न्यायालय के समक्ष फाइल की। 28 मई, 1986 के आदेश द्वारा जज कीनन ने ऋजु सुनवाई के आवेदन को नामंजूर कर दिया। सुनवाई की प्रार्थना को इसलिए अस्वीकार कर दिया गया कि भारत संघ ने प्रस्थापित समझौते की रकम को अत्यंत अल्प

बताते हुए न्यायालय से अनुरोध किया था। 10 जुलाई, 1986 को कारपोरेशन ने सैकेण्ड सर्किट के संयुक्त राज्य अपील न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की। उसने इस बात को चुनौती दी कि भारत संघ प्रकटीकरण के अमेरिकी ढंग का हकदार है। किंतु यह कहा गया है कि कारपोरेशन ने जज कीनन द्वारा अधिरोपित अन्य दो शर्तों को चुनौती नहीं दी। 28 जुलाई, 1986 को भारत संघ ने संयुक्त राज्य अपील न्यायालय के समक्ष प्रति-अपील फाइल की, जिसमें यह प्रार्थना की गई कि जज कीनन द्वारा अधिरोपित शर्तों में से किसी को भी हटाया जाना नहीं चाहिए। इस संदर्भ में यह सुसंगत होगा कि जज कीनन के 12 मई, 1986 के उस आदेश में निगमित शर्तों का उपवर्णन किया जाए, जिसके द्वारा उन्होंने अपने समक्ष मामले को असुविधाजनक अधिकरण के अभिवाक् के आधार पर खारिज कर दिया था, जैसा कि पहले कहा गया है। शर्तें निम्नलिखित थीं—

(1) कारपोरेशन भारत के न्यायालयों की अधिकारिता स्वीकार करेगा और परिसीमा कानून पर आधारित प्रतिवादों का अधित्यजन करता रहेगा;

(2) कारपोरेशन भारतीय न्यायालय द्वारा अपने विरुद्ध दिए गए किसी भी निर्णय या यदि वह अपील योग्य है तो अपील पर संपुष्ट किए गए निर्णय की संपुष्टि करने के लिए सहमत रहेगा, किंतु यह तब जबकि निर्णय या संपुष्ट निर्णय 'सम्यक् प्रक्रिया की न्यूनतम अपेक्षाओं के अनुरूप हों'; और

(3) कारपोरेशन वादियों द्वारा समुचित मांग किए जाने के पश्चात् संयुक्त राज्य की सिविल प्रक्रिया के संघीय नियमों के अधीन प्रकटीकरण के अध्यधीन होगा।

9. 5 सितंबर, 1986 को भारत संघ ने नुकसानी के लिए वाद भोपाल के जिला न्यायालय में फाइल किया, जो नियमित वाद सं० 1113/86 है। अन्य बातों के साथ-साथ इसी वाद का तथा उसमें पारित आदेशों का इस न्यायालय के 14 तथा 15 फरवरी, 1989 के आदेशों द्वारा निपटारा किया गया, जिनके प्रति निर्देश बाद में किया जाएगा। भारत संघ के आवेदन पर 17 नवंबर, 1986 को भोपाल के जिला न्यायालय ने एक अस्थायी व्यादेश दिया, जिसके द्वारा कारपोरेशन को अपनी आस्तियों को बेचने, लाभांश का संदाय करने या भूतलक्षी रूप से ऋण लेने से अवरुद्ध किया। 27 नवंबर, 1986 को यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन ने एक वचनबंध फाइल किया, जिसके द्वारा यह वचन दिया कि वह अपनी अविल्लंगमित आस्तियों को तीन बिलियन अमेरिकी डालर तक परिरक्षित और अनुरक्षित रखेगा।

10. 30 नवंबर, 1986 को भोपाल जिला न्यायालय ने कार्बाइड के विरुद्ध लगाए गए उस व्यादेश को प्रभावोन्मुक्त कर दिया, जो उसे अपनी आस्तियों को बेचने से अवरुद्ध करता था और जिसका आधार यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन द्वारा दिया गया वह लिखित वचनबंध था, जिसमें उसने यह वचन दिया था कि वह अपनी अविल्लंगमित आस्तियों को तीन बिलियन अमेरिकी डालर तक बनाए रखेगा। 16 दिसंबर, 1986 को यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन ने लिखित कथन फाइल किया, जिसमें यह अभिवाक् किया कि वे इस आधार पर दायी नहीं थे, उनका भारतीय कंपनी के साथ कोई संबंध नहीं था और वे एक भिन्न विधिक सत्ता थे और उन्होंने कभी किसी भी प्रकार के किसी नियंत्रण का प्रयोग नहीं किया

1989(12) eILR(PAT) SC 1

था और वे वाद के अधीन दायी नहीं थे। तत्पश्चात् 14 जनवरी, 1987 को सैकेण्ड सर्किट के अपील न्यायालय ने जज कीनन के विनिश्चय की पुष्टि कर दी, किंतु उस शर्त को निकाल दिया, जो भारत संघ के पक्ष में अमेरिकी प्रक्रिया के अधीन प्रकटीकरण के संबंध में लगाई गई थी। उसने स्वप्रेरणा से इस शर्त को भी अपास्त कर दिया कि भारतीय न्यायालय द्वारा सम्यक् प्रक्रिया का अनुपालन करते हुए दिए गए निर्णय पर जारी की गई डिक्री की तुष्टि कारपोरेशन को करनी चाहिए। उसने यह भी निर्णय दिया कि ऐसी शर्त अधिरोपित नहीं की जा सकती, क्योंकि संबद्ध स्थिति रिकगनीशन आफ फारेन कंट्री मनी जजमेंट्स ऐक्ट (विदेशी धन निर्णय मान्यता अधिनियम) के उपबंधों की परिधि में आती थी।

11. 2 अप्रैल, 1987 को न्यायालय ने सभी पक्षकारों से एक लिखित प्रस्थापना की कि वे गैस पीड़ित व्यक्तियों के लिए समझौताजन्य अंतरिम अनुतोष के संबंध में विचार करें। सितंबर, 1987 में कारपोरेशन ने और भारत सरकार ने भोपाल के जिला न्यायाधीश के न्यायालय से समझौते के लिए सूत्र ढूंढ़ने हेतु समय मांगा। विद्वान् महान्यायवादी ने यह प्रकथन किया है कि पूर्ण और अंतिम समझौते को प्रभावी करने से बहुत पहले ही समझौते की संभावना थी। उन्होंने हमारा ध्यान इस प्रकथन की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया है कि संबद्ध व्यक्ति इस बात से अवगत थे कि समझौते के लिए समय-समय पर प्रयास किए जाते रहे। बहरहाल, नवंबर, 1987 में भारत सरकार और यूनियन कार्बाइड, दोनों ने ही यह घोषणा की कि समझौता जन्य वार्ता असफल हो गई और न्यायाधीश देव ने समय बढ़ा दिया।

12. भोपाल के जिला न्यायाधीश ने 17 दिसंबर, 1987 को 350 करोड़ रुपये के अंतरिम अनुतोष का आदेश किया, जिससे व्यथित होकर कारपोरेशन ने एक सिविल पुनरीक्षण फाइल किया, जो 1988 की सिविल पुनरीक्षण याचिका सं० 26 के रूप में रजिस्ट्रीकृत हुआ और उसकी सुनवाई की गई। 4 फरवरी, 1988 को या उसके आसपास भोपाल के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने केंद्रीय जांच ब्यूरो द्वारा यूनियन कार्बाइड के विरुद्ध फाइल किए गए दांडिक मामले में यूनियन कार्बाइड, हांगकांग को वारंट के लिए नोटिस का आदेश किया। उस मामले में आरोप पत्र भारतीय दंड संहिता की धारा 35 के साथ पठित उसकी धारा 304, 324, 326 तथा 429 के अधीन था और आरोप सर्वश्री वारेन एंडरसेन, केशव महिंद्रा, विजय गोखले, जे० मुकंद, डा० आर० बी० राय चौधरी, एस० पी० चौधरी, के० वी० शेट्टी, एस० आई० कुरैशी और संयुक्त राज्य अमेरिका के हांगकांग के यूनियन कार्बाइड और कलकत्ता वाले यूनियन कार्बाइड के विरुद्ध था। इसमें यूनियन कार्बाइड के विरुद्ध यह आरोप था कि एम० आई० सी० (मिक) गैस का भंडारण किया गया था और यह भी कहा गया था कि एम० आई० सी० (मिक) गैस का भंडारण या उसके संबंध में अन्य व्यवहार मोर्चा रहित पात्रों में किया जाना था, किंतु ऐसा नहीं किया गया। आरोप पत्र में अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा गया कि डा० वरदराजन की अध्यक्षता वाले वैज्ञानिक दल ने यह निष्कर्ष निकाला है कि जिनके कारण विषैली गैस निकली और जिससे अपार जन क्षति हुई वे तत्व थे—मिक गैस में अति उच्च अभिक्रियाशीलता (रिएक्टीविटी) के विशेष तत्व ज्वलनशीलता और विषैली गैस के अभिस्वसन। आरोप पत्र में यह भी कहा गया कि दुर्घटना के कारण थे—सामग्री का अत्यधिक मात्रा में अत्यंत बड़े पात्रों में और अत्यधिक समय तक अनावश्यक भंडारण, उनकी डिजाइन में पर्याप्त सतर्कता का अभाव

और उस सामग्री के चयन में भी असावधानी, जिससे उसका निर्माण किया गया था। इसी प्रकार नापने वाले तथा चेतावनी देने वाले (अलार्म) उपकरणों की व्यवस्था में भी असावधानी भंडारण प्रणाली का अपर्याप्त नियंत्रण तथा भंडारित सामग्री की गुणवत्ता का अपर्याप्त नियंत्रण एवं अस्थिरता दर्शित करने वाली सामग्री के प्रभावी और शीघ्र व्ययन के लिए आवश्यक सुविधाओं का अभाव। उसमें यह भी आरोप लगाया गया कि एम० आई० सी० (मिक) का भंडारण उपेक्षापूर्ण रीति में किया गया था और स्थानीय प्रशासन को अन्य बातों के साथ-साथ एम० आई० सी० (मिक) गैस के उच्छन्न होने के संकटपूर्ण प्रभाव के संबंध में अथवा गैसों की अभिक्रियाशीलता के संबंध में और तुरंत किए जाने वाले चिकित्सीय उपायों के संबंध में सूचित नहीं किया गया था। डिजाइन में त्रुटियों के अलावा यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन ने वी०जी०एस० से आर०वी०एच० और पी० वी० एच० लाइनों में घोल के बहने को रोकने के लिए पर्याप्त उपचारात्मक कार्यवाही नहीं की थी। अन्य अनेक उपेक्षाजन्य आपराधिक कृत्यों के संबंध में भी अभिकथन किए गए थे। उच्च न्यायालय ने 17-12-87 के आदेश के प्रवर्तन पर रोक लगाते हुए आदेश पारित किया, जिसमें यह निदेश दिया गया कि उक्त आदेश की तारीख से दो मास के भीतर प्रतिवादी-आवेदक 350 करोड़ रुपये जमा करें। 4 अप्रैल, 1988 को उच्च न्यायालय द्वारा आदेश पारित किए गए, जिनके द्वारा जिला न्यायाधीश के आदेश को उपांतरित किया गया और 250 करोड़ रुपये का अंतरिम अनुतोष दिया गया। उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिष्ठायी अपकृत्य विधि के अधीन न्यायालय को यह अधिकारिता है कि वह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 के अधीन अंतरिम अनुतोष दे। 30 जून, 1988 को न्यायाधीश देव ने एक आदेश पारित किया, जिसके द्वारा उन्होंने यूनियन कार्बाइड को इस बात से अवरुद्ध किया कि वह किसी व्यष्टिक गैस कांड वादी से समझौता करे। 6 सितंबर, 1988 को अंतरिम आदेश के विरुद्ध यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन द्वारा फाइल की गई याचिका में इस न्यायालय द्वारा विशेष इजाज़त दी गई और उस याचिका में भी विशेष इजाज़त दी गई, जिसमें भारत संघ द्वारा प्रतिकर की मात्रा को 350 करोड़ रुपये से घटाकर 250 करोड़ रुपये करने को चुनौती दी गई थी। तत्पश्चात् इन मामलों की सुनवाई भारत के विद्वान् मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता वाले न्यायपीठ ने नवंबर-दिसंबर, 1988 में की और सुनवाई जनवरी-फरवरी, 1989 तक भी चलती रही और अंततः 14-15 फ़रवरी, 1989 को आदेश पारित किया गया, जो समझौते के रूप में परिणत हुआ।

13. अधिनियम की सांविधानिक विधिमान्यता का निर्णय करते समय पश्चात्वर्ती घटनाओं पर भी विचार करना होगा अर्थात् इस बात पर विचार करना होगा कि अधिनियम का कार्यान्वयन किस प्रकार हुआ है। अतः इस न्यायालय के संबद्ध दोनों आदेशों के प्रति निर्देश करना आवश्यक होगा। कहावत है कि रोटी के स्वाद का पता उसे खाने से ही चलता है और कदाचित अधिनियम में प्रयुक्त भाषा पर विचार करते समय 14 तथा 15 फरवरी, 1989 को किए गए परिनिर्धारण के निबंधनों की उपेक्षा करना संभव नहीं है। क्या वह विधिमान्य और उचित है—या क्या अधिनियम का कार्यान्वयन किसी अनुचित रीति में हुआ है, ये प्रश्न उठते हैं।

14. 14 फरवरी, 1989 को विशेष इजाज़त याचिका (सिविल) सं० 13080/88 के साथ-साथ सिविल अपील सं० 3187/88 में आदेश पारित किया गया। उस मामले के

पक्षकार थे यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन, भारत संघ एवं जन स्वास्थ्य केंद्र, भोपाल, जहरीली गैस कांड संघर्ष मोर्चा, भोपाल, मध्य प्रदेश। उस आदेश में यह कहा गया था कि न्यायालय के समक्ष रखे गए सभी तथ्यों और परिस्थितियों, संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यायालयों में कार्यवाहियों से संबद्ध सामग्री, विभिन्न कार्यवाहियों के दौरान, विभिन्न प्रक्रमों पर संबद्ध पक्षकारों के बीच की गई प्रस्थापनाओं तथा प्रति प्रस्थापनाओं एवं उठाए गए विधि और तथ्य के जटिल विवाद्यकों तथा उनके संबंध में दी गई दलीलों पर और विशेषतया भोपाल गैस विभीषिका के कारण हुई मानवीय यातना की घोरता और विभीषिका पीड़ित या उनके शिकार लोगों को तुरंत और सारवान् अनुतोष देने की अत्यंत आत्ययिकता पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय का यह निष्कर्ष था कि यह मामला इस बात के लिए अत्यंत समुचित मामला है कि पक्षकारों के बीच ऐसा समझौता कराया जाए या मामले का इस प्रकार निपटारा किया जाए जिसकी परिधि में इस विभीषिका से उत्पन्न होने वाले या उससे संबद्ध सभी मुकदमे, दावे, अधिकार और दायित्व आ जाएं और अन्य आदेशों के साथ-साथ निम्नलिखित आदेश पारित करना न्यायोचित, साम्यापूर्ण और युक्तियुक्त पाया गया—

> "(1) भोपाल गैस विभीषिका से संबद्ध और उससे उत्पन्न होने वाले सभी दावों, अधिकारों और दायित्वों के पूर्ण परिनिर्धारण के रूप में यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन, भारत संघ को 470 मिलियन अमेरिकी डालर की राशि का संदाय करेगा।
>
> (2) पूर्वोक्त राशि का संदाय यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन द्वारा भारत संघ को 31 मार्च, 1989 को या उससे पूर्व किया जाएगा।
>
> (3) परिनिर्धारण को प्रभावी करने में समर्थ बनाने के लिए, भोपाल गैस विभीषिका से संबद्ध और उससे उत्पन्न होने वाली सभी सिविल कार्यवाहियां इस न्यायालय को एतद्द्वारा अंतरित हो जाएंगी और उनका इस परिनिर्धारण के निबंधनों के अनुसार निपटारा हो जाएगा और विभीषिका से संबद्ध और उससे उत्पन्न होने वाली सभी दांडिक कार्यवाहियां, वे जहां कहीं भी लंबित हों, अभिखंडित हो जाएंगी ......।"

15. तत्पश्चात् एक लिखित ज्ञापन फाइल किया गया और न्यायालय ने 15 फरवरी, 1989 को उस पर सम्यक् विचार करने के पश्चात् आदेश पारित किया। परिनिर्धारण के निबंधन निम्नलिखित थे—

> "(1) पक्षकार यह अभिस्वीकार करते हैं कि 14 फरवरी, 1989 का आदेश 1986 के वाद सं० 1113 में सभी कार्यवाहियों का संपूर्णतः निपटारा करता है। यह परिनिर्धारण यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन, यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड, यूनियन कार्बाइड ईस्टर्न और उनकी सभी समनुषंगी कंपनियों तथा सहयोजित कंपनियों के विरुद्ध एवं उनके वर्तमान और भूतपूर्व प्रत्येक निदेशक, अधिकारी, कर्मचारी, अभिकर्ता, प्रतिनिधि, अटर्नी, अधिवक्ता और सॉलिसिटर के विरुद्ध सभी विगत, वर्तमान और भावी दावे, वाद हेतुक तथा सिविल और दांडिक कार्यवाहियां (वे जहां

कहीं भी लंबित हों और उनकी प्रकृति कुछ भी हो) जो भोपाल गैस विभीषिका से संबद्ध हों और सभी विगत, वर्तमान या भावी मृत्युओं, वैयक्तिक क्षतियों, स्वास्थ्य पर पड़े प्रभावों, प्रतिकर, हानि, नुकसानी और सिविल तथा दांडिक परिवादों की बाबत, चाहे वे किसी भी प्रकृति के हों, सभी भारतीय नागरिकों और सभी लोक या प्राइवेट सत्ताओं द्वारा किए गए या किए जाने वाले सभी ऐसे दावे और वाद हेतुक, जिनके अंतर्गत एक दूसरे के विरुद्ध किए गए या किए जाने वाले सभी विगत, वर्तमान और भावी दावे, वाद हेतुक और कार्यवाहियां आती हैं। चाहे वे भारत के भीतर हों या उसके बाहर एतद्द्वारा निर्वापित हो गए हैं और उनके अंतर्गत भोपाल गैस विभीषिका (दावा रजिस्ट्रीकरण और कार्यवाही) स्कीम, 1985 के अधीन फाइल किए गए या फाइल किए जाने वाले सभी दावे बिना किसी निर्बंधन के आते हैं और भारत में ऐसी सभी सिविल कार्यवाहियां, एतद्द्वारा इस न्यायालय को अंतरित की जाती हैं और उन्हें प्रतिकूल प्रभाव सहित खारिज किया जाता है और ऐसी सभी दांडिक कार्यवाहियां, जिनके अंतर्गत अवमान कार्यवाहियां भी आती हैं, अभिखंडित की जाती हैं और अभियुक्तों के संबंध में यह समझा जाता है कि उन्हें दोषमुक्त कर दिया गया है।

(2) इस न्यायालय के निदेशों के अनुसार, पूर्ण संदाय किए जाने पर जिला न्यायालय, भोपाल में 30 नवंबर, 1986 को दिए गए आदेश के अनुसरण में, यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन द्वारा दिया गया वचनबंध प्रभावोन्मुक्त किया जाता है और 1986 में वाद सं० 1113 में पारित सभी आदेश अथवा उनसे किए गए पुनरीक्षणों में पारित सभी आदेश भी प्रभावोन्मुक्त हो गए हैं।"

16. अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के कथन से यह प्रकट होता है कि संसद् ने यह माना कि गैस रिसाव विभीषिका, जिसमें 2 और 3 दिसंबर, 1984 को अत्यंत अनिष्ठकर और असाधारणतः खतरनाक गैस यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड के संयंत्र से, जो यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन की एक समनुषंगी कंपनी है, निकली, जिसकी प्रकृति अभूतपूर्व थी और जिसके कारण, जैसा कि पहले कहा गया है, व्यापक स्तर पर जीवन और संपत्ति का नुकसान हुआ। यह भी कहा गया कि ऐसे शिकार व्यक्ति, जो किसी प्रकार जीवित बचे, वे अभी तक प्रतिकूल प्रभावों से पीड़ित हैं और उनके मामलों में भविष्य में जो कठिनाइयां और दुःख हो सकते हैं, उनकी पूर्ण कल्पना नहीं की जा सकती। सुश्री इंदिरा जयसिंह ने यह प्रकथन किया कि पीड़ित व्यक्तियों में से कुछ के मामलों में क्षतियां कैंसरजनक और व्यक्ति विकास पर कुप्रभाव डालने वाली थीं और इनके कारण और भी प्रजनन संबंधी जटिलताएं उत्पन्न हो सकती हैं और नुकसान हो सकता है। इस विभीषिका को नियंत्रित करने के लिए और उसके प्रभावों को कम करने या अन्यथा उनका सामना करने के लिए केंद्रीय सरकार को और मध्य प्रदेश सरकार को तथा विभिन्न अभिकरणों को अत्यंत व्यापक स्तर पर व्यय करना पड़ा। तदनुसार, भोपाल गैस विभीषिका (दावा कार्यवाही) अध्यादेश, 1985 प्रख्यापित किया गया, जिसमें विभीषिका से पीड़ित व्यक्तियों के कल्याण के लिए एक आयुक्त की नियुक्ति के लिए तथा दावों के संबंध में कार्यवाही करने के लिए आवश्यक विभिन्न बातों का उपबंध करने के लिए स्कीम बनाने के लिए तथा दावों की तुष्टि में प्राप्त रकमों के संवितरण के रूप में या अन्यथा उपयोग के लिए उपबंध किए गए।

17. तत्पश्चात् अधिनियम पारित किया गया, जिसे राष्ट्रपति की अनुमति 29 मार्च, 1985 को मिली। अधिनियम की धारा 2(ख) में दावा परिभाषित किया गया है। इसमें यह उपबंधित है कि 'दावा से अभिप्रेत है,—(i) प्रतिकर या नुकसानी के लिए विभीषिका से उद्भूत होने वाला या उससे संबंधित कोई ऐसा दावा, जो ऐसी जीवन-हानि या वैयक्तिक क्षति के लिए है, जो हुई है या जिसके होने की संभावना है; (ii) विभीषिका से उद्भूत होने वाला या उससे संबंधित कोई ऐसा दावा, जो संपत्ति के किसी ऐसे नुकसान के लिए है, जो हुआ है या जिसके होने की संभावना है; (iii) ऐसे व्ययों के लिए दावा, जो विभीषिका को नियंत्रण में रखने के लिए या विभीषिका के प्रभावों को कम करने या उसके साथ अन्यथा निपटने के लिए उपगत किया गया है या उपगत किए जाने के लिए अपेक्षित है; (iv) विभीषिका से उद्भूत होने वाला या उससे संबंधित कोई अन्य दावा (जिसके अंतर्गत कारबार या नियोजन की हानि के रूप में भी कोई दावा है)। 'दावेदार' से दावा करने के लिए हकदार कोई व्यक्ति अभिप्रेत है। धारा 2 के स्पष्टीकरण में यह उपबंधित है कि खंड (ख) और खंड (ग) के प्रयोजनों के लिए, जहां किसी व्यक्ति की मृत्यु विभीषिका के परिणामस्वरूप हुई है, वहां ऐसे व्यक्ति की मृत्यु के लिए प्रतिकर या नुकसानी के लिए दावा उसके पति या पत्नी, संतान (जिसके अंतर्गत गर्भस्थ शिशु भी है) और मृत व्यक्ति के अन्य वारिसों के फायदे के लिए होगा और वे उसके संबंध में दावेदार समझे जाएंगे।

18. धारा 3 का शीर्षक है 'दावेदारों का प्रतिनिधित्व करने की केंद्रीय सरकार की शक्ति'। इसमें निम्नलिखित उपबंध हैं—

"3(1) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, केंद्रीय सरकार ऐसे प्रत्येक व्यक्ति का, जिसने ऐसे दावे से संबंधित सभी प्रयोजनों के लिए दावा किया है या जो दावा करने का हकदार है (चाहे भारत के भीतर या भारत के बाहर) उसी रीति से और उसी प्रभाव से, जो ऐसे व्यक्ति का है, प्रतिनिधित्व करेगी और उसके स्थान पर कार्य करेगी और उसे ऐसा करने का अनन्य अधिकार होगा।

(2) विशिष्टतया और उपधारा (1) के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना उसमें निर्दिष्ट प्रयोजनों के अंतर्गत निम्नलिखित हैं—

(क) किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकारी के समक्ष (चाहे भारत के भीतर या भारत के बाहर) किसी वाद या अन्य कार्यवाही को संस्थित करना या किसी ऐसे वाद या अन्य कार्यवाही को वापस लेना, और

(ख) कोई समझौता करना।

(3) उपधारा (1) के उपबंध उन दावों के संबंध में भी लागू होंगे, जिनके संबंध में इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व किसी न्यायालय में या अन्य प्राधिकारी के समक्ष (चाहे भारत के भीतर या भारत के बाहर) वाद या अन्य कार्यवाहियां संस्थित की गई हैं :

परंतु भारत के बाहर किसी न्यायालय में या अन्य प्राधिकारी के समक्ष इस अधिनियम के प्रारंभ से ठीक पूर्व लंबित किसी दावे के संबंध में किसी ऐसे वाद या

अन्य कार्यवाही की दशा में, केंद्रीय सरकार ऐसे दावेदार का, यदि ऐसा न्यायालय या अन्य प्राधिकारी इस प्रकार अनुज्ञा दे तो प्रतिनिधित्व करेगी और उसके स्थान पर या उसके साथ कार्य करेगी।"

19. धारा 4 का शीर्षक 'विधि-व्यवसायी द्वारा प्रतिनिधित्व का दावेदार का अधिकार'। इसमें निम्नलिखित उपबंधित हैं—

"धारा 3 में किसी बात के होते हुए भी किसी दावे के संबंध में किसी व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करने या उसके स्थान पर कार्य करने में, केंद्रीय सरकार किसी ऐसे विषय का सम्यक् ध्यान रखेगी, जिस पर ऐसे व्यक्ति द्वारा अपने दावे के संबंध में जोर दिया जाना अपेक्षित है और, यदि ऐसा व्यक्ति ऐसी वांछा करे तो ऐसे व्यक्ति के व्यय पर, उसके दावे से संबंधित किसी वाद या अन्य कार्यवाही का संचालन करने में उसकी पसंद के किसी विधि-व्यवसायी को सहयुक्त होने की अनुज्ञा देंगी।"

20. धारा 5 केंद्रीय सरकार की शक्ति के संबंध में है और इसमें यह व्यादिष्ट है कि इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने के प्रयोजन के लिए केंद्रीय सरकार को वही शक्तियां होंगी, जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय को होती हैं। धारा 6 में आयुक्त तथा अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति का उपबंध है। धारा 7 में प्रत्यायोजन की शक्तियां दी गई हैं। धारा 8 परिसीमा के संबंध में है, जबकि धारा 9 स्कीम बनाने की शक्ति के संबंध में है। केंद्रीय सरकार को एक ऐसी स्कीम बनाने के लिए व्यादिष्ट किया गया है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ दावों का प्रवर्तन सुनिश्चित करने के लिए उनके संबंध में कार्यवाही, स्कीम के प्रशासन और इस अधिनियम के उपबंधों के संबंध में व्ययों की पूर्ति के लिए निधि का सृजन और उन रकमों के संबंध में, जो केंद्रीय सरकार संसद् द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा विनियोग किए जाने के पश्चात् उपर्युक्त खंडों में निर्दिष्ट निधि में जमा कर सकेगी और कोई अन्य रकम जो ऐसी निधि में जमा की जा सकेगी, के संबंध में भी उपबंध होंगे। इस स्कीम के संबंध में यह व्यादेश दिया गया था कि यह बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाए। धारा 10 शंकाएं दूर करने के संबंध में है। धारा 11 अध्यारोही प्रभाव के संबंध में है और उसमें यह उपबंधित है कि इस अधिनियम के और उसके अधीन बनाई गई किसी स्कीम के उपबंध इस अध्यादेश से भिन्न किसी अधिनियमिति में या इस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति के आधार पर प्रभाव रखने वाली किसी लिखत में उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे।

21. एक स्कीम बनाई गई है, जो 24 सितंबर, 1985 को प्रकाशित की गई थी। उस स्कीम के खंड 3 में यह उपबंधित है कि अधिनियम की धारा 6 के अधीन नियुक्त किए गए उपायुक्त, अपनी अधिकारिता के क्षेत्रों के भीतर उद्भूत होने वाले दावों के रजिस्ट्रीकरण के लिए (जिसके अंतर्गत स्कीम के पैरा 5 के अधीन ऐसे दावों की प्राप्ति, संवीक्षा और समुचित प्रवर्गीकरण भी हैं) प्राधिकारी होंगे और उनकी सहायता ऐसे अन्य अधिकारी करेंगे, जिन्हें केंद्रीय सरकार दावों और अन्य संबंधित मामलों की संवीक्षा और सत्यापन के लिए अधिनियम

की धारा 6 के अधीन नियुक्त करे। इस स्कीम में दावा फाइल करने की रीति भी उपबंधित है। उसमें यह व्यादिष्ट है कि संबद्ध उपायुक्त आवेदन फाइल करने के लिए अपेक्षित प्ररूप देगा। उसमें दावों के प्रवर्गीकरण और रजिस्ट्रीकरण के लिए भी उपबंध है। खंड 5 के उपखंड (2) में यह व्यादेश दिया गया है कि रजिस्ट्रीकरण के लिए प्राप्त दावों को भिन्न-भिन्न शीर्षों के अधीन रखा जाएगा।

22. खंड 5 के उपखंड (3) में यह व्यादेश दिया गया है कि स्कीम के पैरा 4 के अधीन किए गए दावों पर विचार करने के पश्चात् यदि उपायुक्त की यह राय है कि दावे दावेदार द्वारा वर्णित प्रवर्ग से भिन्न प्रवर्ग में आते हैं तो वह दावेदार को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् और इस निमित्त उसके समक्ष रखे गए किन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, समुचित प्रवर्ग का विनिश्चय करेगा। खंड 5 का उपखंड (5) यह व्यादेश देता है कि यदि दावेदार उपायुक्त के आदेश से संतुष्ट नहीं है तो वह ऐसे आदेश के विरुद्ध आयुक्त को अपील कर सकेगा, जो इस अपील का विनिश्चय करेगा।

23. स्कीम के खंड 9 में ऐसी दावा कार्यवाही लेखा निधि के संबंध में उपबंध किया गया है, जिसमें वह राशि, जो केंद्रीय सरकार, संसद् द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा सम्यक् विनियोग के पश्चात्, उक्त निधि में जमा करे और कोई अन्य रकमें, जो ऐसी निधि में जमा की जाएं, सम्मिलित होंगी। इसमें यह उपबंधित है कि एक दावा और अनुतोष निधि भी होगी, जिसके अंतर्गत दावों की तुष्टि में प्राप्त रकमें होंगी और कोई अन्य रकमें भी होंगी, जो आयुक्त को दान के रूप में अथवा अनुतोष के प्रयोजनों के लिए उपलब्ध कराई जाएं। खंड 10 के उपखंड (3) में यह उपबंधित है कि उक्त निधि की रकमों का उपयोग आयुक्त द्वारा दावों के निपटारे में अथवा राहत के रूप में संवितरण के लिए किया जाएगा अथवा इसका उपयोग भविष्य में उद्भूत होने वाले दावों के निपटारे के लिए अथवा भोपाल गैस विभीषिका से प्रभावित व्यक्तियों के सामाजिक और आर्थिक पुनर्वास के लिए मध्य प्रदेश सरकार को संवितरित किए जाने के लिए किया जाएगा।

24. स्कीम के खंड 11 में कतिपय राशियों के संवितरण एवं प्रभाजन के लिए उपबंध किया गया है और उक्त खंड के उपखंड (2) में यह व्यादेश दिया गया है कि केंद्रीय सरकार दावों के प्रत्येक प्रवर्ग के लिए प्रभाजित की जाने वाली प्रतिकर की कुल रकम और प्रत्येक प्रकार की क्षति या हानि के संबंध में साधारणतया, देय प्रतिकर की मात्रा का अवधारण कर सकेगी। उसके उपखंड (5) में यह उपबंधित है कि दावों की तुष्टि के लिए प्राप्त रकमों के संवितरण के बारे में विवाद की दशा में उपायुक्त के आदेश के विरुद्ध अपील अपर आयुक्त को होगी, जो मामले का विनिश्चय कर सकेगा और इस प्रकार से संवितरण कर सकेगा, जैसे वह, ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे, उपयुक्त समझे। अन्य खंड हमारे प्रस्तुत प्रयोजनों के लिए सुसंगत नहीं हैं।

25. इन मामलों के भिन्न-भिन्न पक्षकारों के काउंसेलों ने गैस पीड़ित व्यक्तियों के लिए हमारे समक्ष अपनी-अपनी दलीलें रखी हैं। श्री आर० के० गर्ग, सुश्री इंदिरा जयसिंह और श्री कैलाश वासदेव ने अधिनियम की विधिमान्यता को अनेक आधारों पर चुनौती देते हुए, अनेक दलीलें दी हैं। सभी ने यह दलील दी है कि अधिनियम उनके द्वारा सुझाई गई रीति में

और संपूर्णतः पढ़ा जाना चाहिए। भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन की ओर से मध्यक्षेपियों के लिए हाजिर होने वाले श्री शांति भूषण ने और उनका अनुसरण करते हुए श्री प्रशांत भूषण ने यह दलील दी है कि अधिनियम को उनके द्वारा बताई गई रीति में पढ़ा जाना चाहिए और यदि अधिनियम इस प्रकार नहीं पढ़ा जाएगा तो वह पीड़ितों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघनकारी हो जाएगा और इस प्रकार असंवैधानिक हो जाएगा। दूसरी ओर विद्वान् महान्यायवादी ने, जिनकी सहायता श्री गोपाल सुब्रह्मण्यम कर रहे थे, यह दलील दी है कि अधिनियम विधिमान्य और सांविधानिक है और 14/15 फरवरी को, जो निपटारा किया गया, वह उचित और विधिमान्य है।

26. पृष्ठभूमि समझने के लिए सुश्री इंदिरा जयसिंह ने हमारे समक्ष लोक सभा की कार्यवाहियां रखीं, जिनमें माननीय मंत्री श्री वीरेंद्र पाटील ने 27 मार्च, 1985 को यह कहा था कि वह त्रासदी, जो 2 और 3 दिसंबर, 1984 को भोपाल में घटित हुई थी, अप्रतिम एवं अभूतपूर्व है और उसकी प्रकृति और आयाम इस प्रकार का है जो कि न केवल हमारे देश में अद्वितीय है, बल्कि संपूर्ण संसार में अद्वितीय है। यह कहा गया कि उपलब्ध विकल्पों में से एक यह था कि मामले का निपटारा भारतीय न्यायालयों में कराया जाए, दूसरा विकल्प यह था कि मामले अमेरिकी न्यायालयों में फाइल किए जाएं। श्री पाटील ने इस बात को दोहराया कि सरकार मूल कंपनी के विरुद्ध कार्यवाही करना चाहती थी और साथ ही जांच आयोग भी नियुक्त करना चाहती थी।

27. श्री गर्ग ने अपनी इस प्रतिपादना के समर्थन में कि अधिनियम असंवैधानिक है, यह दलील दी कि अधिनियम की परीक्षा इस न्यायालय द्वारा **स्टेट ऑफ मद्रास** बनाम **वी० जी० रो**[1] में अधिकथित मौलिक अधिकारों की कसौटी पर की जानी चाहिए। उस मामले में रिपोर्ट के पृष्ठ 607 पर इस न्यायालय ने यह बात दोहराई थी कि मौलिक अधिकारों पर निर्बंधन अधिरोपित करने वाली विधि की युक्तियुक्तता का विचार करते समय आक्षेपित निर्बंधन विधि के अधिष्ठायी एवं प्रक्रियात्मक, दोनों ही पक्षों की परीक्षा युक्तियुक्तता के दृष्टिकोण से की जानी चाहिए और युक्तियुक्तता की कसौटी जहां कहीं भी विहित की गई हो, आक्षेपित प्रत्येक व्यष्टिक कानून पर लागू की जानी चाहिए और युक्तियुक्तता का ऐसा अमूर्त मानक या साधारण पैटर्न अधिकथित नहीं किया जा सकता, जो सभी मामलों को लागू हो सके। न्यायिक अधिमत में उस अधिकार की प्रकृति, जिसके संबंध में अभिकथन है कि उसका उल्लंघन किया गया है, अधिरोपित निर्बंधनों में अंतर्निहित प्रयोजन, उसके द्वारा उपचार किए जाने के लिए ईप्सित बुराई का विस्तार और उसकी आत्ययिकता, निर्बंधन का अनुपात, संबद्ध समय पर विद्यमान परिस्थितियां—इन सभी बातों पर विचार किया जाना चाहिए। (अधोरेखांकन जोर देने के लिए किया गया है)। मुख्य न्यायमूर्ति पातंजलि शास्त्री ने इस बात को दोहराया कि मामला-विशेष की परिस्थितियों में ऐसे भ्रांतिजनक तत्वों का मूल्यांकन करने में और क्या युक्तियुक्त है, इसके संबंध में स्वयं अपनी धारणा बनाने में यह अनिवार्य है कि विनिश्चय में भाग लेने वाले न्यायाधीशों का सामाजिक दर्शन और मूल्यों के संबंध में उनके अपने मानदंड महत्वपूर्ण भूमिका अदा करें।

[1] 1952 एस० सी० आर० 597.

28. अत: इस बात का निर्णय कि क्या गैस पीड़ित व्यक्तियों और नागरिकों के वे अधिकार, जो उनका स्वयं अपने मामलों की पैरवी करने और अपनी व्यथा का प्रकथन करने का है, धारा 3, 4 और 11 द्वारा विधिमान्य और उचित रूप में लिया गया है अथवा नहीं, संबद्ध समय पर विद्यमान परिस्थितियों, नागरिक के अधिकार की प्रकृति, न्यायालय में प्रवर्तन के लिए वाद लाने के अपने अधिकार पर लगाए गए निर्बंधनों का प्रयोजन अथवा स्वयं अपने शरीर या संपत्ति के विरुद्ध किए गए अपराधों के लिए दंड दिलवाने के लिए मुकदमा करने के अधिकार पर लगाए गए निर्बंधनों का प्रयोजन, अधिनियम द्वारा उपचार के लिए ईप्सित बुराइयों की आत्ययिकता और उनका विस्तार तथा विहित आशयित उपचार के प्रति निर्देश से नागरिक के अधिकार के ह्रास का अनुपात, इन सभी बातों के प्रकाश में किया जाना चाहिए। श्री गर्ग के अनुसार वर्तमान स्थिति यह अपेक्षा करती है कि ऐसी राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पृष्ठभूमि को पूर्णत: समझा जाए, जिसमें जीवन और स्वाधीनता के मूल्यवान अधिकारों को मूल अधिकारों के रूप में सम्मिलित किया गया और संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन उनके लिए उपचार भी प्रत्याभूत किया गया। उन्होंने यह दलील देना चाहा कि बहुराष्ट्रीय निगमों ने ऐसी शक्ति और क्षमता अभिप्राप्त कर ली है कि वे संप्रभु राष्ट्रों की राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता को कुचलना चाहते हैं और ऐसी शक्ति का प्रयोग उन्होंने पिछले चार दशकों में तीसरी दुनिया से काफी धन ले जाने में किया है। अब तीसरी दुनिया के देशों को उससे अधिक लूटा जा रहा है, जितना कि साम्राज्यवादी राष्ट्रों द्वारा गत तीन शताब्दियों के विदेशी शासन के दौरान तत्कालीन उपनिवेशों को लूटा जाता था। नागरिकों के अधिकारों तथा बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा अपने निगमजन्य आपराधिक कार्यों के लिए नैतिक और विधिक दायित्वों से इनकार करने की विपुल आर्थिक शक्तियों, जिनका कि उन्होंने दावा किया है, के बीच विरोध की दशा में न्यायालयों की भूमिका की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस पृष्ठभूमि में उन्होंने यह दलील दी कि ये विचारणाएं संविधान के अधीन मानव अधिकार न्यायशास्त्र को रूप देने में अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती हैं और ये तीसरी दुनिया के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं कि बहुराष्ट्रीय निगमों की शक्तियों और आर्थिक हितों को तथा विकसित राष्ट्रों द्वारा विकासशील देशों की विधियों का सम्यक् अनुपालन किए बिना उनका शोषण और दमन की शक्ति को विनियमित किया जाए। श्री गर्ग की यह दलील थी कि ऐसा प्रतीत होता है कि बहुराष्ट्रीय उद्योगों द्वारा तीसरी दुनिया के देशों की भूमि पर खतरनाक रसायनों के विनिर्माण तथा उनके व्यापार के संबंध में यह अपेक्षित है कि स्वाधीन भारत में मानव अधिकारों के उपभोग के लिए सांविधानिक प्रत्याभूतियों का कठोरतम प्रवर्तन किया जाए। इस संबंध में हमारा ध्यान मानवीय अधिकारों की सार्वदेशिक घोषणा के चार्टर की ओर भी दिलाया गया। मानवीय अधिकारों की सार्वदेशिक घोषणा, 1948 के अनुच्छेद 1 में यह बात दोहराई गई है कि सभी मनुष्य प्रतिष्ठा एवं अधिकारों की दृष्टि से स्वतंत्र तथा समान पैदा हुए हैं। अनुच्छेद 3 में यह कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक को जीवन, स्वधीनता तथा दैहिक सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है। घोषणा के अनुच्छेद 6 में यह कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि उसे विधि के समक्ष सर्वत्र व्यक्ति के रूप में मान्यता दी जाए। अनुच्छेद 7 में यह कहा गया है कि सभी व्यक्ति विधि के समक्ष समान हैं और उन्हें विधि के समान संरक्षण का, बिना किसी भेदभाव के, हक है। सभी व्यक्ति इस घोषणा के अतिक्रमण में किसी भेदभाव के विरुद्ध या ऐसे भेदभाव के लिए किसी दुष्प्रेरणा के विरुद्ध समान संरक्षण के लिए हकदार हैं। अनुच्छेद 8 में

यह कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को संविधान या विधि द्वारा प्रदत्त अपने मूल अधिकारों का अतिक्रमण करने वाले कार्यों के संबंध में सक्षम राष्ट्रीय अधिकरणों द्वारा प्रभावी उपचार का अधिकार प्राप्त है। अतः इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि भारतीय नागरिकों को जीवित रहने का अधिकार है, जो न तो भारत संघ द्वारा और न ही किसी राज्य की सरकार द्वारा ऐसी प्रक्रिया का अनुपालन किए बिना छीना जा सकता है, जो न्यायोचित, ऋजु और युक्तियुक्त हो। जीवित रहने के अधिकार के अंतर्गत अंगों के उच्छेदन के विरुद्ध और शारीरिक क्षतियों के विरुद्ध संरक्षण का अधिकार भी आता है और इसका अभिप्राय सांस लेने का अधिकार नहीं है और इसके अंतर्गत जीविका का अधिकार भी आता है। यह दलील दी गई कि यह अधिकार अंतिम सांस तक अपने सभी आयामों सहित दिल, दिमाग और मन या फेफड़ों के प्रति ऐसी क्षतियों के विरुद्ध उपलभ्य है, जो नागरिक को या उसकी भावी पीढ़ी को या प्रजनन संबंधी व्यवस्था पर कुप्रभाव डालते हैं। जीवन और शरीर के अधिकार के प्रवर्तन की यह अपेक्षा है कि न्यायालयों में प्रवर्तनीय पर्याप्त और समुचित अनुतोष मिलें और निगमों के आपराधिक दायित्व के सभी मामलों में कठोर दायित्व, आत्यंतिक दायित्व, दंडात्मक दायित्व और दांडिक अभियोजनों के अधीन दोषी व्यक्तियों को दंडित किया जाए। सिविल अधिकारिता के अधीन दी गई नुकसानियां आधुनिक विश्व में विकसित मानव अधिकार न्यायशास्त्र की सुपरिनिश्चित मांगों के अनुरूप हों। अतः यह दलील दी गई कि गंभीर अपराधों के लिए दांडिक अधिकारिता के प्रयोग में दिया गया दंड सिविल अधिकारिता के अधीन प्रवर्तित दावों से स्वतंत्र है और किसी सिविल वाद के निपटारे के भाग के रूप में इससे उन्मुक्तता नहीं दी जा सकती। यदि कोई अधिनियम ऐसा करना प्राधिकृत या अनुज्ञात करता है तो वह विधि द्वारा समर्थित नहीं होगा और इसलिए विधि की दृष्टि में दूषित अर्थात् असंवैधानिक होगा। भारत का संविधान ऐसा अनुज्ञात नहीं करता।

29. हमारा ध्यान भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और अंतरराष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों की ओर आकर्षित किया गया। अनुच्छेद 14 के अधीन प्रत्येक व्यक्ति को सभी बातों में समता का अधिकार प्रत्याभूत किया गया है, जैसे प्रत्येक अधिकारिता में किसी विधिक या सांविधानिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए प्रक्रिया की विधियों में और अभिव्यक्ततः या आवश्यक विवक्षा द्वारा अधिकारों को परिनिश्चित करने वाली अधिष्ठायी विधियों में। अतः, किसी भी क्षेत्र में नागरिकों के किसी वर्ग को इन अधिकारों से वंचित करने के लिए सांविधानिक रूप से अनुज्ञेय उद्देश्य के साथ संबंध होना आवश्यक है और मनमाने रूप में इस प्रकार कभी भी वंचित नहीं किया जा सकता। अतः मनमानापन समता के अधिकार का विरोधात्मक है। इस संदर्भ में इस न्यायालय के **ई० पी० रायप्पा** बनाम **तमिलनाडु राज्य और एक अन्य**,[1] **मेनका गांधी** बनाम **भारत संघ**[2] का अवलंब लिया गया, जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि इस विचार को ठीक ही उलट दिया गया है कि अनुच्छेद 19 और 21 बिल्कुल अलग-अलग हैं। संविधान के भाग 3 में अंतर्विष्ट भिन्न-भिन्न मौलिक अधिकारों के संबंध में अनुच्छेद अधिकारों की पूर्णतः पृथक्-पृथक् धाराओं का प्रतिनिधित्व नहीं करते, जो किसी समयबिंदु पर

---

1 [1974] 1 उम० नि० प० 577=[1974] 2 एस० सी० आर० 348.
2 [1979] 1 उम० नि० प० 243=[1978] 2 एस० सी० आर० 621.

न मिलती हों। वे सभी संविधान की अभिन्न स्कीम का भाग हैं और उन्हें अवश्य ही परिरक्षित रखना चाहिए और मनमाने तौर पर उन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता। **आर० डी० शेट्टी बनाम इंडियन एअरपोर्ट अथारिटी ऑफ इंडिया और अन्य**[1] का भी अवलंब लिया गया। अतः उपचारों के लिए संघर्ष करने और अपराध के संबंध में बाध्यता के भंग से उत्पन्न होने वाले अपने अधिकारों को प्रवर्तित करने के नागरिकों के अधिकारों को मिटाया नहीं जा सकता। अतः अधिनियम की धारा 3, 4 और 11, जहां तक उनके द्वारा ऐसा किया जाना तात्पयित है और उन्होंने ऐसा किया है, संविधान के अनुच्छेद 14, 19(1)(छ) तथा 21 का अतिक्रमण करती हैं। उक्त धाराओं द्वारा परिकल्पित प्रक्रिया पीड़ित व्यक्तियों के अपने न्यायोचित देयों के संबंध में प्रकथन करने और उन्हें अभिप्राप्त करने के उनके न्यायोचित और विधिसम्मत अधिकारों से उन्हें वंचित करती है। इन अधिकारों को इस प्रकार नष्ट नहीं किया जा सकता। यह दलील दी गई कि विधि के अधीन पीड़ित व्यक्तियों को यह अधिकार है कि वे अपने अधिकारों का समर्थन करें और उनके संबंध में उपचार प्राप्त करें।

30. यह भी दलील दी गई कि भारत संघ, यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन तथा यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड के साथ-साथ संयुक्त अपकृत्यकर्ता है। इसने ऐसे कारखाने की स्थापना अनुज्ञात करते समय उपेक्षा बरती है, क्योंकि यह कारखाना बिना समुचित रक्षोपायों के स्थापित किया गया जिससे गैस विभीषिका के शिकार व्यक्ति और नागरिक दोनों संकट के लिए उच्छन्न हो गए। ऐसे व्यक्ति या प्राधिकारी को पीड़ित व्यक्तियों के प्रतिनिधित्व का अधिकार नहीं सौंपा जा सकता और पीड़ित व्यक्तियों को उनके अपने मामले के संबंध में अभिवचन करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता। यह दलील दी गई कि अधिनियम का उद्देश्य अत्यंत अनिष्टकर गैस विभीषिका से, जो अभूतपूर्व प्रकृति की थी, जनता को पूर्णतः संरक्षित करने का था। ऐसे उद्देश्य को दांडिक अभियोजन द्वारा दांडिक दायित्व के प्रवर्तन के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतः पीड़ित व्यक्तियों की सलाह लिए बिना समझौता करना विधि की दृष्टि से दूषित और असंवैधानिक है। यह दलील दी गई कि यदि कोई अधिनियम ऐसा समझौता या पीड़ित व्यक्तियों को अपने अधिकार से इस प्रकार वंचित किया जाना अनुज्ञात करता है, तो वह विधि की दृष्टि में दूषित है।

31. इससे पूर्व कि हम इस मामले में उठाए गए अनेक अन्य दलीलों पर विचार करें, हमें मध्यक्षेप करने के लिए किए गए आवेदन पर विचार करना आवश्यक है और रिट याचिका सं० 268/89 में कोल इंडिया की ओर से की गई दलीलों पर विचार करना आवश्यक है, जिनमें श्री एन० एन० सिन्हा ने मध्यक्षेपी की ओर से अपनी लिखित बहस में यह दलील दी थी कि संविधान का अनुच्छेद 21 ऐसे निर्बंधन को जो समुचित विधानमंडल, जीवन या स्वाधीनता के अधिकार पर लगा सकता है, अधिरोपित करने की शक्ति नहीं दी है, न ही ऐसे निर्बंधनों की सृष्टि की है, न ही उनके आयाम या उनकी अनुज्ञेय सीमाएं अवधारित की हैं। उन्होंने यह दलील दी कि अधिकारों या बाध्यताओं के प्रवर्तन के लिए न्यायिक या न्यायिककल्प कार्यवाहियों में प्रक्रिया के लिए उपबंध सुसंगत होते हैं। अधिकारों में प्रवर्तन के संबंध में प्रक्रिया संविधान द्वारा सीधे शासित होती है। उन्होंने कोल इंडिया की

[1] [1980] 2 उम० नि० प० 1061=[1979] 3 एस० सी० आर० 1014.

ओर से मध्यक्षेप करना चाहा और यह प्रार्थना की कि इन दलीलों को विचार में लिया जाए। किंतु जब सभी पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात् 25 अप्रैल, 1989 को इस न्यायालय के समक्ष यह दलील दी जाने लगी तो यह प्रकट हुआ कि प्रस्तुत रिट याचिकाओं में पीड़ित व्यक्तियों और भारत सरकार के बीच इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि इन मामलों में दावाकृत अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 में उपलभ्य हैं। अत: कोल इंडिया की दलील के संबंध में वस्तुत: कोई विवाद नहीं है और हमें इस मामले में मध्यक्षेपी की ओर से श्री सिन्हा द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करना आवश्यक नहीं है। यह बात अभिलिखित कर दी गई है।

32. 3 मार्च, 1989 के आदेश द्वारा इस न्यायपीठ ने यह निदेश दिया कि रिट याचिका सं० 268/89 तथा 164/86 का निपटारा कर दिया जाए। हमने इन रिट याचिकाओं की सुनवाई अन्य रिट याचिकाओं के साथ-साथ और अन्य ऐसे मामलों के साथ-साथ, जैसा कि इस निर्णय में ऊपर उपदर्शित किया गया है, की है। दलीलें सामान्य हैं। इन रिट याचिकाओं द्वारा अधिनियम की तथा अधिनियम के अनुसरण में किए गए परिनिर्धारण (निपटारा) की विधिमान्यता को प्रश्नगत किया गया है। रिट याचिका सं० 164/86 श्री राकेश श्रौति द्वारा दी गई है जो भारतीय नागरिक है और उसका दावा है कि वह विधि-व्यवसायी अधिवक्ता है और उसका निवास स्थान भोपाल में है। उसका कहना है कि वह और उसके परिवार के सदस्य 2/3 दिसंबर, 1984 को भोपाल में ही थे और गैस रिसाव के परिणामस्वरूप उसे अपार क्षति हुई थी। उसने अधिनियम की विधिमान्यता को अनेक आधारों पर चुनौती दी है।

उसने यह दलील दी है कि भारत संघ को यूनियन कार्बाइड के विरुद्ध वादों में शिकार व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए अनन्य अधिकार नहीं होना चाहिए और तद्द्वारा शिकार व्यक्तियों को याद लाने के उनके अधिकार से वंचित नहीं करना चाहिए और न्याय पाने से इंकार नहीं करना चाहिए। उसने हितों के संघर्ष के कारण यूनियन कार्बाइड के विरुद्ध शिकार व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए भारत संघ के अधिकार को भी चुनौती दी है। भारत संघ के आचरण की भी निन्दा की गई थी और आगे यह कहा गया था कि ऐसे आचरण से विश्वास जाग्रत नहीं होता है। उक्त आधारों पर उक्त याची ने संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इस घोषणा के लिए याचना की है कि अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 21 के अतिक्रमणकारी होने के कारण शून्य, अप्रवर्तनशील और अप्रवर्तनीय है। इसी प्रकार दूसरी रिट याचिका, अर्थात्, रिट याचिका सं० 268/89, जो श्री चरण लाल साहू द्वारा, जो शिकार व्यक्तियों की ओर से व्यवसायी अधिवक्ता भी है और यह दावा करता है कि गैस रिसाव के कारण उसे नुकसान उठाना पड़ा है, अधिनियम को चुनौती दी गई है। उसने अधिनियम के अधीन किए गए परिनिर्धारण को भी चुनौती दी है। उसका कहना है कि उक्त निर्धारण नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का तथा उक्त याची और अन्य शिकार व्यक्तियों के मूल अधिकारों का अतिक्रमणकारी है। उसका पक्षकथन यह है कि जहां तक अधिनियम में ऐसा मार्ग अपनाने के लिए अनुज्ञा दी गई है वहां तक वह रास्ता संविधान के अधीन अनुज्ञेय नहीं है। उसने आगे यह प्राख्यान किया है कि भारत संघ

उपेक्षावान और संयुक्त अपकृत्यकर्त्ता था । पूर्वोक्त परिस्थितियों में उसका कहना है कि अधिनियम दोषपूर्ण है, परिनिर्धारण दोषपूर्ण है और इन्हें अपास्त किया जाना चाहिए ।

33. इस प्रश्न का अवधारण करने के लिए कि क्या प्रश्नगत अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 14, 19 (1) (छ) और 21 के प्रकाश में संवैधानिक रूप से विधिमान्य है या नहीं, यह पता लगाना आवश्यक है कि अधिनियम से वस्तुतः क्या अभिप्रेत है और उसमें क्या उपबंधित है। प्रश्नगत अधिनियम, जैसा कि अधिनियम की उद्देशिका में कथित किया गया है, यह सुनिश्चित करने के लिए कि भोपाल गैस विभीषिका से उद्भूत होने वाले या उससे संबंधित दावों के संबंध में शीघ्रता से, प्रभावी रूप से, साम्यापूर्ण रूप से और दावेदारों के सर्वोत्तम हित में कार्यवाही की जाए, केंद्रीय सरकार को शक्तियां प्रदान करने के लिए और उससे आनुषंगिक विषयों के लिए पारित किया गया था। अतः भोपाल गैस विभीषिका से उद्भूत होने वाले या उससे संबंधित दावे सुनिश्चित करना इस अधिनियम का उद्देश्य और प्रयोजन है । इस अधिनियम के अधिनियमन के संबंध में हमने लोक सभा की कार्यवाहियों का अवलोकन किया है। विद्वान् महान्यायवादी ने हमारा ध्यान राज्य सभा की कार्यवाहियों की ओर भी आकृष्ट किया है जिनमें माननीय मंत्री, श्री वीरेंद्र पाटिल ने यह स्पष्ट किया था कि विधेयक द्वारा सरकार को ऐसे प्रत्येक व्यक्ति का, जिसने विभीषिका से संबंधित दावा किया है या जो दावा करने का हकदार है, (चाहे भारत के भीतर या भारत के बाहर) प्रतिनिधित्व करने और उसके स्थान पर कार्य करने तथा कोई वाद या अन्य कार्यवाहियां संस्थित करने अथवा अधिनियम में यथावर्णित कोई समझौता करने का अनन्य अधिकार ग्रहण करने के लिए समर्थ बनाया गया है । विधेयक का संपूर्ण उद्देश्य विद्यमान भारतीय विधि में प्रक्रिया संबंधी परिवर्तन करना था जो केंद्रीय सरकार को इन शिकार व्यक्तियों की ओर से मुकदमा लड़ने के उत्तरदायित्व संभालने के लिए समर्थ बनाएगा । पहली बात यह है कि इससे शिकार व्यक्तियों की ओर से वाद फाइल करने के लिए केंद्रीय सरकार में 'सुने जाने का अधिकार' सृजित करने का प्रयास किया गया है। इस बात पर प्रकाश डाला गया था कि कानून का उद्देश्य यह था कि हजारों लोग, जिनमें से अधिकांश लोग निर्धन हैं, प्रभावित करने वाली त्रासदी के आयाम के कारण, न्यायालयों में नहीं जा सकेंगे इसलिए यह आवश्यक था कि केंद्रीय सरकार में 'सुने जाने का अधिकार' सृजित किया जाए जिससे कि वह प्रतिकर के संदाय के लिए उनकी ओर से न्यायालयों में मुकदमेबाजी आरंभ कर सके। विधेयक का दूसरा पहलू यह था कि केंद्रीय सरकार में सुने जाने के इस अधिकार का सृजन करके केंद्रीय सरकार प्रतिकर के संदाय के लिए शिकार व्यक्तियों की ओर से न्यायिक प्रक्रिया संस्थित करने के लिए सक्षम बन गई है। विधेयक का अगला पहलू यह था कि उन व्यक्तियों के बीच, जिनकी ओर से पहले ही वाद फाइल किए जा चुके हैं और उनके बीच, जिनकी ओर से अभी तक कार्यवाहियां संस्थित नहीं की गई हैं, विभेद किया जाए। उनमें से एक सदस्य ने इस बात पर जोर दिया कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन प्रत्येक नागरिक को दैहिक स्वतंत्रता की गारंटी दी गई है और 'दैहिक स्वतंत्रता' अभिव्यक्ति का अर्थ क्या है। इसका व्यापक रूप से निर्वचन किया गया है । इस बात पर जोर दिया गया है कि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति के अपने फायदे के लिए और अपने संरक्षण के लिए कार्यवाहियां संस्थित करने के अधिकार को, किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता को, छीन नहीं सकता है। सदस्य ने इस बात पर बल दिया कि

इस दृष्टिकोण के कारण ही दावेदार के इस अधिकार को परिरक्षित रखना आवश्यक है कि वह अधिनियम की धारा 4 के अधीन कार्यवाहियों में सरकार के साथ अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए अपने वकील रख सके, इससे विधेयक संवैधानिक रूप से विधिमान्य बन जाता है।

34. सांविधानिकता के प्रश्न पर विचार करने से पूर्व इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि प्रश्नगत अधिनियम भोपाल गैस विभीषिका के संबंध में है और वह दावों के संबंध में है तथा दावों से अभिप्रेत है—प्रतिकर या नुकसानी के लिए विभीषिका से उद्भूत होने वाले या उससे संबंधित कोई ऐसे दावे जो ऐसी जीवन हानि या वैयक्तिक हानि के लिए हैं, जो हुई है और या जिसके होने की संभावना है और विभीषिका से उद्भूत होने वाले या उससे संबंधित कोई ऐसे दावे भी जो संपत्ति के नुकसान के लिए हैं अथवा ऐसे व्ययों के लिए दावे, जो विभीषिका को नियंत्रण में रखने के लिए या विभीषिका के प्रभावों को कम करने या उसके साथ अन्यथा निपटने के लिए उपगत किए गए हैं या उपगत किए जाने के लिए अपेक्षित हैं तथा अन्य आनुषंगिक दावे। प्रश्नगत अधिनियम में संपृक्त पक्षकारों या व्यक्तियों के आपराधिक दायित्व, यदि कोई हो, पर चर्चा करना तात्पर्यित नहीं है और न ही उनसे निकलने वाले परिणाम के संबंध में चर्चा की गई है। यह स्थिति अधिनियम के उपबंधों और उद्देशिका से स्पष्ट है। विद्वान् महान्यायवादी का भी यह कहना है कि अधिनियम के अंतर्गत आपराधिक दायित्व नहीं आता है। जो शक्ति केंद्रीय सरकार को दी गई है वह 'दावों' का, जिससे धन संबंधी दावे अभिप्रेत हैं, प्रतिनिधित्व करना है। धन संबंधी दावे, जैसा कि शिकार व्यक्तियों की ओर से दलील दी गई है, गैस विभीषिका से उत्पन्न होने वाली नुकसानी है। श्री गर्ग और सुश्री जयसिंह ने यह निवेदन किया कि ऐसी नुकसानी कड़े दायित्व, आत्यंतिक दायित्व और दंडात्मक दायित्व पर आधारित है। अधिनियम में नुकसानी या दायित्व की सीमा के बारे में न तो अभिव्यक्त रूप से और न ही विवक्षित रूप से चर्चा की गई है। न तो धारा 3 में और न ही किसी अन्य धारा में आपराधिक दायित्व के परिणामों की चर्चा की गई है। 'केंद्रीय सरकार ऐसे प्रत्येक व्यक्ति का, जिसने ऐसे दावे से संबंधित सभी प्रयोजनों के लिए दावा किया है या जो दावा करने का हकदार है (चाहे भारत के भीतर या भारत के बाहर) उसी रीति से और उसी प्रकार से, जो ऐसे व्यक्ति का है, प्रतिनिधित्व करेगी और उसके स्थान पर कार्य करेगी और उसे ऐसा करने का अनन्य अधिकार होगा' पद को ऐसा पढ़ने से, जैसा वह है, यह अभिप्रेत है कि केंद्रीय सरकार प्रतिस्थापित हो जाती है और उसमें शिकार व्यक्तियों के स्थान पर कार्य करने का अनन्य अधिकार निहित हो जाता है अर्थात् भोपाल गैस विभीषिका से उद्भूत होने वाले या उससे संबंधित ऐसे सभी दावों के संबंध में शिकार व्यक्ति, उनके वारिस और उनके विधिक प्रतिनिधि विलुप्त हो जाते हैं। अतः इस अधिकार में भारत के भीतर या भारत के बाहर कार्यवाहियां संस्थित करने का अधिकार तथा कोई वाद या अन्य कार्यवाहियां संस्थित करने या समझौता करने का अधिकार अंतर्निहित है। अतः अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) शिकार व्यक्तियों के स्थान पर केंद्रीय सरकार को प्रतिस्थापित करती है। शिकार व्यक्तियों, या उनके वारिसों और विधिक प्रतिनिधियों के, ऐसी कार्यवाहियां संस्थित करने, ऐसी कार्यवाहियां या वाद वापस लेने और कोई समझौता करने के सहवर्ती अधिकार के साथ उनके अधिकार केंद्रीय सरकार में प्रतिस्थापित हो जाते हैं। शिकार व्यक्ति या उनके वारिस या शिकार व्यक्तियों के विधिक प्रतिनिधि प्रतिस्थापित हो जाते हैं और उनके अधिकार

केंद्रीय सरकार में निहित हो जाते हैं। ऐसा धारा 3 के, जो प्रश्नगत विधान है, प्रवर्तन से होता है। धारा 3 की उपधारा (3) से यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 3 की उपधारा (1) के उपबंध उन दावों के संबंध में भी लागू होंगे, जिनके संबंध में इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व किसी न्यायालय में या अन्य प्राधिकारी के समक्ष (चाहे भारत के भीतर या भारत के बाहर) वाद या अन्य कार्यवाहियां संस्थित की गई हैं किंतु भारत के बाहर किसी न्यायालय में या अन्य प्राधिकारी के समक्ष इस अधिनियम के प्रारंभ से ठीक पूर्व लंबित किसी दावे के संबंध में किसी ऐसे वाद या अन्य कार्यवाही की दशा में विभेद किया गया है, और यह उपबंध किया गया है कि केंद्रीय सरकार ऐसे दावेदार का, यदि ऐसा न्यायालय या अन्य प्राधिकारी इस प्रकार अनुज्ञा दे तो प्रतिनिधित्व करेगी और उसके स्थान पर या उसके साथ कार्य करेगी। अतः ऐसे मामलों में जहां ऐसे वाद या कार्यवाहियां इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व भारत के बाहर किसी न्यायालय या किसी प्राधिकारी के समक्ष संस्थित की गई हैं वहां धारा शिकार व्यक्तियों या उनके वारिसों या उनके विधिक प्रतिनिधियों के स्थान पर केंद्रीय सरकार को प्रतिस्थापित करने में अपने ही बल पर प्रवृत्त नहीं हो जाएगी, बल्कि केंद्रीय सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह ऐसे दावेदार के स्थान पर या उसके साथ कार्य करे, परंतु यह तब जब ऐसा न्यायालय या अन्य प्राधिकारी इस प्रकार अनुज्ञा दे। इसकी भारत के बाहर के देशों या स्थानों की, जहां वाद या कार्यवाहियां संस्थित की जानी हैं या संस्थित की गई हैं, प्रक्रिया के साथ अनुशक्ति और अनुरूपता होनी आवश्यक है। अतः केंद्रीय सरकार भारत के बाहर संस्थित की गई कार्यवाहियों के संबंध में ऐसे न्यायालयों या प्राधिकारियों के आदेशों के अध्यधीन दावेदारों के साथ कार्य करने के लिए प्राधिकृत की गई है। क्या ऐसा अधिकार विधिमान्य और उचित है ?

35. इस देश में और विदेशों में ज्ञात एक ऐसी संकल्पना भी है जिसे 'प्रभुत्व-संपन्न संरक्षक' (पेरेंस पैट्रिया) कहा जाता है। डा० एस० के० मुखर्जी ने अपने लेख 'हिंदू लॉ आफ रिलीजस एंड चैरिटेबल ट्रस्ट्स', टैगोर ला लैक्चर्स, पांचवा संस्करण, पृष्ठ 404 पर 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' की संकल्पना के प्रति निर्देश करते हुए यह विचार व्यक्त किया है कि आंग्ल विधि में 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' के रूप में क्राउन खैराती न्यासों के अध्यधीन रहते हुए सभी संपत्ति का सांविधानिक संरक्षी है, क्योंकि ऐसे न्यास सारवान् रूप से लोक चिंता के विषय होते हैं। अतः स्थिति इस प्रकार है कि भारतीय संकल्पना के अनुसार 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' का सिद्धांत किंग को सभी नागरिकों के संरक्षक के रूप में और जनक के रूप में मान्यता प्रदान करता है। **सुधाकरन चंखानी** बनाम **ठाकुर प्रसाद शाह**[1] में रिपोर्ट के पृष्ठ 318 पर कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा इस स्थिति को स्पष्ट किया गया था। उस स्थिति को उक्त उच्च न्यायालय ने **बंकू बिहारी मंडल** बनाम **बंकू बिहारी हाजरा और एक अन्य**[2] में रिपोर्ट के पृष्ठ 205 पर दोहराया। इस स्थिति की मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा **मेडोई डालावाए टी० कुमारस्वामी मुदालियर** बनाम **मेडोई डालावाए राजाम्मल**[3] में रिपोर्ट के पृष्ठ 567 पर आगे सविस्तार परीक्षा की गई थी और

[1] ए० आई० आर० 1942 कलकत्ता 311.
[2] ए० आई० आर० 1943 कलकत्ता 203.
[3] ए० आई० आर० 1957 मद्रास 563.

इसे स्पष्ट किया गया था। इस न्यायालय ने भी **राम स्वरूप** बनाम **एस० पी० साही**[1] में रिपोर्ट के पृष्ठ 598 और 599 पर डा० मुखर्जी के मतों का अवलंब लेते हुए 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' की संकलपना को मान्यता दी थी। 'वर्ड्स एंड फ्रेजिज' (शब्द और पद) स्थायी संस्करण, खंड 33 के पृष्ठ 99 पर यह कहा गया है कि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' से विधान-मंडल को अंतर्निहित शक्ति और प्राधिकार अभिप्रेत है कि वह विधितः अक्षम व्यक्तियों, जैसे कि अवयस्क, उन्मत्त और अक्षम व्यक्तियों के शरीर और उनकी संपत्ति का संरक्षण करे। किंतु 'पेरेंस पैट्रिया' (प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक) शब्द जिनका अर्थ है 'देश का पिता' आरंभ में किंग के लिए उपयोग किए जाते थे और उनका उपयोग निर्योग्यता के अधीन व्यक्तियों पर संरक्षकता की उसकी प्रभुत्वसंपन्न शक्ति के प्रति निर्देश करते हुए राज्य को अभिहित करने के लिए किया जाता है। (अधोरेखांकन जोर देने के लिए किया गया है)। यह स्पष्ट किया गया है कि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' अधिकारिता प्रभुत्वसंपन्न का अधिकार है और उससे प्रभुत्वसंपन्न पर, लोकहित में, निर्योग्यता के अधीन उन व्यक्तियों के संरक्षण करने का कर्तव्य अधिरोपित होता है जिनका कोई अधिकारवान संरक्षक नहीं है। 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' पद का अर्थबोध भिन्न-भिन्न देशों में अलग-अलग है, उदाहरणार्थ इंग्लैंड में इसका अर्थबोध किंग है, अमेरिका में जनता, आदि है। सरकार का यह कर्तव्य है कि वह निर्योग्यता के अधीन व्यक्तियों का संरक्षण और नियंत्रण करे। संकलपना के रूप में 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' सिद्धांत राज्य की बाध्यता है कि वह अपनी बाध्यताओं का निर्वहन करने के लिए अपने नागरिकों के अधिकारों और विशेषाधिकारों को अभिरक्षा में ले ले। हमारे संविधान के अधीन राज्य के लिए यह आज्ञापक बनाया गया है कि वह अपने सभी नागरिकों के लिए संविधान द्वारा गारंटीकृत अधिकार सुनिश्चित करे और जहां नागरिक अपने अधिकारों को मांगने और सुनिश्चित करने की स्थिति में नहीं हैं, वहां राज्य सामने आए और नागरिकों के अधिकारों का संरक्षण करे और उनके लिए लड़े। संविधान के निदेशक तत्वों के साथ पठित उसकी उद्देशिका तथा उसके अनुच्छेद 38, 39 और 39-क राज्य को यह व्यादेश देते हैं कि वह इन उत्तरदायित्वों को संभाले। यह एक ऐसा संरक्षा उपाय है जिसे समाज कल्याणकारी राज्य करने के लिए बचनबद्ध है। राज्य के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी बाध्यताओं का प्रभावी रूप से निर्वहन करने के लिए राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के साथ मूल अधिकार सुनिश्चित करे। इस प्रयोजन के लिए, यदि आवश्यक हो तो व्यष्टिक शिकार व्यक्तियों या उनके वारिसों को कुछ अधिकारों और विशेषाधिकारों से वंचित करे जिससे कि उनके अधिकार अच्छी तरह से संरक्षित हो सकें और उन्हें आगे और सुनिश्चित किया जा सके। इस संबंध में **अल्फर्ड डी० स्नैप एंड संस इनकारपोरेटेड** बनाम **प्यूरटो रिको**[2] के प्रति निर्देश किया जा सकता है। उस मामले में संयुक्त राज्य अमेरिका की सुप्रीम कोर्ट द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्यूरटो कामनवेल्थ को प्यूरटो रिको के प्रवासी खेतीहरों के विरुद्ध सेब उपजाने वालों द्वारा किए जाने वाले विभेद को निवारित करने के लिए 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक'' के रूप में वाद लाने का अधिकार प्राप्त है। इस मामले में कुछ पहलुओं तक 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' के प्रविषय को स्पष्ट किया गया है। प्यूरटो रिको कामनवेल्थ

---

[1] [1959] 2 सप्लीमेंट एस० सी० आर० 583.

[2] 458 यू० एस० 592, 73 लायर्स इडिशन, सैकेंड 995, 1026, सी-टी० 3260.

1989(12) eILR(PAT) SC 1

ने वर्जीनिया के पश्चिमी जिले (वैस्टर्न डिस्ट्रिक्ट आफ वर्जीनिया) के संयुक्त राज्य जिला न्यायालय (यूनाइटेड स्टेट्स डिस्ट्रिक्ट कोर्ट) में वैगनर-पयसर ऐक्ट (Wagner-Peyser Act) और इमीग्रेशन एंड नेशनैलिटी ऐक्ट का अतिक्रमण करते हुए प्यूरटो रिको के लोगों के विरुद्ध और जमैका के कर्मकारों के पक्ष में विभेद निवारित करने के लिए प्यूरटो रिको के प्रवासी खेत-कर्मकारों के लिए वर्जीनिया के सेब उपजाने वालों के विरुद्ध 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' के रूप में वाद चलाया था। जिला न्यायालय ने इस आधार पर कार्रवाई को रद्द कर दिया कि कामनवेल्थ को वाद लाने का कोई अधिकार नहीं था, किंतु फोर्ट सर्किट की कोर्ट आफ अपील ने उसे उलट दिया। सरशियोरेराई पर संयुक्त राज्य उच्चतम न्यायालय (यूनाइटेड स्टेट्स सुप्रीम कोर्ट) ने उसे अभिपुष्ट कर दिया। न्यायमूर्ति व्हाइट तथा मुख्य न्यायमूर्ति बर्गर और न्यायमूर्ति ब्रेहनम, मार्शल और उलेकमन, रेन्नक्विस्ट, स्टीवंस और ओ'कोन्नोर की राय के अनुसार यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्यूरटो रिको को कम से कम फेडरल न्यायालयों में अपने प्रभुत्वसंपन्नवत् हितों का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार था और वह इतना मजबूत था जितना कि किसी अन्य राज्य का और यह कि उसे प्रभुत्व-संपन्न संरक्षक के रूप में वाद लाने का अधिकार था कि वह अपने निवासियों को विभेद के हानिकर प्रभावों से सुरक्षित रख सके और वैगनर-पयसर ऐक्ट तथा इमीग्रेशन एंड नेशनैलिटी ऐक्ट, 1952 के अनुरण में स्थापित फेडरल नियोजन सेवा स्कीम (फेडरल एम्प्लायमेंट सर्विस स्कीम) में पूर्ण और बराबर भाग लेना सुनिश्चित कर सके। न्यायमूर्ति व्हाइट ने 'प्रभुत्व-संपन्न संरक्षक' पद के अर्थ के प्रति निर्देश किया। ब्लैकक्कृत ला डिक्शनरी, पांचवां संस्करण, 1979, पृष्ठ 1003, के अनुसार शाब्दिक रूप से इससे 'देश का जनक' अभिप्रेत है और पारंपरिक रूप से यह प्रभुत्वसंपन्न रूप में और विधिक निर्योग्यता के अधीन व्यक्तियों के संरक्षक के रूप में राज्य की पृष्ठभूमि के प्रति निर्देश करता है। रिपोर्ट के पृष्ठ 1003 पर न्यायमूर्ति व्हाइट ने इस बात पर जोर दिया है कि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' के रूप में कार्रवाई की जड़ें 'शाही परमाधिकार' (रायल प्रिरोगेटिव) की कामन-ला संकल्पना में हैं। शाही परमाधिकार के अंतर्गत उन व्यक्तियों की देखभाल करने का अधिकार और उत्तरदायित्व है जो मानसिक असमर्थता के कारण, चाहे वह अप्राप्तवयता, जड़ता, या पागलपन के कारण हुई हो, स्वयं अपनी और अपनी संपत्ति की उचित देखभाल करने में विधिक रूप से असमर्थ हैं। 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' का यह परमाधिकार प्रत्येक राज्य की उच्चतम शक्ति में अंतर्निहित है। चाहे वह शक्ति किसी शाही व्यक्ति में या विधानमंडल में समाविष्ट है और यह अत्यधिक हितकारक कृत्य है। कई मामलों पर विचार-विमर्श करने के पश्चात् न्यायमूर्ति व्हाइट ने रिपोर्ट के पृष्ठ 1007 पर यह व्यक्त किया कि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' के रूप में अनुयोजन करने के लिए राज्य के लिए यह आवश्यक है, विशिष्ट पक्षकारों के हितों से अलग अपने हित साफ-साफ बताए जाने चाहिए अर्थात् राज्य को अभिहित पक्षकार से कुछ अधिक होना चाहिए। राज्य को प्रभुत्वसंपन्नवत् हित अभिव्यक्त करना चाहिए। पुनः **ज्योर्जिया बनाम टेन्नेस्सी कापर कंपनी**[1] के मामले में अमेरिका के उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति होम्स के मतों से ज्ञानवर्धक अंतर्दृष्टि प्राप्त की जा सकती है, यह एक ऐसा मामला था, जिसमें प्रत्यर्थी के टेन्नेस्सी स्थित संयंत्र से निकलने वाली हानिकर गैसों द्वारा ज्योर्जिया में वायु प्रदूषण

[1] 206 यू० एस० 230, 51 लायर्स इडिशन 1038, 27 एस० सी-टी० 618.

अंतर्वलित था। न्यायमूर्ति होम्स ने रिपोर्ट के पृष्ठ 1044 पर राज्य के हित को इस प्रकार वर्णित किया है :—

"यह एक राज्य द्वारा प्रभुत्वसंपन्नवत् हैसियत में उसे हुई क्षति के लिए वाद है। उस हैसियत में राज्य को अपने प्रभुत्व क्षेत्र के भीतर सभी मिट्टी और वायु पर हित है जो उसके नागरिकों के हकों से स्वतंत्र है और उनका आधार है। उसे यह कहने का अंतिम अधिकार है कि क्या उसके पहाड़ों से उनके जंगल हटा दिए जाएंगे और उसके निवासी शुद्ध हवा का सेवन करेंगे। उस शब्द का उच्चारण करने से पूर्व उसे हो सकता है कि व्यक्तियों को संदाय करना पड़े किंतु अंतिम शक्ति उसी के पास है......।

......जब राज्यों ने मिलकर बाहर की न्यूसेंसों के बलपूर्वक उपशमन को एक दूसरे के लिए असंभव बना दिया तब वे इस बात के लिए सहमत नहीं हुए कि वे इस बात को स्वीकार कर लें कि जो कुछ भी होना है, होता रहे। उन्होंने तब भी अपने बचे हुए प्रभुत्वसंपन्नवत् हितों के आधार पर युक्तियुक्त मांगें करने की संभावना का त्याग नहीं किया।"

36. अत: संकल्पना के रूप में और विधिशास्त्रीय दृष्टिकोण से, विशेषतया भारत के संविधान की उद्देशिका और निदेशक तत्वों के आदेश की पृष्ठभूमि के आधार पर केंद्रीय सरकार को इस बात के लिए प्राधिकृत करना संभव था कि वह दावों के संबंध में बहुराष्ट्रीय निगम के विरुद्ध लड़ने के लिए शिकार व्यक्तियों के दावों को अपने हाथ में ले ले। इस स्थिति के कारण शिकार हुए व्यक्ति इस मामले की परिस्थितियों में अपने दावों की पूर्णतया और उचित रूप से पैरवी करने के लिए निर्योग्यता के अधीन थे। इसके स्पष्ट शब्दों के आधार पर राज्य ने ऐसे प्रत्येक व्यक्ति का, जिसने ऐसे दावे से संबंधित सभी प्रयोजनों के लिए दावा किया है या जो दावा करने का हकदार है, उसी रीति से और उसी प्रभाव से जो व्यक्ति का है, प्रतिनिधित्व करने और उसके स्थान पर कार्य करने के लिए अनन्य अधिकार ग्रहण कर लिया है। क्या ऐसा उपबंध संविधान और सिविल प्रक्रिया संहिता की अपेक्षा की पृष्ठभूमि में विधिमान्य है या नहीं, यह एक अन्य परिचर्चा का विषय है। किंतु हमारी राय में भारतीय राज्य के लिए शिकार हुए व्यक्तियों के दावों को ग्रहण करने या राज्य के लिए शिकार व्यक्तियों के लिए कार्य करने के लिए जैसा कि अधिनियम में उपबंधित करने का प्रयास किया गया है, संकल्पना की दृष्टि से विधिशास्त्रीय दृष्टि से कोई प्रतिषेध या अंतर्बाधा नहीं है। लेकिन अधिनियम में क्या उपबंधित किया गया है उसका वास्तविक अर्थ और उसकी विधिमान्यता की, इस मामले में दी गई विनिर्दिष्ट दलीलों के प्रकाश में परीक्षा की जाएगी।

37. सुश्री इंदिरा जयसिंह ने, जैसा कि इसमें इससे पूर्व वर्णित किया गया है, कुछ अन्य शिकार व्यक्तियों की ओर से हमारा ध्यान प्रश्नगत अधिनियम के पारित किए जाने की पृष्ठभूमि की ओर आकृष्ट किया। उसने हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया कि अधिनियम दुखद विभीषिका और अमेरिका न्यायालयों में शिकार व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने का प्रयास करने वाले अमेरिकी वकीलों के आगमन से उत्पन्न होने वाली विनिर्दिष्ट स्थिति का सामना करने के लिए अधिनियमित किया गया था। उसके अनुसार,

सरकार का दृष्टिकोण, जैसा कि उद्देश्यों और कारणों के कथन से, संसद् की डिबेटों आदि से स्पष्ट है, यह था कि शिकार हुए व्यक्तियों के हितों का सर्वोत्तम हित साधन तभी होगा यदि केंद्रीय सरकार को संयुक्त राज्य के न्यायालयों में शिकार व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार दे दिया जाता है क्योंकि अन्यथा उनका समाश्रित फीसों पर कार्य करने वाले 'रोगी-वाहन अनुगामियों' द्वारा शोषण किया जाएगा। आरंभ में सरकार ने भी इस कल्पना के आधार पर कार्यवाही की कि संयुक्त राज्य ही सुविधाजनक मंच है जिसमें यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन के विरुद्ध वाद लाया जा सकता है। लेकिन सरकार को यह भय था कि सरकार को संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यायालयों में शिकार हुए व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए सुने जाने का अधिकार नहीं होगा जब तक कि उसे शिकार व्यक्तियों की ओर से वाद लाने में समर्थ बनाने के लिए कोई विधि पारित नहीं की जाती। अतः, सुश्री जयसिंह के अनुसार अधिनियम का प्रधान उद्देश्य भारत सरकार को विदेशी अधिकारिता में शिकार हुए व्यक्तियों की ओर से वाद लाने के लिए सुने जाने का अधिकार प्रदान करता था, ऐसी अवस्थिति उसे अन्यथा प्राप्त न होती। उसके अनुसार, अधिनियम का यह आशय नहीं था कि केंद्रीय सरकार को भारत और विदेश में शिकार व्यक्तियों की ओर से वाद लाने का अनन्य अधिकार दिया जाए। उसने संसदीय डिबेटों की ओर, जैसा कि इससे पूर्व वर्णित किया गया है, हमारा ध्यान आकृष्ट किया। उसने हमारा ध्यान वर्ड्स एंड फ्रेजिज, खंड 31, पृष्ठ 99 में आने वाली 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' (Parens Patriae) अभिव्यक्ति की ओर आकृष्ट किया। उसका कहना है कि अधिनियम अमेरिका में केवल प्रतिनिधित्व करने के लिए सुने जाने का अधिकार उपबंधित करने के लिए पारित किया गया था। उसने लारेंस एस० त्रिबे द्वारा लिखित "अमेरिकन कांस्टिट्यूशनल ला', 1978 संस्करण के पैरा 3.24 की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया जिसमें यह कहा गया है कि कोई राज्य स्वत्वधारी की हैसियत में अपने हितों को पहुंची क्षति की अपेक्षा की पूर्ति इस प्राख्यान द्वारा कर सकता है कि स्वयं राज्य को अपहानि हुई है। विद्वान् लेखक द्वारा आगे यह कहा गया है कि राज्य अपने द्वारा सहन किए गए दोषों को दूर करने के लिए रेल-मार्ग के स्वामी के रूप में और विभिन्न लोक संस्थाओं और पारिचालक के रूप में परिसंघीय न्यास विरोधी विधियों के अधीन वाद ला सकता है। इस बात पर जोर दिया गया था कि अपनी प्रभुत्वसंपन्नवत् हैसियत में राज्य को, अपने प्रभुत्व-क्षेत्र के भीतर सभी मिट्टी और वायु पर हित है जो उसके नागरिकों के हकों से स्वतंत्र और उसकी आड़ में है। यह सुझाव देने का प्रयास किया गया था कि प्रस्तुत अधिनियम में ऐसे किसी अधिकार का न तो प्राख्यान किया गया था और न ही वर्णन किया गया था। राज्य भी अपनी प्रभुत्वसंपन्नवत् हैसियत में किसी प्राइवेट व्यष्टि के विरुद्ध वाद लाने का हकदार है कि वह किसी निगम को व्यादेश दे कि वह अपने राज्य के बाहर स्थित किसी संयंत्र से वाद लाने वाले राज्य के राज्यक्षेत्र में विषैली गैसें न छोड़े। अंततः, इस बात पर जोर दिया गया था कि नागरिकों की ओर से 'प्रभुत्व-संपम्न संरक्षक' के रूप में जहां 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' के रूप में राज्य की हैसियत को परिसंघीय संरचना द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है वहां उस राज्य के निवासियों के सामान्य स्वास्थ्य, आराम, और कल्याण के संरक्षण के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि राज्य को पर्याप्त हित मिल जाता है। सुश्री जयसिंह ने यह दलील देने का प्रयास किया कि उस सीमा तक जहां तक कि अधिनियम सरकार को, उन व्यक्तियों की ओर से जो स्वतः

सक्षम नहीं थे, वाद लाने के लिए सशक्त करने के लिए सीमित नहीं था बल्कि उन व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए भी था जो स्वतः सक्षम हैं। शक्ति के इस प्रयोग का आधार 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' के सिद्धांत को नहीं बनाया जा सकता। उस सीमा तक, यह सरकार को अपने नागरिकों को विदेशी अधिकारिता में प्रतिनिधित्व करने में समर्थ बनाने के लिए सीमित नहीं है, बल्कि यह उसे इस बात के लिए सशक्त करने के लिए है कि शिकार व्यक्तियों का अपवर्जन करके स्थानीय न्यायालयों में वाद लाए। उसके अनुसार यह नहीं कहा जा सकता कि वह 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' के सिद्धांत के प्रयोग में है। हम इससे सहमत होने में असमर्थ हैं। जैसा कि हम पहले उपदर्शित कर चुके हैं, संकल्पना की दृष्टि से और विधि-शास्त्रीय दृष्टि से प्रस्तुत अधिनियम की पृष्ठभूमि में, प्रश्नगत अधिनियम की पारस्थितियों के प्रकाश में इस संकल्पना को ऐसे संकीर्ण क्षेत्र तक सीमित करने की आवश्यकता नहीं है। यदि स्थिति के अनुसार ऐसा अपेक्षित हो तो इस संकल्पना में फेरफार की जा सकती है, जिससे कि सरकार को समर्थ बनाया जा सके कि वह शिकार व्यक्तियों का देशीय अधिकरण में प्रभावी रूप से प्रतिनिधित्व कर सके। हमें ऐसा कोई कारण भी प्रतीत नहीं होता कि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' के सिद्धांत को नागरिक के हक से स्वतंत्र और उसके आधार के रूप में राज्य के केवल प्रभुत्वसंपन्नवत् अधिकार तक सीमित रखा जाए, जैसा कि हम बाद में उपदर्शित करेंगे।

38. आगे यह दलील दी गई थी कि शिकार हुए व्यक्तियों को अपने अधिकारों से वंचित किया जाना और न्याय पाने के लिए शिकार व्यक्तियों के अधिकारों का या शिकार व्यक्तियों के वारिसों के अधिकारों का प्रत्याख्यान करना अनधिकृत और असंवैधानिक था। उसने यह निवेदन किया कि सरकार द्वारा बलपूर्वक यह कहा गया है कि अधिनियम संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 13 के अनुसरण में पारित किया गया था। अतः यह निवेदन किया गया था कि जिस सीमा तक वह सिविल प्रक्रिया से संबंधित विधि है, वहां तक इसमें भोपाल गैस शिकार व्यक्तियों के लिए भिन्न प्रक्रिया अपनाई गई है और उन्हें विधि के समक्ष समता देने से इंकार करके संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण किया गया है। यदि यह उपधारणा भी कर ली जाए कि विभीषिका के परिमाण, दावेदारों की संख्या और उनकी निर्योग्यता के कारण उनसे पृथक् वर्ग गठित हो जाता है और यह कि उनके लिए विशेष प्रक्रिया स्थापित करने के लिए विशेष विधान अधिनियमित करना अनुज्ञेय है तो भी प्रक्रिया की युक्तियुक्तता का अभी भी परीक्षण किया जाना है। उसके अनुसार उसकी युक्तियुक्तता को विद्यमान सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की कसौटी पर आंकना होगा और जब इस प्रकार उसका परीक्षण कर लिए जाने पर यह पाया गया कि उसमें कई प्रकार की कमियां हैं। सरकार की ओर से यह भी दलील दी गई थी कि यह सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची की प्रविष्टि 8 के अधीन 'अनुयोज्य दोष' से संबंधित विधान है। सुश्री जयसिंह का कहना है कि इस प्रकार पढ़ने से सरकार प्रक्रिया संबंधी पहलुओं पर कार्यवाही कर सकती है न कि 'अनुयोज्य दोषों' के सारभूत पहलू पर। यदि वह ऐसा करती है तो विधि की युक्तियुक्तता को अनुयोज्य दोषों की विद्यमान सारभूत विधि के प्रति निर्देश से आंका जाना चाहिए और इस प्रकार आंके जाने से इससे अनेक सांविधानिक अधिकारों का अतिक्रमण होता है क्योंकि वह अनुयोज्य दोषों के लिए वाद लाने के शिकार व्यक्तियों के अधिकार हथिया लेता है। उसके अनुसार वह अत्यंत खतरनाक क्रियाकलाप के लिए कठोर दायित्व की विधि को ध्यान में रखने में असफल है जैसा

कि इस न्यायालय द्वारा **एम० सी० मेहता के मामले**[1] में स्पष्ट किया गया है। उसने आगे यह निवेदित किया कि यह अनुचित अधिनियम है क्योंकि वह दंडात्मक नुकसानी और पर्यावरण के विनाश के अधिकार का उपबंध करने में असफल रहा है।

39. केंद्रीय सरकार की ओर से यह दलील दी गई थी कि अधिनियम भारत के संविधान के अनुच्छेद 39-क के अधीन यथा प्रतिष्ठापित निदेशक तत्वों को प्रभावी करने के लिए पारित किया गया था। दूसरी ओर यह निवेदन किया गया कि राज्य के लिए यह अनुज्ञेय नहीं है कि वह नागरिकों में जो अधिकार निहित हैं उनका विनाश करके अथवा यह मांग करके कि नागरिक अपने अधिकारों का राज्य को अभ्यर्पण कर दें, विधिक सहायता प्रदान करे। वस्तुतः अधिनियम यह मांग करता है कि नागरिक अपने अधिकारों का राज्य को अभ्यर्पण कर दें। सुश्री इंदिरा जयसिंह ने यह निवेदन किया कि अधिनियम का निर्वचन करने पर धारा 3 और 4, जैसा कि ऊपर बताया गया है, सरकार को शिकार व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने का अनन्य अधिकार देती है और शिकार व्यक्तियों के प्रति किए गए दोषों के लिए वाद लाने के उनके अधिकारों से उन्हें बंचित किया गया है जो कि अबाध और मार्गदर्शन रहित है तथा अधिनियम की धारा 4 में 'सम्यक् ध्यान रखेगी' अभिव्यक्ति से सहमति विवक्षित नहीं होती है और ऐसा होने के कारण शिकार व्यक्तियों के अधिकारों के अतिक्रमणकारी है। वाद के संचालन से सहयुक्त होने का अधिकार अनेक शर्तों से घिरा हुआ है और इसलिए वह भ्रामक है। उसके अनुसार अधिनियम की धारा 3 और 4 के एक साथ पढ़ने से यह निष्कर्ष निकलता है कि शिकार व्यक्ति केंद्रीय सरकार द्वारा विस्थापित किए गए हैं जिसने अपने आपको दावेदारों का 'धर्माध्यक्ष का प्रतिनिधि' बना लिया है और उनका कार्यवाहियों पर कोई नियंत्रण नहीं है, और यह कि उन्हें यह विनिश्चय करने का कोई अधिकार नहीं है कि कोई समझौता किया जाए या न किया जाए और यदि किया जाए तो किन निबंधनों पर तथा ऐसा कोई समझौता करने से पूर्व न्यायालय द्वारा उन्हें सुने जाने का कोई अधिकार नहीं है। अतः उसके अनुसार धारा 4 के साथ पठित धारा 3 शिकार व्यक्तियों के वाद लाने के सभी प्रभावपूर्ण अधिकार सरकार को सौंप देती है और यह शक्ति का बलाद्ग्रहण है। यह निवेदन किया गया है कि किसी भी दशा में अधिनियम को साधारण रूप से पढ़ने पर, धारा 4 के साथ पठित धारा 3 संयुक्त अपकृत्यकर्ता के रूप में वाद लाए जाने से सरकार को कोई उन्मुक्ति प्रदान नहीं करती।

40. आगे यह भी कहा गया है कि धारा 9 सरकार को रजिस्ट्रीकरण, कार्यवाही करने और दावों को अभिलिखित करने के विषय में संपूर्ण मध्यस्थ बनाती है। धारा 9(2)(क), (ख) और (ग) तथा धारा 9(2)(च) और धारा 10 के अधीन दावों के संवितरण के प्रति निर्देश किया गया था। यह कहा गया था कि अधिनियम और स्कीम के अधीन नियुक्त उपायुक्त और आयुक्त केंद्रीय सरकार के अधीनस्थ और अभिकर्ता हैं। निष्पक्ष और स्वतंत्र सिविल न्यायालय के स्थान पर केंद्रीय सरकार के अधिकार और अधीनस्थ रख दिए गए हैं। काउंसेल का कहना है कि स्कीम का खंड 11 केंद्रीय सरकार को अपने ही मामले में न्यायाधीश बना देती है, क्योंकि केंद्रीय सरकार वस्तुतः संयुक्त अपकृत्यकर्ता हो सकती है और वह थी। यह निवेदन किया गया है कि स्कीम के साथ पठित अधिनियम की धारा 5 से 9 कोई ऐसा तंत्र

[1] [1986] 2 उम० नि० प० 765=[1987] 1 एस० सी० आर० 819.

स्थापित नहीं करती हैं, जो सांविधानिक रूप से विधिमान्य हो। यह दलील दी गई कि उक्त अधिनियम शिकार हुए व्यक्तियों को उनके अधिकारों से अधिनियम द्वारा ईप्सित उद्देश्य से सर्वथा अननुपातिक रूप से वंचित करता है। अधिनियम का उद्देश्य है विदेशी अधिकारिता में वाद लाना अथवा ऐसे व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करना जो अपना प्रतिनिधित्व करने में असमर्थ हैं। काउंसेल के कथनानुसार, उक्त उद्देश्य की पूर्ति केवल विदेशी अधिकारिता में वाद लाने संबंधी अधिकार को सीमित करके और किसी भी दशा में केवल उन शिकार हुए व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करके पूरी की जा सकती थी, जो अपना प्रतिनिधित्व करने में असमर्थ थे। यह दलील दी गई कि ऐसे शिकार हुए व्यक्ति, जो स्वयं अपने लिए और अपनी ओर से वाद लाने के इच्छुक हैं, उनके लिए यह आवश्यक है कि उन्हें समस्त समुचित और आवश्यक पक्षकारों पर, जिनके अंतर्गत भारत सरकार, मध्य प्रदेश सरकार, यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड और श्री अर्जुन सिंह शामिल हैं, वाद लाने की शक्ति होनी चाहिए, जिससे कि वे प्राण और (दैहिक) स्वतंत्रता के संबंध में अपने अधिकार को न्यायोचित ठहरा सकें तथा उनके अधिकारों में न तो कमी की जा सकती है और न की ही जानी चाहिए। अतः, उक्त अधिनियम अपने उद्देश्यों से कहीं आगे जाकर आतिशयिक निर्बंधन अधिरोपित करता है जो कि काउंसेल के कथनानुसार, शिकार हुए व्यक्तियों के अधिकारों का विनाश करने की कोटि में आते हैं। इस बात का विनिश्चय करने के लिए कि क्या किन्हीं अधिकारों को प्रभावित किया गया है, उक्त अधिनियम का उद्देश्य सुसंगत नहीं है, बल्कि शिकार हुए व्यक्तियों के अधिकारों पर उसका सीधा और अनिवार्य प्रभाव ही तात्विक है। अतः, उक्त अधिनियम का उद्देश्य भारत सरकार की ओर से अभिकथित रूप में कितना भी प्रशंसनीय क्यों न किया गया हो, वह एक ऐसा अधिनियम है जो संविधान के अनुच्छेद 39-क में सन्निहित निदेशक तत्वों को प्रभावित करता है। शिकार हुए व्यक्तियों की ओर से काउंसेल के कथनानुसार, धारा 3 का सीधा और अनिवार्य प्रभाव यह है कि शिकार हुए व्यक्तियों को अपनी पसंद के काउंसेल के जरिये अपने लिए और स्वयं अपनी ओर से वाद लाने के अधिकार से वंचित करता है और उसकी बजाय केंद्रीय सरकार को उनकी ओर से वाद लाने के लिए सशक्त करता है।

41. यह दलील दी गई कि अधिनियम इस कारण असांविधानिक है कि वह शिकार हुए व्यक्तियों को अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटी किए गए प्राण और (दैहिक) स्वतंत्रता संबंधी उनके अधिकारों से वंचित करता है। यह दलील दी गई कि प्राण और (दैहिक) स्वतंत्रता संबंधी अधिकार के अंतर्गत उक्त अधिकार के अतिक्रमणों के लिए वाद लाने का अधिकार भी शामिल है। अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीशुदा प्राण संबंधी अधिकार का निर्वचन इस रूप में किया जाना चाहिए कि उससे वह सभी अभिप्रेत हो जो जीवन को यापित करने योग्य अर्थात् उसे समूचे रूप से बिताए जाने योग्य बनाता हो। काउंसेल के कथनानुसार, इसके अंतर्गत आजीविका का अधिकार भी शामिल है। यहां **ओलगा टैलिस** बनाम **बी० एम० सी०**[1] वाले विनिश्चय के प्रति निर्देश किया गया था। यह दलील दी गई थी कि यह अधिकार उपचार से विलग नहीं हो सकता। यह आग्रह किया गया था कि (दैहिक) स्वतंत्रता के अंतर्गत व्यापक रूप में स्वाधीनताएं अंतर्विष्ट हैं जिनसे यह विनिश्चय किया जा सके कि अपने कार्यकलाप को कैसे व्यवस्थित किया जा सकता है। यहां **मेनका गांधी** बनाम **भारत संघ**[2] के प्रति निर्देश किया

---

[1] [1986] 1 उम० नि० प० 269=1985 सप्ली० 2 एस० सी० आर० 51 (78-83).

[2] [1979] 1 उम० नि० प० 243=1978 (2) एस० सी० आर० 621.

गया था। प्राण और (दैहिक) स्वतंत्रता संबंधी अधिकार के अंतर्गत ऐसा स्वास्थ्यजनक पर्यावरण संबंधी अधिकार भी आता है जो खतरनाक प्रदूषणों से मुक्त हो। यह दलील दी गई कि प्राण और (दैहिक) स्वतंत्रता संबंधी अधिकार उस अधिकार के अतिक्रमण को न्यायिक रूप से न्यायोचित ठहराने के लिए उपचार से विलग नहीं किया जा सकता—अर्थात् न्याय प्राप्त करने संबंधी अधिकार को निश्चित रूप से उस अधिकार का भाग समझा जाना चाहिए। इसलिए, किसी अनुयोज्य दोष के लिए वाद फाइल करने संबंधी अधिकार को महत्व दिया गया है। (देखिए **गंगा बाई** बनाम **विजय कुमार**)[1]। शिकार हुए व्यक्तियों की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल के कथनानुसार, उक्त अधिनियम का यथार्थ रूप से परिशीलन किए जाने पर वह प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार के अतिक्रमण का संरक्षण करता है क्योंकि अपने अधिकारों के अतिक्रमण से उद्भूत होने वाली नुकसानी के लिए प्रभावित व्यक्ति द्वारा वाद लाने के अधिकार को छीन लिया गया है। इस प्रकार यह निवेदन किया गया कि न केवल प्राण के अधिकार की कुछ-एक घटनाओं को बल्कि स्वयं अधिकार को ही पूर्णरूपेण छीन लिया गया है। काउंसेल के कथनानुसार, इस अधिकार से वंचित किया जाना विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुकूल नहीं है क्योंकि कोई ऐसी विधि जो इस अधिकार को छीन लेती है, अर्थात् आक्षेपित अधिनियम, न तो अधिष्ठायी रूप से और न ही प्रक्रियागत रूप से न्यायसंगत, ऋजु अथवा युक्तियुक्त है। कोई ऐसी विधि जो शिकार हुए व्यक्तियों से प्राण और दैहिक स्वतंत्रता को न्यायोचित ठहराने के लिए वाद लाने संबंधी अधिकार को निर्निहित करती है तथा उक्त अधिकार को केंद्रीय सरकार में निहित करती है वह न्यायसंगत, ऋजु अथवा युक्तियुक्त नहीं है। यहां शिकार हुए व्यक्ति स्वतः सक्षम व्यक्ति हैं और वे स्वयं यह विनिश्चय करने में समर्थ हैं कि विधि के अनुसार अपने दावों को कैसे न्यायोचित ठहराया जा सकता है। इसलिए, इस बात का कोई कारण दर्शित नहीं किया गया है कि उन्हें उस अधिकार से निर्निहित करने के लिए और उसे केंद्रीय सरकार में निहित करने के लिए क्या आधार है।

42. शिकार हुए व्यक्तियों की ओर से काउंसेल ने कुल मिलाकर इस बात पर जोर दिया है कि केंद्रीय सरकार में उक्त अधिकार का निहित किया जाना दोषपूर्ण और अयुक्तियुक्त है क्योंकि केंद्रीय सरकार और शिकार हुए व्यक्तियों के बीच हितों का विरोध है। इस बात पर बल दिया गया था कि हितों के विरोध द्वारा मामले के संचालन में शिकार हुए व्यक्तियों पर पहले से ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ चुका है, क्योंकि एक ऐसा समझौता जो शिकार हुए व्यक्तियों को स्वीकार्य नहीं है, शिकार हुए व्यक्तियों की सुनवाई किए बिना इस न्यायालय के 14/15 फरवरी, 1989 के आदेश के अनुसार कर लिया गया है। इस बात पर जोर दिया गया कि हितों का यह विरोध चलता रहेगा जिससे कि शिकार हुए व्यक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव बना रहेगा क्योंकि स्कीम के खंड 5, 10 और 11 के साथ पठित उक्त अधिनियम की धारा 9 केंद्रीय सरकार को इस बात के लिए सशक्त बनाती है कि वह दावों के संबंध में कार्यवाही करे, उस प्रवर्ग का अवधारण करे जिसमें कि वे आते हैं, उस आधार का अवधारण करे जिस पर कि प्रत्येक प्रवर्ग को नुकसानी संदेय होगी तथा प्रत्येक दावेदार को संदेय प्रतिकर की रकम का अवधारण करे। विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि कोई न्यायसंगत, ऋजु और युक्तियुक्त

---

1 [1974] 2 उम० नि० प० 912=1974 (3) एस० सी० आर० 882 (886).

प्रक्रिया संबंधी अधिकार अपने आप में संविधान के अनुच्छेद 14 के अधीन एक प्रत्याभूत मूल अधिकार है। इसके अंतर्गत, नैसर्गिक न्याय संबंधी अधिकार भी शामिल है। **ओलगा टैलिस**[1] वाले मामले तथा **कपूर, एस० एल०** बनाम **जगमोहन**[2] वाले मामलों के प्रति निर्देश किया गया। नैसर्गिक न्याय संबंधी अधिकार अनुच्छेद 14 में शामिल है (**तुलसी राम** बनाम **भारत संघ**)[3]। इसके अतिरिक्त, **मेनका गांधी**[4] वाले मामले के प्रति भी निर्देश किया गया। काउंसेल ने यह दलील दी कि नैसर्गिक न्याय संबंधी अधिकार विनिश्चय पूर्व प्रक्रम पर अर्थात् इससे पूर्व कि किसी समझौते को प्रभावी बनाया जाए और स्वीकार किया जाए न्यायालय द्वारा सुने जाने का अधिकार है। इस न्यायालय के **स्वदेशी काटन** बनाम **भारत संघ**[5] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय के प्रति निर्देश किया गया था। यह निवेदन किया गया था कि नैसर्गिक न्याय एक अत्यंत प्रभावी उपाय है, जो न्यायालयों द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए विरचित किया गया है कि कोई कानूनी प्राधिकरण न्यायसंगत विनिश्चय दे सके। यह शक्ति के दुष्प्रयोग पर उपयोगी निर्बंधन के रूप में कार्य रूप देने के लिए प्रकल्पित है। नैसर्गिक न्याय का त्याग नहीं किया जा सकता और न ही यह कोई खोखली औपचारिकता है। इस अधिकार के प्रत्याख्यान से इस मामले में न्याय की हत्या हुई है। काउंसेल के कथनानुसार, यदि शिकार हुए व्यक्तियों को सुनवाई का अवसर दिया गया होता, तो वे अन्य बातों के साथ-साथ, यह संकेत करते हुए कि यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन (यू०सी० सी०) द्वारा करार की गई अथवा उसके द्वारा संदत्त रकम अत्यंत अपर्याप्त थी और न्यायालय का यह कर्त्तव्य था कि वह यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन तथा उसके अधिकारियों और अभिकर्ताओं को दांडिक दायित्व से मुक्त नहीं करता, कि स्वयं केंद्रीय सरकार पर संयुक्त अपकृत्यकर्ता के रूप में वाद लाया गया था और काउंसेल के कथनानुसार, वह इस बारे में सहमत हुआ था कि यदि वह तारीख 31 दिसंबर, 1985 वाले आदेश के अधीन दायी पाया जाता है तो वह ऐसी डिक्री के अधीन होगा; मध्य प्रदेश राज्य, श्री अर्जुन सिंह और यूनियन कार्बाइड इंडिया लि० (यू० सी० आई० एल०) के विरुद्ध वाद फाइल किए गए थे जिनके बारे में यह नहीं समझा जा सकता कि उनका निपटारा 14/15 फरवरी, 1989 के समझौते/आदेश द्वारा कर दिया गया है। यह भी बताया गया था कि भारत संघ इस कर्तव्य के अधीन था कि वह यूनियन कार्बाइड इंडिया लि० पर वाद लाता, किंतु वह ऐसा करने में असफल रहा था और इस प्रकार उसने उपेक्षा की थी। यह निवेदन किया गया था कि इस हद तक कि कानून में न्यायालय द्वारा प्रस्थापित परिनिर्धारण अथवा समझौते की ऋजुता पर विनिश्चयपूर्व सुनवाई के लिए उपबंध नहीं किया गया था, यह विधिशून्य है, कि वह नैसर्गिक न्याय का और इसलिए संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का अतिलंघन करता है। आनुकल्पिक रूप से, काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई थी कि चूंकि कानून न तो अभिव्यक्त रूप से और न ही आवश्यक विवक्षा द्वारा किसी समझौते के किए जाने से पूर्व न्यायालय द्वारा सुनवाई किए जाने के अधिकार को वर्जित करता है, इसलिए न्यायालय द्वारा विनिश्चयपूर्व सुने जाने के ऐसे

---

1 [1986] 1 उम० नि० प० 269=1986 सप्ली० एस० सी० आर० 51.

2 [1981] 3 उम० नि० प० 935=1981 (1) एस० सी० आर० 745 (755, 756).

3 [1985] 4 उम० नि० प० 106=1985 सप्ली० 2 एस० सी० आर० 131.

4 1978 (2) एस० सी० आर० 621.

5 [1981] 4 उम० नि० प० 1157=1981 (2) एस० सी० आर 533.

अधिकार का परिशीलन उक्त अधिनियम की धारा 3(2) (ख) में किया जाना चाहिए। स्वीकृत तौर पर, यह अभिव्यक्त रूप से किसी परिनिर्धारण के किए जाने से पूर्व न्यायालय द्वारा सुने जाने के अधिकार को अपवर्जित नहीं करता है। सभी काउंसेलों के कथनानुसार, आवश्यक विवक्षा द्वारा ऐसे अधिकार के अपवर्जित किए जाने का तो कहना ही क्या, प्रभावित अधिकारों की प्रकृति पर, अर्थात् प्राण और दैहिक स्वतंत्रता संबंधी अधिकार पर ध्यान देते हुए, सुने जाने के ऐसे अधिकार का परिशीलन उक्त अधिनियम में किया जाना आवश्यक है जिससे कि यह सुनिश्चित बनाया जा सके कि शिकार हुए व्यक्तियों के प्रति न्याय किया जाए। उक्त अधिनियम एक ऐसी प्रक्रिया स्थापित करता है जो विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया से, अर्थात् सिविल प्रक्रिया संहिता द्वारा स्थापित प्रक्रिया से, भिन्न है। किंतु यह दलील दी गई थी कि उक्त अधिनियम का परिशीलन सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों से सामंजस्यपूर्ण रूप से किया जाना चाहिए और यदि ऐसा परिशीलन नहीं किया जाता तो प्रश्नगत अधिनियम अयुक्तियुक्त और अनुचित होगा। इस संबंध में, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 4, आदेश 23, नियम 1 के परंतुक, आदेश 23, नियम 3-ख और आदेश 32, नियम 7 के उपबंधों का अवलंब लिया गया था और यह निवेदन किया गया था कि ये उक्त अधिनियम से विसंगत नहीं हैं। इसके प्रतिकूल, ये आवश्यक और अनुपूरक हैं और यह सुनिश्चित करने के लिए आशयित हैं कि कोई न्यायहानी न हो। अतः इनके बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वे इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को लागू होते हैं और आक्षेपित अधिनियम का परिशीलन इन उपबंधों के साथ किया जाना चाहिए। यह दलील दी गई थी कि यह उपधारणा किए जाने पर भी कि उक्त उपबंध सीधे लागू नहीं होते, अधिनियम को युक्तियुक्त बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उक्त उपबंधों के सदृश उपबंध धारा 3(2)(ख) के साथ पढ़े जाएं। यह आग्रह किया गया था कि यदि इनका परिशीलन इस प्रकार नहीं किया जाता, तो ऐसे उपबंधों का अभाव केंद्रीय सरकार में मनमानी और अमार्गदर्शित शक्तियों को निहित कर देंगे, जिससे कि धारा 3 (2) (ख) असांविधानिक हो जाएगी। उक्त उपबंध शिकार हुए व्यक्तियों के लिए उत्तरदायी यंत्र को सुनिश्चित बनाने और यह उपबंध करने के लिए आशयित हैं कि उन्हें किसी समझौते के किए जाने से पूर्व न्यायालय द्वारा सुने जाने का अवसर दिया जाए। इस संबंध में, फैडरल रूल्स आफ सिविल प्रोसीजर इन अमेरिका के नियम 23 (3) के प्रति निर्देश किया गया था, जिसमें कि किसी समझौते के किए जाने से पूर्व शिकार हुए व्यक्तियों के सुने जाने के लिए उपबंध किया गया है। यह दलील दी गई थी कि शिकार हुए व्यक्ति को, जो कि भारतीय न्यायालय में वादियों के रूप में हैं, ऐसी प्रक्रिया लागू नहीं की जा सकती जो कि उस प्रक्रिया से न्यूनतर ऋजु हो, जिसका उपबंध भारत सरकार द्वारा आरंभिक रूप से चयन किए गए अमेरिकी न्यायमंच द्वारा किया जाता।

43. काउंसेल ने यह दलील दी कि उक्त अधिनियम की धारा 6 अयुक्तियुक्त है क्योंकि वह एक स्वतंत्र तथा निष्पक्ष सिविल न्यायालय के स्थान पर, जो कि सक्षम अधिकारिता धारण करता है, आयुक्त के नाम से ज्ञात ऐसा अधिकारी नियुक्त किया गया है जिसकी नियुक्ति केंद्रीय सरकार द्वारा की जाएगी। काउंसेल के कथनानुसार, किसी आयुक्त की नियुक्ति के लिए कोई अर्हता विहित नहीं की गई थी और अधिनियम के अधीन विरचित

स्कीम का खंड 5 आयुक्त में उपायुक्त के आदेश के खिलाफ अपीलें विनिश्चित करने का न्यायिक कृत्य विहित करता है जिसके द्वारा किसी दावे को रजिस्ट्रीकृत किया जा सकता है अथवा ऐसा करने से इंकार किया जा सकता है। आगे यह दलील दी गई थी कि उक्त स्कीम का खंड 11(2) इस कारण अयुक्तियुक्त है कि वह सक्षम अधिकारिता वाले एक स्वतंत्र तथा निष्पक्ष सिविल न्यायालय के स्थान पर केंद्रीय सरकार को दावों के प्रत्येक वर्ग के लिए प्रभाजित किए जाने वाले प्रतिकर की कुल रकम का अवधारण करने तथा प्रत्येक प्रकार की क्षति अथवा हानि के लिए संदेय प्रतिकर की मात्रा की कुल रकम का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए प्रतिस्थापित करता है जो कि स्वयं सह-अपकृत्यकर्ता है। यह दलील दी गई थी कि उक्त कृत्य एक न्यायिक कृत्य है और यदि शिकार हुए व्यक्तियों और केंद्रीय सरकार के बीच कोई विरोध है तो केंद्रीय सरकार में ऐसी शक्ति निहित करना उसे स्वयं अपने मामले में निर्णायक बनाने की कोटि में आता है। यह आग्रह किया गया था कि इस तथ्य पर ध्यान देते हुए कि दावों की तुष्टि में प्रत्येक रकम प्रत्यक्ष रूप से पूर्वावधारित अर्थात् 470 मिलियन डालर है, जब तक कि 14/15 फरवरी का आदेश अपास्त नहीं कर दिया जाता, जिसे कि निश्चित रूप से अपास्त कर दिया जाना चाहिए, तो काउंसेल के कथनानुसार, केंद्रीय सरकार का यह निहित हित होगा कि वह यह सुनिश्चित करे कि संवितरित की जाने वाली नुकसानी की रकम उक्त रकम से अधिक न हो। अन्यथा भी, काउंसेल के कथनानुसार भारत सरकार पर संयुक्त अपकृत्यकर्ता के रूप में वाद लाया गया है और उसका हित पीड़ित व्यक्तियों को संदेय नुकसानी की मात्रा को कम करने में निहित होगा। काउंसेल के कथनानुसार, इसका परिणाम विमर्शित रूप से क्षतियों के विस्तार और संदेय प्रतिकर के न्यून प्राक्कलन के रूप में होगा।

44. काउंसेल के कथनानुसार, स्कीम का खंड 11(4) अयुक्तियुक्त है, क्योंकि इसमें दंडात्मक और आदर्शभूत नुकसानी के प्रति और पर्यावरण की हानि और विनाश के प्रति शिकार हुए व्यक्तियों के दावों पर ध्यान नहीं दिया गया है। काउंसेल ने यह दलील दी कि चाहे जो भी हो, धारा 2(3) में 'दावे' अभिव्यक्ति का निर्वचन इस प्रकार नहीं किया जा सकता कि उससे केंद्रीय सरकार, मध्य प्रदेश राज्य, यूनियन कार्बाइड इंडिया लि०, जिस पर कि वाद सं० 1113/85 में वाद नहीं लाया गया था और श्री अर्जुन सिंह, जिन सभी पर विभीषिका से उद्भूत उत्तरदायित्व के संबंध में संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं के रूप में वाद लाया गया है, के खिलाफ दावे अभिप्रेत हैं। काउंसेल ने यह दलील दी कि यदि धारा 3 के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाना है कि वह अधिकारांतर्गत है तो 'अनन्य' शब्द को धारा 3 से विलग कर दिया जाना चाहिए और दूसरी ओर यदि धारा 3 के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वह अधिकारातीत है तो शिकार हुए ऐसे व्यक्ति, जिन्होंने पहले से ही वाद फाइल कर दिए हैं अथवा ऐसे व्यक्ति जिन्होंने दावे दाखिल किए हुए हैं, स्वयं अपने वादों को जारी रखने के तथा वाद सं० 1113/85 को वादियों के रूप में, आदेश 1, नियम 8 के अधीन इजाज़त सहित, जारी रखने के हकदार होने चाहिएं। काउंसेल ने यह दलील दी है कि इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित अंतरिम अनुतोष अन्यथा भी शिकार हुए व्यक्तियों को स्कीम के खंड 10(2)(ख) के अधीन संदत्त किया जा सकता है।

45. काउंसेल ने यह निवेदन किया कि इस न्यायालय द्वारा यथा अवधारित अंतरिम अनुतोष की कटौती करने के पश्चात् 470 मिलियन डालर के अतिशेष की कुर्की कर ली जानी चाहिए । यह दलील दी गई कि चाहे जो भी हो, यह घोषित कर दिया जाए कि धारा 2 में 'दावा' शब्द के अंतर्गत केंद्रीय सरकार या मध्य प्रदेश सरकार अथवा यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड के खिलाफ दावे अंतर्विष्ट नहीं हैं । अत:, यह आग्रह किया गया कि भारत सरकार, मध्य प्रदेश सरकार अथवा यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड के खिलाफ दावा लाने संबंधी शिकार हुए व्यक्तियों के अधिकार उक्त अधिनियम द्वारा अथवा उक्त अधिनियम के अधीन निष्पादित समझौते द्वारा अप्रभावित बने रहेंगे । यह दलील दी गई कि वाद का त्वरिता से विनिश्चय करने संबंधी तंत्र विरचित करना होगा । काउंसेल के कथनानुसार, यूनियन कार्बाइड निगम, यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड, मध्य प्रदेश राज्य और अर्जुन सिंह के विरुद्ध फाइल किए गए अन्य वाद विचारण किए जाने और निपटाए जाने के लिए उच्चतम न्यायालय को अंतरित कर दिए जाने चाहिएं । यह निवेदन किया गया कि न्यायालय को चाहिए कि वह विभिन्न प्रवर्गों को, अर्थात् स्कीम के खंड 5(2) के अधीन वर्णित मृत्यु और नि:शक्तता को, संदेय नुकसानी का आधार नियत करे। काउंसेल ने यह दलील दी कि इस न्यायालय को चाहिए कि वह एक ऐसी प्रक्रिया स्थापित करे जो यह सुनिश्चित करे कि एक निष्पक्ष न्यायाधीश, जिसकी सहायता चिकित्सा विशेषज्ञों तथा मूल्यांककों द्वारा की जाएगी, उस आधार संबंधी न्यायनिर्णयन करेगा जिस पर कि कोई दावेदार व्यक्ति किसी प्रवर्ग विशेष के अंतर्गत आएगा । यह भी आग्रह किया गया कि इस न्यायालय को चाहिए कि वह स्कीम के खंड 5(2) में दावेदारों के प्रत्येक प्रवर्ग को संदेय प्रतिकर की रकम निर्धारित करे । यह दलील दी गई कि यह विनिश्चय केंद्रीय सरकार पर नहीं छोड़ा जा सकता जैसा कि स्कीम के खंड 11(2) द्वारा किया जाना तात्पर्यित है ।

46. यह आग्रह किया गया कि इस न्यायालय को निश्चित रूप से एक न्यास स्थापित करना होगा, जिसमें स्वतंत्र न्यासी होंगे जो न्यास को प्रशासित करेंगे तथा ऐसे न्यासी इस न्यायालय के प्रति उत्तरदायी होंगे । दावेदारों की संख्या, उन्हें पहुंची क्षति की प्रकृति और सीमा, वह प्रवर्ग जिसके अंतर्गत वे आते हैं—उनके बारे में एक स्वतंत्र जनगणना की जानी चाहिए । भावी दावेदारों के लिए रकमों का प्रभाजन अलग से व्यवस्थित अथवा निहित कर दिया जाना चाहिए, अर्थात् उस प्रवर्ग की बाबत, जिसमें कि स्कीम के खंड 5(2)(क) का प्रवर्ग आता है, जो कि काउंसेल के कथनानुसार अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि क्षतियों के बारे में यह कहा गया है कि वे कैंसरजनक तथा व्यक्ति विकास पर कुप्रभाव डालने वाली हैं तथा इतनी व्यापक हैं कि वे ऐसे व्यक्तियों पर भी प्रभाव डालने वाली हैं जिन्होंने अभी जन्म भी नहीं लिया ।

47. श्री गर्ग ने शिकार हुए कुछ व्यक्तियों के काउंसेलों की ओर से आगे हमारे समक्ष यह आग्रह किया कि शिकार हुए व्यक्तियों के अधिकारों का वंचन तथा उन अधिकारों को राज्य में निहित करना शिकार हुए व्यक्तियों के अधिकारों का उल्लंघन करना है और इसे संविधान द्वारा न तो न्यायोचित ठहराया जा सकता है और न ही उसमें इसकी अपेक्षा की गई है । अधिनियम की न तो धारा 3 और न ही धारा 4 शिकार हुए व्यक्तियों को कोई अधिकार प्रदान करती है; दूसरी ओर, यह उनके कथनानुसार, शिकार हुए व्यक्तियों के लिए न्याय

पाने के संबंध में पूर्ण प्रत्याख्यान है। काउंसेल के कथनानुसार, यह मनमाना है। उसने यह भी कथन किया कि अधिनियम की धारा 4, जैसी कि वह है, शिकार हुए व्यक्तियों को कोई अधिकार प्रदान नहीं करती और इस प्रकार यदि यह उपधारणा कर भी ली जाए कि शिकार हुए व्यक्तियों के अधिकारों के लिए लड़ने के लिए यह आवश्यक था कि शिकार हुए व्यक्तियों को प्रतिस्थापित कर लिया जाए, तो भी जहां तक शिकार हुए व्यक्तियों को कार्यवाहियों के संचालन जैसे कार्य में सुनवाई के अधिकार से वंचित किया गया है, यह शिकार हुए व्यक्तियों को प्रदत्त फायदे का अननुपाती है। शिकार हुए व्यक्तियों को अधिकारों से वंचित किया जाना इतना अधिक है तथा इससे नैसर्गिक न्याय के अधिकार का वंचन एवं न्याय पाना इतना गंभीर है कि उन सुस्थापित सिद्धांतों द्वारा निर्णीत किए जाने पर, जिनके द्वारा कि इन जैसे माप मान वाले उपबंध इस देश के सांविधानिक ढांचे में निर्णीत किए जाने चाहिएं, उक्त अधिनियम शिकार हुए व्यक्तियों के मूल अधिकारों का उल्लंघन करता है। उसने आगे यह दलील दी कि इस अधिनियम की प्रक्रिया द्वारा शिकार हुए व्यक्तियों के सभी अधिकार, बहुराष्ट्रिकों के खिलाफ पूर्ण दायित्व को प्रवर्तित करने के लिए एवं भारतीय कंपनियों के खिलाफ ऐसा करने के लिए शिकार हुए व्यक्तियों का अधिकार आत्यंतिक दायित्व और दांडिक दायित्व सभी में कमी कर दी गई है।

48. सभी काउंसेलों ने यह निवेदन किया कि चाहे जो भी हो, दांडिक दायित्व इस अधिनियम की विषय-वस्तु नहीं हो सकता। इसलिए, सरकार इस आधार पर किसी परिनिर्धारण से सहमत होने की हकदार नहीं थी कि दांडिक अभियोजन वापस ले लिया जाएगा और चूंकि यह सिविल दायित्व को तय करने के लिए प्रतिफल अथवा उत्प्रेरणा का एक भाग है, इसलिए उन्होंने यह निवेदन किया कि 14/15 फरवरी, 1989 को जो परिनिर्धारण इस न्यायालय के आदेश में किया गया था वह सर्वथा अनपेक्षित, असांविधानिक तथा अवैध है।

49. श्री गर्ग ने, इसके अतिरिक्त, आगे यह दलील दी कि अधिनियम की प्रक्रिया द्वारा प्रत्येक व्यक्तिगत दावे का पहले अवधारण किया जाना था और सरकार केवल समस्त व्यक्तिगत दावों का संकलन कर सकती थी तथा ऐसा केवल शिकार हुए व्यक्तियों के व्यक्तिगत दावों का संकलन करके किया जा सकता था। उनके कथनानुसार, ऐसा नहीं किया गया था। उस रीति से परिशीलन किए जाने पर, श्री गर्ग के कथनानुसार, उक्त अधिनियम को कार्यान्वित करने में सरकार का आचरण सर्वथा अनुचित और अनपेक्षित है। उन्होंने यह दलील दी कि न्यायसंगत, ऋजु और युक्तियुक्त प्रक्रिया के बिना, जो कि नागरिकों अथवा शिकार हुए व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए मार्मिक रूप से आवश्यक थी, शिकार हुए व्यक्तियों के अधिकार को प्रवर्तित करना दोषपूर्ण था। उनके द्वारा आगे यह दलील दी गई थी कि भोपाल गैस से शिकार हुए व्यक्तियों को प्रतिकूल विभेद किए जाने के लिए पृथक् स्थिति में रख दिया गया है, जिसके परिणामस्वरूप सक्षम न्यायालयों तथा अधिकरणों से संपर्क करने संबंधी समस्त प्रक्रियाओं का पूर्ण प्रत्याख्यान हो गया है। यह दलील दी गई कि केंद्रीय सरकार शिकार हुए व्यक्तियों का, उनके मुकदमों में अथवा दावों को प्रवर्तित करने के लिए प्रतिनिधित्व करने में अक्षम थी। तत्पश्चात् उन्होंने यह दलील दी कि शिकार हुए व्यक्तियों के दावों को यूनियन कार्बाइड निगम के विरुद्ध पूर्ण रूप से प्रवर्तित किया जाना चाहिए, क्योंकि वह अभिलाभ के लिए वाणिज्यिक कार्यकलाप चला रहा था, जिसके परिणामस्वरूप अभूतपूर्व गैस रिसाव

विभीषिका हुई थी जो भारी संख्या में लोगों की मृत्यु और अन्य व्यक्तियों को गंभीर क्षतियां पहुंचाने की दोषी थी। यह दलील दी गई कि प्रत्येक उत्तरदायी पक्षकार, जिनमें भारत सरकार भी शामिल है जो कि यूनियन कार्बाइड के साथ संयुक्त अपकृत्यकर्ता है, के उत्तरदायित्व को समुचित कार्यवाहियों में अभिनिश्चित करना होगा। शिकार हुए व्यक्तियों की ओर से यह दलील दी गई कि भारत संघ यूनियन कार्बाइड में 22% अंश का स्वामित्व धारण करता था और इसलिए वह शिकार हुए व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए अक्षम था। भारत संघ और यूनियन कार्बाइड के बीच मतों संबंधी विरोध था और इसलिए केंद्रीय सरकार अक्षम थी। यह दलील दी गई है कि धन संबंधी हित चाहे कितना ही कम क्यों न हो, वह किसी भी व्यक्ति को अपने ही हेतुक में अपना न्यायनिर्णयन करने के लिए निर्योग्य बना देता है। विभिन्न काउंसेलों के कथनानुसार, भारत संघ द्वारा स्वीकृत परिनिर्धारण धन संबंधी पक्षपात द्वारा दूषित हो जाता है क्योंकि वह 22% पर्यंत उसके अंशों को धारण करता है।

50. यह दलील दी गई कि यूनाइटेड स्टेट्स के न्यायालय में और भोपाल न्यायालय में किए गए अभिवचनों पर यदि भारत संघ द्वारा स्वीकृत इस न्यायालय के परिनिर्धारण आदेश के संदर्भ में विचार किया जाए, तो यह तय हुआ माना जाएगा कि शिकार हुए व्यक्तियों के व्यक्तित्व की बलि जानबूझकर और निर्मम रूप से चढ़ा दी गई थी और इसलिए शिकार हुए कुछ व्यक्तियों के कथनानुसार उक्त अधिनियम में एवं संविधान के अनुच्छेद 14, 19(1)(छ) और 21 के कार्यान्वयन में उल्लंघन हुआ था।

51. इस न्यायालय के **एम० सी० मेहता और एक अन्य** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के सिद्धांतों का निर्वचन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि पूर्ण न्याय हो सके और इससे किसी भी प्रकार स्वतन्त्र भारत में नागरिकों के क्षेम को सुनिश्चित बनाने के लिए भयोपरापी व्यक्तियों को उनके द्वारा किए गए दोषों के लिए दांडिक नुकसानियों को न्यायोचित ठहराने के लिए उसके अनुदान को अपवर्जित नहीं किया जाना चाहिए। श्री गर्ग के कथनानुसार, कोई भी बहुराष्ट्रीय निगम अभिरक्षक के रूप में कृत्यशील इस न्यायालय के होते हुए, भारत में दिए जाने वाले सिविल और दांडिक न्याय की मांगों को समग्र रूप से पूरा किए बिना अभिलाभ उपार्जित करने हेतु भारतीय विधि के संरक्षण की विशेषाधिकारिता का दावा नहीं कर सकता। श्री गर्ग ने यह दलील दी कि भारत में और तीसरी दुनिया के देशों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का नुकसानियों के लिए दायित्व न्यून न होकर निश्चित रूप से अधिक होना चाहिए, क्योंकि प्रभावित व्यक्ति प्रायः स्वास्थ्य अथवा संपत्ति के संरक्षण के अभाव में अपर्याप्त प्रसुविधाओं के कारण उपचारविहीन होते हैं। इसलिए उचित सुरक्षा और अन्य अध्युपायों के बिना खतरनाक गैसों से व्यवहार करने वाले बहुराष्ट्रीय निगमों के विरुद्ध पीड़ित भारतीय व्यक्तियों द्वारा प्राप्त नुकसानियां उन नुकसानों के लिए दी जाने वाली नुकसानियों से कहीं अधिक होंगी, जिनसे कि अन्य प्रगतिशील और विकसित देशों के नागरिक पीड़ित होते हैं, इसलिए, नुकसानियों और भयोपरत करने वाले उपचारों द्वारा यह सुनिश्चित करना आवश्यक है, कि ये बहुराष्ट्रीय कंपनियां तीसरी दुनिया के प्रभुता-संपन्न देशों के लोगों के जीवन और गरिमा के अधिकार के लिए नगण्य आदर सहित

[1] [1987] 4 उम० नि० प० 774=1987 (1) एस० सी० आर० 819.

1989(12) eILR(PAT) SC 1

अभिलाभ संबंधी अपने अनुकूल उद्देश्यों को अग्रसर करने के लिए तथा तीसरी दुनिया के देशों में युद्ध का विस्तार करने के लिए आशयित खतरनाक विनिर्माण संक्रियाओं को वहां फैलाने के लिए प्रेरित न हों। दांडिक दायित्व का कठोर प्रवर्तन अमेरिकी लोगों के भी हित में है। इसलिए, श्री गर्ग के कथनानुसार, उक्त अधिनियम स्पष्टतः असांविधानिक है और इसलिए विधिशून्य है।

52. यह दलील दी गई कि परिनिर्धारण अधिकारितारहित है। काउंसेल द्वारा जोरदार रूप से यह सुझाव दिया गया कि यह न्यायालय उस रीति में, जिसमें कि उसने तारीख 14/15 फरवरी, 1989 वाले अपने आदेश द्वारा दांडिक दायित्व के विरुद्ध तात्पर्यित रूप से उन्मुक्ति मंजूर की थी, ऐसा करने के लिए अक्षम था। आगे यह दलील दी गई कि यह अभिनिर्धारित करने के लिए कि उक्त अधिनियम विधिमान्य है यह आवश्यक है कि शिकार हुए व्यक्तियों की सुनवाई परिनिर्धारण किए जाने से पूर्व की जाए और उक्त अधिनियम केवल तब विधिमान्य हो सकता है, जबकि इसका ऐसा निर्वचन किया जाए। श्री गर्ग के कथनानुसार, आगे यह आवश्यक है कि सुनवाई किए जाने की परिधि को अधिकथित किया जाए। श्री गर्ग ने हमारा ध्यान शिकार हुए व्यक्तियों को राहत (अनुतोष) के वितरण संबंधी स्कीम के प्रति भी दिलाया। उन्होंने यह दलील दी कि वितरण की स्कीम अयुक्तियुक्त और विभेदात्मक है, क्योंकि उसमें सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अनुसार कोई भी न्यायसंगत, ऋजु और युक्तियुक्त प्रक्रिया नहीं है। उन्होंने आगे यह दलील दी कि अधिनियम पीड़ित व्यक्तियों के दावों को अग्रसर करने हेतु भारत संघ द्वारा आचारित किए जाने के लिए कोई मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित नहीं करता। शिकार हुए व्यक्तियों के अधिकारों के अवधारण, शिकार हुए व्यक्तियों की ओर से की गई प्रक्रियाओं के संचालन तथा दावाकृत अनुतोष के लिए कोई भी आवश्यक विधायी मार्गदर्शक सिद्धांत विद्यमान नहीं हैं। निष्पक्ष न्यायपालिका के माध्यम से शिकार हुए व्यक्तियों को न्याय तक पहुंचने से वंचित करना इतना भयंकर वंचन है कि वह केवल ऐसी स्थिति के अनुकूल हो सकता है जिसमें ऐसे गंभीर उपबंध के लिए अपेक्षा की जाए। वर्तमान परिस्थितियां ऐसी परिस्थितियां नहीं थीं। उन्होंने हमारा ध्यान इस न्यायालय के **बशेशर** बनाम **आयकर आयुक्त**[1], विशेष न्यायालय विधेयक, 1978 के संबंध में निर्देश **इन रि स्पेशल कोर्ट्स बिल**[2], **ए० आर० अंतुले** बनाम **आर० एस० नायक और एक अन्य**[3], **राम कृष्ण डालमिया** बनाम **तेंदुलकर**[4], **अम्बिका प्रसाद मिश्र और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[5] और **बोधन चौधरी** बनाम **बिहार राज्य**[6] में विनिश्चयों के प्रति आकर्षित किया। श्री गर्ग ने आगे यह निवेदन किया कि अनुच्छेद 21 का परिशीलन संविधान के अनुच्छेद 51 के साथ और अन्य निदेशक तत्वों के साथ किया जाना आवश्यक है। उन्होंने हमारा ध्यान **लक्ष्मी कांत पांडे** बनाम **भारत संघ**[7], **मेसर्स**

---

1 ए० आई० आर 1959 एस० सी० 149.

2 [1979] 4 उम० नि० प० 1061=1979 (2) एस० सी० आर० 476.

3 [1988] 3 उम० नि० प० 21=1988 (2) एस० सी० सी० 602.

4 1955 एस० सी० आर० 279.

5 [1981] 2 उम० नि० प० 985=1980 (3) एस० सी० आर० 1159.

6 1955 (1) एस० सी० आर० 1045.

7 [1984] 3 उम० नि० प० 553=1984 (2) एस० सी० आर० 795.

मैकिन्नन मैकेंजी एंड कं० लि० बनाम **आइ् डी कोस्टा और एक अन्य**[1], **शीला बर्से** बनाम **सचिव, चिल्ड्रन एंड सोसाइटी और अन्य**[2] के प्रति दिलाया। श्री गर्ग ने यह दलील दी कि भारत में मानवीय अधिकारों के राष्ट्रीय आयाम तथा अन्तर्राष्ट्रीय आयाम दोनों समरूप हैं और उनका प्रवर्तन इस विस्तार तक अनुच्छेद 32 और 226 के अधीन गारंटी किया गया है, जहां तक कि ये राज्य के विरुद्ध प्रवर्तनीय हैं। ये संविधान के सम्यक् पालन तथा देश की सभी विधियों के समरूप पालन की शर्तों पर राज्य द्वारा प्रविष्ट पारदेशीय निगमों (ट्रांसनेशल कारपोरेशन्स इंडक्टेड बाइ दि स्टेट) के विरुद्ध भी प्रवर्तनीय हैं। श्री गर्ग ने यह दलील दी कि अभूतपूर्व विभीषिका की पृष्ठभूमि में, जिसके परिणामस्वरूप प्राण और सम्पत्ति की विस्तृत हानि हुई है और पर्यावरण का ऐसा विनाश हुआ है, जो भारी संख्या में लोगों पर कुप्रभाव डालता है एवं शिकार हुए व्यक्तियों के हितों के पूण संरक्षण के लिए तथा प्रतिकर के सभी दावों की पूर्ण तुष्टि के लिए उक्त अधिनियम पारित किया गया था, जिसके द्वारा भारत सरकार को इस बारे में सशक्त किया था कि वह दावों के संबंध में कार्यवाही करने के लिए तथा दावों की तुष्टि में प्राप्त की गई रकम के उपयोग या संवितरण के लिए आवश्यक कदम उठाए। केंद्रीय सरकार को शिकार हुए व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए अनन्य अधिकार और यूनाइटेड स्टेट्स में अथवा भारत में दावा करने के हकदार प्रत्येक नागरिक की ओर से कार्रवाई करने का अधिकार सौंपा गया था। श्री गर्ग ने यह दलील दी कि धारा 4 के साथ पठित अधिनियम की धारा 3(1) का समुचित परिशीलन करने पर समस्त प्रयोजन के लिए शिकार हुए सभी व्यक्तियों का अपवर्जन अक्षम है और उक्त अधिनियम दोषपूर्ण है। उन्होंने यह दलील दी कि न्यायालय के न्यायनिर्णयन के लिए डिक्री, निश्चित रूप से, नुकसानियों के विस्तार का अभिनिश्चय करेगी और यह ऐसी होनी चाहिए कि वह यथार्थ दायित्व, आत्यंतिक दायित्व और दांडिक दायित्व शीर्षों के अधीन विधि द्वारा अपेक्षित राहत दे सके।

53. श्री गर्ग ने यह दलील दी कि इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि भारत सरकार अपकृत्यों के लिए दायी है। अनेक विनिश्चयों में, जिनके प्रति श्री गर्ग ने हमारा ध्यान आकर्षित किया, यह स्पष्ट किया गया है कि सरकार केवल तभी दायी नहीं होती है, जबकि परिवादित अपकृत्य उसकी प्रभुत्वसंपन्न शक्तियों का प्रयोग करते हुए उसके कर्मचारियों द्वारा कारित किया जाता है, जिससे ऐसी शक्तियां अभिप्रेत हैं जिनका प्रयोग केवल प्रभुतासंपन्न अधिकारों के अधीन विधिपूर्वक किया जा सकता है—देखिए **नन्दराम हीरालाल** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[3]। सरकार के प्रभुतासंपन्न कृत्यों और ऐसे कृत्यों के बीच जो कि प्रभुतासंपन्न न हों एक वास्तविक और सुस्पष्ट प्रभेद विद्यमान है और कतिपय ऐसे कृत्य, जो पश्चात्वर्ती प्रवर्ग में आते हैं, ऐसे कृत्य होते हैं, जो व्यापार, वाणिज्य, कारबार और औद्योगिक उपक्रमों से संसक्त होते हैं। प्रभुतासंपन्न कृत्य ऐसे कार्य होते हैं, जिनकी प्रकृति ऐसी रहती है कि उनका निष्पादन किसी प्राइवेट व्यष्टि अथवा संगम द्वारा

[1] [1987] 3 उम० नि० प० 252=1987 (2) एस० सी० सी० 469.
[2] [1987] 3 उम० नि० प० 421=1987 (1) एस० सी० आर० 370.
[3] ए० आई० आर० 1978 एम० पी० 209 (212).

तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक कि शक्तियों को राज्य के प्रभुतासंपन्न प्राधिकरण द्वारा प्रत्यायोजित न कर दिया गया हो।

54. श्री गर्ग के कथनानुसार, संविधान के अधीन राज्य सरकारें कारखानों, पर्यावरण नियंत्रण आदि संबंधी विधियों के अनुसार लोक हित और लोक प्रयोजनार्थ उन कारखानों पर नियंत्रण का प्रयोग करने के लिए आबद्ध हैं। ये कृत्य, श्री गर्ग के कथनानुसार कोई प्रभुतासंपन्न कृत्य नहीं है और सरकार इस मामले में उपेक्षा की दोषी थी। इसके समर्थन में श्री गर्ग ने यह दलील दी कि सरकार की ओर से उपेक्षा संबंधी अपराध इस तथ्य से प्रकट होगा कि—

(क) सरकार ने यूनियन कार्बाइड कारखाने का नगर के अंतरंग भाग में प्रतिष्ठापन अनुज्ञात किया था;

(ख) सरकार ने यह जानते हुए कि विनिर्माण प्रक्रियाओं में अत्यन्त खतरनाक और घातक गैसों का उपयोग किया जा रहा था, कारखाने के सामने ही लोगों की रिहायश की अनुज्ञा दी हुई थी;

(ग) इस कारखाने से गैस का रिसाव एक सामान्य प्रक्रिया थी और इस पर लोगों और पत्रकारों द्वारा आवाज उठाई जा रही थी, यहां तक कि यह आवाज 1980 से लेकर 1984 तक विधान सभा में भी उठी थी। श्री गर्ग के कथनानुसार, ये लक्षण, सुदृढ़ रूप से साबित करते हैं कि सरकारों की ओर से अतिघोर उपेक्षा की गई थी। श्री गर्ग ने यह दलील दी कि गैस से शिकार हुए व्यक्तियों को यह विधिक और नैतिक अधिकार प्राप्त था कि वे सरकारों पर दावा करें और इसलिए उसे यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन, यूनियन कार्बाइड इंडिया लि० तथा उस समय राज्य के मुख्य मंत्री, श्री अर्जुन सिंह जैसे सभी आवश्यक और समुचित पक्षकारों को सम्मिलित करने का अधिकार था। उन्होंने हमारा ध्यान सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2, नियम 3 के प्रति आकर्षित किया। श्री गर्ग के कथनानुसार, संयुक्त अपकृत्यों पर वादों में प्रत्येक संयुक्त अपकृत्यकर्ता सामान्य कार्यों के किए जाने से पहुंची क्षति के लिए उत्तरदायी हैं और वे उन सबके विरुद्ध एक साथ वाद ला सकते हैं। श्री गर्ग की मुख्य आलोचना यह रही है कि संविधान के अनुच्छेद 21 में यथा निहित लोगों के प्राण संबंधी अधिकार और उनके रक्षोपाय संबंधी अधिकार के सामूहिक उत्तरदायी होने के अत्यंत तात्विक प्रश्न का गला घोंटने की इस अधिनियम द्वारा ईप्सा की गई थी। श्री गर्ग ने यह दलील देने की कोशिश की कि यह मात्र समर्थकारी अधिनियम था, न कि ऐसा अधिनियम जो शिकार हुए व्यक्तियों को अपने अधिकार के लिए वाद लाने से वंचित करता हो। उन्होंने यह दलील दी कि इस अधिनियम में धारा 3 के अधीन संस्थान में एवं धारा 4 के अधीन वाद के संचालन दोनों में नैसर्गिक न्याय का प्रत्याख्यान हुआ है। यह उल्लेखनीय है कि सभी के प्रति न्याय नहीं किया गया है। (**आर० विश्वनाथन** बनाम **रूक्न-उल-मुल्क सैयद अब्दुल वाजिद**[1]) । यह आग्रह किया गया कि पक्षकारों को युक्तियुक्त नोटिस दिया

---
[1] 1963 (3) एस० सी० आर० 22.

जाना आवश्यक था। उन्होंने **एम० नारायणन नम्बियार** बनाम **केरल राज्य**[1] के प्रति निर्देश किया।

55. भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन की ओर से हाजिर श्री शांति भूषण ने यह दलील दी कि अधिनियम कायम रखा जाना है, तो इसका परिशीलन और अर्थान्वयन उस रीति में किया जाना चाहिए, जिसके लिए उन्होंने आग्रह किया है। यह दलील दी गई कि जब भोपाल गैस विभीषिका घटित हुई, जो कि संसार भर में सबसे बुरी औद्योगिक विभीषिका थी, जिसके परिणामस्वरूप हजारों लोगों की मृत्यु हो गई थी और अन्य लाखों लोगों को गम्भीर क्षतियां पहुंची थीं, तब शिकार हुए व्यक्तियों के पक्ष में यह अधिकार उद्‌भूत हुआ था कि वे न केवल अपकृत्य विधि के अधीन नुकसानी मात्र प्राप्त करें, बल्कि साथ ही साथ स्पष्ट रूप से संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा मूल अधिकार के रूप में गारंटी किये गए प्राण संबंधी अधिकार के आधार से प्राण और अंगों के पूर्ण संरक्षण को प्राप्त करने का अधिकार भी उद्‌भूत हुआ था। श्री शांति भूषण के कथनानुसार, इस मूल अधिकार में विधि द्वारा स्थापित न्यायालयों द्वारा दावे को न्यायनिर्णीत करने का अधिकार भी शामिल है। यह सुस्थिर है कि उनके निजी मूलभूत अधिकारों के उल्लंघन की बाबत न्यायालयों में जाने का अधिकार एक मूलभूत अधिकार है, जिससे लोगों को वंचित नहीं किया जा सकता। श्री शांति भूषण ने यह दलील दी कि अधिनियम के पारित किए जाने के लिए किंचित न्यायौचित्य हो सकता है। उन्होंने यह कहा कि यूनियन कार्बाइड के विरुद्ध दावे अधिनियम के अंतर्गत आते हैं। शिकार हुए व्यक्तियों के दावे केंद्रीय सरकार या किसी अन्य ऐसे पक्षकार के विरुद्ध जो ऐसे शिकार हुए व्यक्तियों के प्रति अपकृत्य के लिए भी दायी है, अधिनियम के भीतर नहीं आते हैं। दूसरा प्रश्न, जो श्री शांति भूषण ने रखा यह था कि उक्त अधिनियम, जहां तक कि वह केंद्रीय सरकार को विभीषिका से उत्पन्न होने वाले सिविल दायित्वों की बाबत शिकार हुए व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने और उनके निमित्त कार्यवाही करने के लिए सशक्त करता है, दांडिक दायित्व की बाबत कोई भी अधिकार नहीं देता। श्री शांति भूषण के अनुसार, केंद्रीय सरकार, ऐसे अपराधों के संबंध में कोई अधिकार या प्राधिकार नहीं रख सकती, जो विभीषिका से उत्पन्न हों और जिनके परिणाम-स्वरूप दांडिक दायित्व उत्पन्न हुए हों। यह निवेदन किया गया कि गैर-शमनीय दांडिक मामलों की बाबत कोई परिनिर्धारण या समझौता नहीं किया जा सकता और शमनीय दांडिक मामलों के संबंध में उनके शमन करने का विधिक अधिकार केवल शिकार हुए व्यक्तियों के पास हो सकता है और केंद्रीय सरकार उनकी ओर से उन अपराधों का शमन नहीं कर सकती। श्री शांति भूषण द्वारा यह निवेदन किया गया कि इस न्यायालय को अपने आप किसी भी दांडिक कार्यवाही को, चाहे वह जो भी हो, संविधान के किसी उपबंध के अधीन अथवा दंड प्रक्रिया संहिता या विधि के किसी अन्य उपबंध के अधीन अंतरित करने की अधिकारिता नहीं होगी और इसलिए, यदि प्रश्नगत परिनिर्धारण को समझौता नहीं समझा जाना था बल्कि न्यायालय का आदेश समझा जाना था, तो वह अधिकारिताविहीन होगा और श्री शांति भूषण के अनुसार इस न्यायालय द्वारा **अंतुले वाले**[2] मामले में अधिकथित सिद्धांतों

[1] 1963 सप्ली० (2) एस० सी० आर० 724.

[2] [1988] 3 उम० नि० प० 21=1988 (2) एस० सी० सी० 602.

के आधार पर इस रूप में घोषणीय होगा। श्री शांति भूषण ने यह निवेदन किया कि यद्यपि अधिनियम के अधीन केंद्रीय सरकार को शिकार हुए व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने और उनकी ओर से मुकदमा लड़ने तथा उनकी ओर से यूनियन कार्बाइड से समझौता करने के लिए भी सक्षम समझा जाता है, तथापि शिकार हुए व्यक्तियों के सांविधानिक अधिकारों का घोर उल्लंघन उस दशा में होगा, यदि शिकार हुए व्यक्तियों को परिनिर्धारण की निष्पक्षता और पर्याप्तता की बाबत मत व्यक्त करने का अवसर और किसी न्यायालय द्वारा ऐसा परिनिर्धारण करने की अनुमति दिए बिना ऐसा किया जाता है।

56. श्री शांति भूषण ने यह निवेदन किया कि अधिनियम की धारा 3 के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा यूनियन कार्बाइड के विरुद्ध जो वाद लाया जा सकता है वह उस किस्म का वाद होगा जो सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 के स्पष्टीकरण में अनुध्यात है क्योंकि शिकार हुए व्यक्ति पक्षकार नहीं हैं फिर भी वाद में की गई डिक्री उन पर आबद्धकर होगी। इसलिए, श्री शांति भूषण द्वारा इस बात पर जोर दिया गया कि अधिनियम की धारा 3(1) के उपबंध केंद्रीय सरकार को मात्र समझौता करने के लिए सशक्त करती है, किंतु ऐसी प्रक्रिया अधिकथित नहीं करती, जिसका अनुसरण, कोई समझौता करने के लिए किया जाना था। इसलिए, ऐसी कोई बात नहीं है, जो सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3-ख के उपबंधों से असंगत हो, जिसे अधिनियम की धारा 11 के उपबंध लागू किए जाएं। तथापि, यदि तर्क की किसी भी गहराई के आधार पर अधिनियम के उपबंधों का इस प्रकार अर्थान्वयन किया जा सकता है कि वे सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3-ख के उपबंधों पर अध्यारोही हो जाते हैं, तो इस बात पर जोर दिया गया कि इसके परिणाम-स्वरूप अधिनियम के उपबंध शिकार हुए व्यक्तियों के मूल अधिकारों का उल्लंघन करने वाले बन जाएंगे और की गई कार्रवाइयां असांविधानिक हो जाएंगी। यदि इसने केंद्रीय सरकार को नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को लागू किए बिना शिकार हुए व्यक्तियों के अधिकारों के लिए समझौता करने की शक्ति दी है, तो वह असांविधानिक होगी और इस प्रकार दोषपूर्ण होगी। श्री शांति भूषण, सुश्री जय सिंह और श्री गर्ग ने यह निवेदन किया कि इन प्रक्रियाओं का अर्थान्वयन सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3-ख में अंतर्वलित उपबंधों के अनुसार किया जाना चाहिए और उन व्यक्तियों को जिनके दावों के बारे में समझौता किया जा रहा है, न्यायालय में यह दर्शित करने का अवसर दिया जाना चाहिए कि समझौता निष्पक्ष नहीं है और तदनुसार ऐसा समझौता न्यायालय द्वारा अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए। काउंसेल के अनुसार, ऐसी सुनवाई सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3-ख के निबंधनों के अनुसार समझौता करने से पूर्व ही की जानी चाहिए। इसके पश्चात् यह निवेदन किया गया कि अधिनियम की धारा 3 केंद्रीय सरकार को केवल प्रतिनिधित्व करने और शिकार हुए व्यक्तियों के स्थान पर कार्रवाई करने तथा शिकार हुए व्यक्तियों की ओर से वाद संस्थित करने या शिकार हुए व्यक्तियों की ओर से समझौता करने के लिए भी सशक्त करती है।

57. अधिनियम द्वारा नए वाद-हेतुकों का सृजन नहीं किया गया है, किंतु केवल विशेष न्यायालयों का सृजन किया गया है। सिविल न्यायालय द्वारा वाद पर विचार करने की अधिकारिता सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 से उद्भूत होती है और अधिष्ठायी (सब्स्टैंटिव) वाद-हेतुक तथा उपलब्ध राहत की प्रकृति भी अपरिवर्तित रहेगी। अधिनियम के उपबंधों द्वारा जो एकमात्र अंतर लाया गया वह यह होगा कि बजाय इसके कि शिकार हुए

व्यक्तियों द्वारा स्वयं वाद फाइल किया जाता अब वाद उनकी ओर से केंद्रीय सरकार द्वारा फाइल किया जाएगा ।

58. तत्पश्चात् श्री शांति भूषण ने यह तर्क रखा कि प्रत्येक शिकार हुए व्यक्ति का वाद-हेतुक पृथक् है और वह उसे उसके द्वारा उठाए गए नुकसान के अनुसार पृथक् रकम के लिए वाद लाने का हकदार बनाता है । उन्होंने यह निवेदन किया कि जहां केंद्रीय सरकार को शिकार हुए समस्त व्यक्तियों की ओर से वाद फाइल करने के लिए सशक्त किया गया है, वहां भी वह केवल उसी किस्म की डिक्री मांग सकती है, जिस किस्म की डिक्री शिकार हुए व्यक्तियों द्वारा स्वयं मांगी जाती, अर्थात् शिकार हुए विभिन्न व्यक्तियों के लिए, जिनके नाम डिक्री में दिए गए हैं, विभिन्न विनिर्दिष्ट रकमों का अधिनिर्णय देते हुए डिक्री । श्री शांति भूषण के अनुसार, यदि वाद फाइल करते समय, समस्त विवरण उपलब्ध नहीं थे, तो भी शिकार हुए व्यक्तियों की क्षतिपूर्ति के समस्त विवरण उपाप्त किए जाने चाहिए थे और वाद में समुचित डिक्री पारित करने से पूर्व वादपत्र में उन्हें विनिर्दिष्ट किया जाना चाहिए था । श्री शांति भूषण द्वारा निवेदन किया गया यदि वाद की विषय-वस्तु के बारे में केंद्रीय सरकार और यूनियन कार्बाइड के बीच समझौता किया जाना था, तो भी समझौते में यह उपदर्शित किया जाना था कि शिकार हुए प्रत्येक व्यक्ति को यूनियन कार्बाइड द्वारा संदेय कुल रकम के अतिरिक्त और कितनी रकम संदेय होगी । यह भी निवेदन किया गया कि अधिनियम में ऐसी कोई बात नहीं थी, जो केंद्रीय सरकार को यूनियन कार्बाइड से कोई ऐसा सामान्य समझौता करने की अनुमति देती, जिसमें यह संप्रकट किए बिना कि शिकार हुए व्यक्तियों में से प्रत्येक को कितनी रकम संदेय थी, एकमुश्त रकम की व्यवस्था कर दी जाए ।

59. यदि प्रश्नगत अधिनियम अधिनियमित न किया गया होता, तो शिकार हुए व्यक्ति न केवल स्वयं यूनियन कार्बाइड के विरुद्ध अपने वाद लाने के हकदार होते, बल्कि अपने दावों को लेकर तत्काल यूनियन कार्बाइड से कोई समझौता या परिनिर्धारण भी कर सकते थे । श्री शांति भूषण के अनुसार, अधिनियम के उपबंध शिकार हुए व्यक्तियों को उनके विधिक अधिकारों से वंचित करते हैं और अधिकारों से उनका इस प्रकार वंचित किया जाना और तत्स्थानी अधिकारों का सृजन केंद्रीय सरकार में किया जाना तभी युक्तियुक्त समझा जा सकता है यदि उनके वंचित किए गए अधिकार केंद्रीय सरकार पर ऐसा तत्स्थानी दायित्व अधिरोपित करते हैं जिससे वह शिकार हुए व्यक्तियों को ऐसी अंतरिम राहत का संदाय करती रहे जिसके कि वे उस समय तक हकदार बने रहेंगे जब तक कि केंद्रीय सरकार यूनियन कार्बाइड से प्रतिकर की संपूर्ण रकम पाने में सफल न हो जाए । उन्होंने यह निवेदन किया कि शिकार हुए व्यक्तियों द्वारा वाद लाए जाने के अधिकार से उन्हें वंचित किया जाना और न्याय के लिए समावेदन करने और अपने दावों को लेकर लड़ने के अधिकार से इंकार किया जाना तथा उनकी ओर से उनका मुकदमा लड़ने के लिए उनके लिए या उनके स्थान पर केंद्रीय सरकार को प्रतिस्थापित किया जाना तभी न्यायोचित हो सकता है जब और मात्र तभी जब केंद्रीय सरकार पर यह कर्तव्य अधिरोपित किया जाए कि वह ऐसी अंतरिम राहत उपलब्ध कराए या जो न्यायमूर्ति कीनन के शब्दों में 'आधारभूत मानवीय शिष्टता के अनुरूप हो, ऐसा अंतरिम अनुतोष उपलब्ध कराए जो कि शिकार हुए व्यक्तियों को उनके संघर्ष के लिए आवश्यक हो ।' काउंसेल ने निवेदन किया कि अधिनियम को इस प्रकार पढ़ा जाना चाहिए ।

श्री शांति भूषण ने इस बात पर जोर दिया कि यदि अधिनियम का अर्थान्वयन ऐसी रीति में किया जाता है कि इससे केंद्रीय सरकार पर ऐसी बाध्यता का सृजन नहीं होता, तो अधिनियम को युक्तियुक्त उपबंध के रूप में कायम नहीं रखा जा सकता जबकि यह शिकार हुए व्यक्तियों को यूनियन कार्बाइड से तत्काल प्रतिकर प्राप्त करने के सामान्य विधिक अधिकार से वंचित करता है। उन्होंने अधिनियम की धारा 10-ख और स्कीम के खंड 10 और 11 (1) का हवाला यह दर्शित करने के लिए दिया कि भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम में अंतर्निहित विधायी नीति में शिकार हुए व्यक्तियों को समय-समय पर अंतरिम राहत के संदाय की बात अनुध्यात है, जो तब तक जारी रहेगी जब तक केंद्रीय सरकार यूनियन कार्बाइड से प्रतिकर की संपूर्ण रकम वसूल नहीं कर लेती, जिसमें से केंद्रीय सरकार द्वारा संदत्त की गई अंतरिम राहत की रकम उन्हें संदत्त की गई रकम में से अंतिम रूप से रकम के वितरण के समय घटा दी जाएगी।

60. श्री शांति भूषण के अनुसार, यदि किए गए समझौते का एक भाग यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड और यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन के विरुद्ध दांडिक दायित्व को छोड़ने की बाबत है, तो परिनिर्धारण दोषपूर्ण है। श्री शांति भूषण ने यह निवेदन किया कि इस न्यायालय को यह घोषणा करने में संकोच नहीं करना चाहिए कि परिनिर्धारण इसलिए दोषपूर्ण है कि यह संघर्ष अभी चलेगा और शिकार हुए व्यक्तियों को केंद्रीय सरकार से अंतरिम अनुतोष और प्रतिकर मिलना चाहिए जिसकी प्रतिपूर्ति अंततः केंद्रीय सरकार द्वारा वसूल की जाने वाली रकम से करा ली जाएगी। श्री शांति भूषण के अनुसार, कुल मिलाकर यह बाध्यता संयुक्त अपकृत्यकर्ता के रूप में केंद्रीय सरकार की है।

61. याचियों की ओर से उपस्थित होने वाले श्री कैलाश वासुदेव ने रिट याचिका सं० 1551/86 में यह निवेदन किया है कि अधिनियम ने दावेदारों को व्यक्तिगत रूप से हुई वास्तविक क्षति और नुकसान के लिए उनके प्रतितोष और उपचारों की ईप्सा करने के अधिकार से उन्हें विस्थापित कर दिया है। अधिनियम में शिकार हुए व्यक्तियों के लिए केंद्रीय सरकार का नाम प्रतिस्थापित करके, शिकार हुए व्यक्तियों के स्थान पर वाद लाने का अनन्य अधिकार उसे दे दिया है, जिससे उनके अनुसार विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का उल्लंघन हुआ है। किसी व्यक्ति के प्रति किए गए दोष के लिए वाद लाने का अधिकार अनन्य रूप से व्यष्टिक अधिकार है। यह निवेदन किया गया कि देश की सिविल विधि के अधीन व्यक्तियों को अपने दावे प्रवृत्त कराने का अधिकार है और इससे किसी प्रकार से वंचित किया जाना अन्य मुकदमा लड़ने वालों के मुकाबले उन्हें एक भिन्न प्रवर्ग में ले जाएगा। आगे यह भी निवेदन किया गया कि यदि अधिनियम की धारा 4 के साथ पठित उसकी धारा 3 का यही अर्थान्वयन है कि (केंद्रीय सरकार को) पीड़ित व्यक्तियों से परामर्श किए बिना समझौता करने का अधिकार है, तो इससे विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का उल्लंघन होता है। यदि अधिनियम का यही अर्थान्वयन किया जाता है तो प्रतिस्थापित प्रक्रिया नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करती है और इस प्रकार अविधिमान्य है। यह निवेदन किया गया कि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' की उपधारणा इन मामलों में लागू नहीं होगी। और यह निवेदन किया गया कि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' वाले सिद्धांत के अधीन परंपरागत, 'प्रभुत्व संपन्न' वाले अपने 'प्रभुत्वसंपन्नवत हितों' के उल्लंघन के लिए ही वाद ला सकते हैं। ऐसे हितों के अंतर्गत व्यक्तिगत नागरिकों के

दावे सम्मिलित नहीं हैं। यह भी निवेदन किया गया कि प्रश्नगत अधिनियम 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' की उपधारणा से भिन्न है क्योंकि श्री वासुदेव के अनुसार, किसी विशेष आवश्यकता की पूर्ति नहीं की जानी थी और श्री वासुदेव के अनुसार सामूहिक कार्यवाही (क्लास ऐक्शन) से भी वही प्रयोजन सिद्ध होता, जैसा कि कानून के अधीन वाद लाने से सिद्ध होता और इसे ही अधिमान दिया जाता क्योंकि इससे दावेदारों के हितों की सम्यक् प्रक्रिया की भी रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त, कानून के अधीन लाए गए किसी वाद से शिकार हुए व्यक्तियों के अधिकारों की अधिष्ठायी सम्यक् प्रक्रिया को खतरा पहुंचता है। आगे इस बात पर भी जोर दिया गया कि किसी कार्रवाई को कायम रखने के लिए यह आवश्यक था कि भारत सरकार को सुने जाने का अधिकार होता' (स्टैंडिंग होती)।

62. काउंसेल ने यह निवेदन किया कि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' को इस देश में व्यक्तियों द्वारा उठाई गई क्षति और नुकसानी के लिए रकम की वसूली के आधार के रूप में न्यायिक मान्यता प्राप्त नहीं हुई है। उस सीमा तक उनका कहना ठीक हो सकता है, किंतु 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' का सिद्धांत भारत में विभिन्न संदर्भों और आकस्मिकताओं में प्रयोग किया गया है।

63. हमारी यह राय है कि प्रश्नगत अधिनियम के बारे में, जैसी कि विद्वान् महान्यायवादी द्वारा दलील दी गई है, 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' के रूप में कृत्य करने के लिए प्रभुत्वसंपन्न के अधिकार को मान्यता देने के लिए पारित किया गया है। भारत सरकार मामले के संचालन के विषय में शिकार हुए व्यक्तियों के अधिकारों को प्रभावी ढंग से सुरक्षित रखने के लिए 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' के रूप में कृत्य करने के लिए हकदार थी, जिस हैसियत को कानूनी उपबंध अर्थात् अधिनियम द्वारा परिपुष्ट कर दिया गया। हमने इसमें इससे पूर्व उल्लिखित कतिपय विनिश्चयों अर्थात् **बुधाकरण चनखानी** बनाम **ठाकुर प्रसाद शाह**[1], **बांके बिहारी मंडल** बनाम **बांके बिहारी हाजरा**[2] **मेंडई दलवई** बनाम **टी० कुमारस्वामी मुदलियार** बनाम **मेंडई दलवई राजम्मावाल**[3] वाले मामलों के प्रति निर्देश किया और इस न्यायालय द्वारा **महन्त रामस्वरूप दासजी** बनाम **एस० पी० साही**[4] वाले विनिश्चय तथा अमरीका के उच्चतम न्यायालय द्वारा आलफ्रेड शेनप्प बनाम पिएट्रो रिको वाले विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया गया। यह बात ध्यान में रखनी होगी कि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' का सिद्धांत संकल्पना और विधिशास्त्र की दृष्टि से देश के राज्यक्षेत्र के बाहर शिकार हुए कुछ व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने तक ही सीमित नहीं है। यह सच है कि अब तक अमरीका में इस सिद्धांत का उपयोग इसी प्रकार किया गया है। हमारी राय में, विद्वान् महान्यायवादी की यह दलील ठीक थी कि जहां किसी देश के नागरिक किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी की उपेक्षा से हुई विभीषिका के शिकार हुए हों, वहां ऐसी विशिष्ट स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें उस विशिष्ट स्थिति के लिए उपयुक्त और प्रभावी प्रक्रिया की आवश्यकता होती है और शिकार हुए व्यक्तियों की शिकायतों और मांगों को प्रभावी बनाना होता है जिसके लिए परंपरागत प्रतिपक्षी पद्धति (ऐडवर्सरी

---

[1] ए० आई० आर० 1942 कलकत्ता 311.

[2] ए० आई० आर० 1943 कलकत्ता 203.

[3] ए० आई० आर० 1957 मद्रास 563.

[4] (1959) 2 अनु० एस० सी० आर० 583.

सिस्टम) पूर्णतः अपर्याप्त होगी। राज्य को अपनी प्रभुत्वसंपन्न बाध्यताओं के निर्वहन के लिए आगे आना चाहिए। भारत सरकार अपनी सांविधानिक बाध्यताओं से शिकार हुए व्यक्तियों के दावों को अपने ऊपर लेने के लिए आवश्यकता की घड़ी में उनकी रक्षा करने के लिए बाध्य है। विद्वान् महान्यायवादी का यह निवेदन करना भी ठीक था कि कलकत्ता और मद्रास उच्च न्यायालय तथा संयुक्त राज्य अमरीका के उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों से यह स्पष्ट रूप से उपदर्शित होता है कि प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक के सिद्धांत का आश्रय भारत के भीतर ही प्रभुत्वसंपन्न राज्य द्वारा लिया जा सकता है, भले ही यह दलील दी गई हो कि अब तक बहुराष्ट्रीय कंपनी के हाथों दुर्घटना के शिकार हुए व्यक्तियों की क्षतियों के दावों की बाबत भारत में उनका आश्रय नहीं लिया गया है। हमारी राय में, संकल्पना और विधिशास्त्र की दृष्टि से राज्य पर ऐसे उत्तरदायित्व ग्रहण करने पर कोई रोक नहीं है, जो संविधान के अधीन राज्य की बाध्यताओं के निर्वहन के लिए प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक की बाध्यताओं के समतुल्य हों। केंद्रीय सरकार ने प्रस्तुत मामले में जो कुछ किया है, उसके बारे में हमें प्रतीत होता है कि वह उसकी प्रभुत्वसंपन्न शक्ति की अभिव्यक्ति है। यह शक्ति प्रत्येक प्रभुत्वसंपन्न राज्य में सर्वांगीण और अंतर्निहित रूप में विद्यमान होती है कि वह अपने लोगों के स्वास्थ्य, शांति, मनोबल, शिक्षा और सुव्यवस्था के विकास के लिए सब कुछ करे और राज्य के धन और संपन्नता की वृद्धि में उन्मुख रहे। प्रभुत्व संपन्नता को परिभाषित करना कठिन है। (इस संबंध में देखिए वेवर लिखित कांस्टिट्यूशनल लॉ, पृष्ठ 490) सामान्य अनुक्रम में, इन मामलों में राज्य की प्रभुता सीमित नहीं की जा सकती। जब सामान्य कल्याण के विषय विधायी अधिनियमितियों की परिधि में ले लिए जाते हैं, तो उनसे संबद्ध परिस्थितियों के साथ प्रभुता को समायोजित करना पड़ता है। इस शक्ति का जनता के लिए उतना ही महत्त्व है, जितना कि आवश्यकता की विधि का व्यष्टियों के लिए। जनकल्याण का लक्ष्य ही सर्वोत्तम विधि है, [सालस पोपुली सुप्रीम लैक्स] यह बात इस सूत्र में सन्निहित है। यह कोई नियम नहीं है बल्कि यह संबद्ध नियम का विकसित रूप है। यह शक्ति सदैव उतनी ही व्यापक रही है, जितनी जनकल्याण और इतनी सशक्त रही है मानो वह राज्य का बाहुबल है। इसे मौलिक अधिकारों और संवैधानिक सीमाओं के अधीन रहते हुए लोगों की विधायी इच्छा द्वारा ही मापा जा सकता है। यह पूर्वोक्त के अधीन प्रभुता का ही प्रसर्ग (एमनेशन) है। वस्तुतः, यह राज्य की बाध्यता है कि वह ऐसा दायित्व ग्रहण करे और अपने नागरिकों की रक्षा करे। जैसा कि विद्वान् महान्यायवादी ने कहा है यह ध्यातव्य है कि शक्ति का प्रदान किया जाना और उसके प्रयोग की रीति दो भिन्न-भिन्न विषय हैं। यह निवेदन किया गया कि वाद का संचालन और यदि आवश्यक हो तो समझौता करने की शक्ति अधिनियम के प्रयोजन के लिए केंद्रीय सरकार में निहित थी। समझौता करने और कार्यवाहियों का संचालन करने की शक्ति अनियंत्रित अथवा मनमानी नहीं है। इनका प्रयोग, स्पष्ट रूप से, शिकार हुए व्यक्तियों के हितों के लिए ही किया जाना था। कानून के दुरुपयोग की संभावना से उसमें अविधिमान्यता का कोई तत्व नहीं जुड़ जाता। इस संबंध में **बेल फास्ट कारपोरेशन** बनाम **ओ० डी० कमीशन**[1] वाले मामले में न्या० वाइकाउंट साइमंस द्वारा दिए गए निष्कर्ष सुसंगत हैं जिनमें इस बात पर जोर दिया गया था कि किसी उपाय की विधिमान्यता का अवधारण किसी मामले-विशेष में

---

1 1960 अपील केसेज़ 490.

1989(12) eILR(PAT) SC 1

उसके लागू होने के आधार पर नहीं किया जा सकता। इस न्यायालय ने **सीमा-शुल्क कलक्टर, मद्रास** बनाम **नाथेला समसथचेट्टी**[1] वाले मामले में इस बात पर जोर दिया कि कानून की संवैधानिक वैधता उसके उपबंधों और युक्तियुक्त रूप से लागू किए जाने की सीमा के अर्थान्वयन के आधार पर अवधारित करनी होगी। यह बात ध्यान में रखने की है कि इस प्रकार निर्णीत किए जाने पर यह युक्तियुक्तता के परीक्षण पर खरी उतरती है, तब दी गई शक्ति का अनुचित रूप से प्रयोग किए जाने की संभावना विधि को अविधिमान्य उद्घोषित करने के लिए कोई आधार नहीं रह जाती। इस संबंध में भी **पी० जे० इरानी** बनाम **मद्रास राज्य**[2], और **डी०के० त्रिवेदी** बनाम **गुजरात राज्य**[3] वाले मामले में दिए गए निष्कर्षों को भी कृपया देखें।

64. अधिनियम की धारा 3 और 4 को, जैसा कि विद्वान् महान्यायवादी ने दलील दी है, अधिनियम के अन्य उपबंधों के साथ और विशेष रूप से अधिनियम की धारा 9 और 11 के साथ पढ़ा जाना चाहिए। जैसा कि अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के कथन और उद्देशिका में उपदर्शित किया गया है, इन्हें उस उद्देश्य के संदर्भ में समझा जाना चाहिए, जिसे अधिनियम द्वारा प्राप्त किया जाना ईप्सित है। अधिनियम की रूपरेखा इस प्रकार बनाई गई है कि विभीषिका से शिकार हुए व्यक्ति पूर्णतः सुरक्षित हैं और प्रतिकर के दावे अथवा जीवन के हानि या व्यक्तिगत क्षतियों के लिए क्षतिपूर्ति या उनसे उत्पन्न होने वाले किसी अन्य विषय की बाबत या विभीषिका से संबंधित किन्हीं मामलों को तेजी से, प्रभावी रूप से, साम्यापूर्ण रीति से और दावेदारों के सर्वोत्तम फायदे को देखते हुए निपटाया जाना है। अधिनियम की धारा 3 अधिनियम के अन्य उपबंधों के अध्यधीन है, जिनमें धारा 4 और 11 सम्मिलित हैं। अधिनियम की धारा 4, धारा 3 के मुकाबले अध्यारोही खंड से आरंभ होती है और इसलिए वह धारा 3 पर अभिभावी है। विद्वान् महान्यायवादी ने यह निवेदन किया है कि अधिनियम की धारा 3 के अधीन केंद्रीय सरकार का अधिकार शिकार हुए व्यक्तियों का अनन्य रूप से प्रतिनिधित्व करना और उनके स्थान पर कृत्य करना था। दूसरे शब्दों में, इस बात पर जोर दिया गया कि केंद्रीय सरकार को शिकार हुए व्यक्तियों के स्थान पर प्रतिस्थापित कर दिया गया है और वह वादकर्ता [डोमिनस लिटस] है। विद्वान् महान्यायवादी ने यह निवेदन किया कि वादकर्ता अपने साथ ऐसी सर्वोत्तम रीति में, जो वह ठीक समझे, वाद का संचालन करने का अधिकार रखता है, जिसके अंतर्गत मामला वापस लेने और समझौता करने का भी अधिकार है। अधिनियम की धारा 3(2) द्वारा प्रदत्त मामला वापस लेने का अधिकार और समझौता करने के अधिकार का प्रयोग इस प्रकार नहीं किया जा सकता, जिससे शिकार हुए व्यक्तियों के अधिकार विफल होते हों। अधिकारों का प्रयोग किस ढंग से किया जाएगा, इसका मार्गदर्शन उद्देशिका में अंतर्विष्ट उद्देश्यों और कारणों में दिया गया है; अर्थात् शिकार हुए व्यक्तियों के दावों का शीघ्रता से, प्रभावी रूप से, साम्यापूर्ण रीति से कार्यवाही करना और उनके दावों की रक्षा करना। अध्यादेश के स्थान पर अधिनियम उस समय पारित किया गया जिस समय बहुत से प्राइवेट वादियों ने अमरीका के न्यायालयों में परिवाद/वाद संस्थित कर दिए थे। ऐसी स्थिति में शिकार हुए व्यक्तियों के स्थान पर कार्यवाही करते हुए भारत सरकार को आवश्यक

---

[1] [1962] 3 एस० सी० आर० 786 (825).

[2] [1962] 2 एस० सी० आर० 169.

[3] [1986] 3 उम० नि० प० 709=(1986) सप्ली० एस० सी० सी० 20.

रूप से कानून के अधीन अधिकार मिलना चाहिए था कि वह सभी परिस्थितियों में जिसके अंतर्गत वाद को वापस लेने और समझौता करने की स्थिति भी है, कार्यवाही करती। विद्वान् महान्यायवादी ने यह निवेदन किया कि यदि यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन ऐसी एकमुश्त रकम का संदाय करने के लिए सहमत था, जो न्यायोचित, निष्पक्ष और साम्यापूर्ण थी, किंतु ऐसी शर्त पर जोर दे रही थी कि कार्यवाहियां पूरी तरह से वापस ले ली जाएं तो निश्चित रूप से अधिनियम के अधीन कार्यवाही वापस लेने की शक्ति भी होनी चाहिए थी। इसलिए उनके अनुसार अधिनियम में ऐसा उपबंध किया गया, जिसमें सरकार को समझौता करने के लिए सशक्त बनाया गया। अधिनियम की धारा 3(2) (ख) के अधीन समझौता करने की बाबत बनाए गए उपबंध वादकर्ता की शक्तियों से सुसंगत थे। इस संबंध में हमारा ध्यान ब्लैक की लॉ डिक्शनरी के पंचम संस्करण के पृष्ठ 437 पर वादकर्ता (डोमिनस लिटस) की परिभाषा की ओर आकर्षित किया, जिसमें निम्नलिखित उल्लिखित किया गया है—

> "डोमिनस लिटस (वादकर्ता)—वाद का मालिक अर्थात् वह व्यक्ति, जो वस्तुतः और प्रत्यक्षतः पक्षकार के रूप में वाद में हितबद्ध हो और जो अपने अटर्नी या अधिवक्ता से भिन्न हो। किंतु यह शब्द ऐसे व्यक्ति के लिए भी लागू होता है, जो भले ही मूल रूप से पक्षकार नहीं था फिर भी अपने आपको उस रूप में बना लिया है चाहे मध्यक्षेपी के रूप में या अन्यथा, और एक पक्ष की ओर से संपूर्ण नियंत्रण और उत्तरदायित्व ग्रहण कर लिया है और न्यायालय द्वारा खर्चे के लिए दायी समझा गया था। वर्जीनिया इलैक्ट्रिक एंड पावर कंपनी **बनाम** बावरस (181 जिल्द 542, 25 एस ई 2 डी 361.263)।"

65. विद्वान् महान्यायवादी ने यह दलील देनी चाही है कि शिकार हुए व्यक्तियों को कार्यवाहियों के संचालन या समझौता करने के मामले में पूर्णतः अपवर्जित नहीं किया गया है और उन्होंने कुछ क्रमों पर शिकार हुए कुछ व्यक्तियों के मामले में भागीदारी पर व्यापक बल देते हुए कार्यवाहियों का हवाला दिया। उन्होंने हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया कि शिकार हुए व्यक्तियों ने भारत सरकार द्वारा फाइल किए गए परिवाद के अतिरिक्त पृथक् समेकित परिवाद भी फाइल किए हैं। अमरीका के जिला न्यायालय के न्यायाधीश कीनन ने शिकार हुए व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व केवल प्राइवेट अटर्नियों द्वारा ही किए जाने का आदेश नहीं दिया है, बल्कि भारत सरकार द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने का भी आदेश किया है। इसलिए, यह निवेदन किया गया कि यह दलील नहीं दी जानी चाहिए कि शिकार हुए व्यक्तियों को अपवर्जित कर दिया गया है। विद्वान् महान्यायवादी ने आगे यह दलील दी कि न्यायाधीश कीनन द्वारा पारित आदेशों के अनुसरण में जिनके द्वारा यूनियन कार्बाइड के विरुद्ध कतिपय शर्तें अधिरोपित की गई हैं और न्याय मंच को प्रस्ताव लाने की अनुमति दी गई है, जो यूनियन कार्बाइड के लिए अमान्य है कि वाद वापस भारत भेजा गया और उसे भोपाल के जिला न्यायालय के समक्ष संस्थित किया गया। उन परिस्थितियों में विद्वान् महान्यायवादी द्वारा यह दलील दी गई कि प्राइवेट वादीगण, जो अमरीका गए और जिनका प्रतिनिधित्व आकस्मिक सहायता करने वाले वकीलों द्वारा किया गया, पूर्णतः इस बात को जानते थे कि वे भी उस वाद में सम्मिलित हो सकते थे, क्योंकि वे भारत सरकार के साथ ही अमरीका के न्यायालय में खड़े थे। यह दलील दी गई कि कार्यवाहियों में किसी भी समय या किसी भी प्रक्रम पर,

जिसके अंतर्गत समझौता किए जाने का प्रक्रम भी है, यह प्राइवेट वादीगण न्यायालय की कार्यवाहियों में भाग ले सकते थे और यदि वे चाहते तो अपना अभ्यावेदन कर सकते थे। इतना ही नहीं, भारत में किए गए वादों में भी इन प्राइवेट पक्षकारों को पृथक् काउंसेल द्वारा पक्षकार के रूप में प्रतिनिधित्व किए जाने की अनुमति दी जा सकती थी भले ही अधिनियम द्वारा भारत संघ को ही एकमात्र वादी के रूप में सशक्त किया गया है। विद्वान् महान्यायवादी ने यह निवेदन किया कि अधिनियम की धारा 4 शिकार हुए व्यक्तियों को कार्यवाहियों में भागीदार बनने के अधिकार का प्रयोग करने में स्पष्टत: समर्थ बनाती है। केंद्रीय सरकार पर यह कर्त्तव्य सौंपा गया था कि वह ऐसे किसी भी विषय पर सम्यक् ध्यान दे, जिस पर ऐसा व्यक्ति विचार किए जाने की अपेक्षा करे। वस्तुत: विद्वान महान्यायवादी ने बहुत जोर देकर कहा कि प्रस्तुत मामले में जहरीली गैस कांड संघर्ष मोर्चा और जन स्वास्थ्य केंद्र (भोपाल) ने जिला न्यायाधीश, भोपाल के समक्ष शिकार हुए व्यक्तियों की ओर से मध्यक्षेपी के रूप में सम्मिलित होने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 और धारा 151 के साथ पठित आदेश 1, नियम 8 के अधीन आवेदन फाइल किया था। वे विद्वान् जिला न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई में सम्मिलिए हुए, जिसने अपने आदेश में उनके द्वारा मध्यक्षेप किए जाने का हवाला दिया है। आगे इस बात पर जोर दिया गया कि जब यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन ने जबलपुर स्थित मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय में जिला न्यायाधीश द्वारा आदेश किए गए अंतरिम प्रतिकर के भुगतान वाले आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण फाइल किया, तब मध्यक्षेपी ने अपने अधिवक्ता श्री विभूति झा के माध्यम से कार्यवाहियों में भाग लिया। पूर्वोक्त संगठन ने इस न्यायालय द्वारा भारत संघ और यूनियन कार्बाइड को अंतरिम प्रतिकर की बाबत उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अनुज्ञात विशेष इजाज़त के अनुसरण में की गई सिविल अपील में भी मध्यक्षेपी के रूप में भाग लिया। उन परिस्थितियों में यह निवेदन किया गया था कि गैस का शिकार कोई अन्य व्यक्ति विद्यमान नहीं है, जो कार्यवाहियों में भाग ले सके और धारा 4 के अधीन भाग लेने का दावा कर सके। इसलिए अधिनियम द्वारा उपबंधित समझौते के अधिकार के बारे में यह नहीं अभिनिर्धारित किया जा सकता कि उससे नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होता है। महान्यायवादी के अनुसार, इस न्यायालय ने सर्वप्रथम इस आशय का प्रस्ताव न्यायालय में काउंसेल के समक्ष रखा और जब वे इससे सहमत हो गए तब 14 फरवरी, 1989 को आदेश लिखवाया। तारीख 15 फरवरी, 1989 को परिनिर्धारण का ज्ञापन न्यायालय के आदेश के अनुसरण में फाइल किए जाने के पश्चात् आगे आदेश पारित किए गए। उक्त संगठन, अर्थात् जहरीला गैस कांड संघर्ष मोर्चा अभिलेख के अनुसार दोनों ही तारीखों पर न्यायालय में उपस्थित था और प्रकट रूप से समझौते के प्रति आपत्ति नहीं की। श्री चरण लाल साहू ने, जो रिट याचिका में एक याची था, कार्यवाहियों को स्वयं देखा और 15 फरवरी, 1989 को न्यायालय द्वारा आदेश पारित किए जाने के पश्चात् यह उल्लेख किया कि उसने 100 करोड़ रुपयों के लिए एक वाद फाइल किया है। विद्वान् महान्यायवादी ने यह निवेदन किया कि श्री साहू ने न ही परिनिर्धारण के विरुद्ध विरोध प्रकट किया और न ही सुनवाई किए जाने के लिए कोई याचना की। श्री चरण लाल साहू ने मामलों में से एक मामले में विपक्ष के आवेदन पर यह याचना की कि उसे स्वयं अपने लिए और उन शिकार हुए व्यक्तियों की ओर से, जिनकी ओर से उसने प्रतिनिधित्व करने का दावा किया है, 100 करोड़ रुपये की रकम का संदाय किया जाना चाहिए। पूर्वोक्त पृष्ठभूमि में अधिनियम की

1989(12) eILR(PAT) SC 1

धारा 3 के अर्थान्वयन के आधार पर विद्वान महान्यायवादी ने इस बात पर जोर दिया कि धारा 3 को असंवैधानिक अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता। उसमें न्यायोचित, निष्पक्ष और युक्तियुक्त प्रक्रिया उपबंधित की गई है और इसके द्वारा सभी क्रमों में शिकार हुए व्यक्तियों को—जो ऐसा करने में समर्थ और इच्छुक हों-- कार्यवाहियों में सम्मिलित होने के लिए समर्थ बनाया गया है। हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया गया कि अधिनियम की धारा 11 में यह उपबंध किया गया है कि अधिनियम के उपबंध अधिनियम से भिन्न किसी अन्य अधिनियमिति में अंतर्विष्ट उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे। इसलिए, इस बात पर जोर दिया गया कि सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध अधिनियम की परिधि में आने वाले क्षेत्रों, अर्थात् (क) प्रतिनिधित्व किए जाने; (ख) प्रतिनिधित्व किए जाने की शक्ति; और (ग) समझौता करने की बाबत, अध्यारूढ़ किए जा चुके हैं अर्थात् उन पर अधिनियम के उपबंध अभिभावी हो गए हैं।

66. विद्वान् महान्यायवादी के अनुसार अधिनियम नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं करता। सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों को अधिनियम में नहीं पढ़ा जा सकता, क्योंकि अधिनियम की धारा 11 में यह उपबंध किया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों का जहां तक वे अधिनियम से असंगत थे, यह अर्थ लगाना चाहिए कि वे उसके अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों की बाबत अध्यारूढ़ किए जा चुके हैं अर्थात् उन पर अधिनियम के उपबंध अभिभावी हो गए हैं। इसके अतिरिक्त, धारा 4 द्वारा शिकार हुए व्यक्तियों को कार्यवाहियों में भाग लेने का अर्हक अधिकार दिया गया है। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन का कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के लागू करने की गुंजाइश के बारे में कोई परिशुद्ध लौह-सांचा सूत्र (स्ट्रेट जैकेट फार्मूला) नहीं है। उनके अनुसार, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अधिनियम की धारा 3 और 4 में किए गए उपबंधों से आगे विस्तार किया जाना अनावश्यक था और यदि ऐसा किया जाता है, तो कानून के संबद्ध उपबंध अधिनियम द्वारा आशयित उद्देश्य अर्थात् 'शीघ्र राहत' की प्राप्ति की बाबत अपनी प्रभावकारिता से वंचित हो जाएंगे अर्थात् पीड़ितों को शीघ्र राहत नहीं दी जा सकेगी। उसने इस बात पर जोर दिया कि नोटिस की आदेशिका, परामर्श और जानकारी का आदान-प्रदान ज्ञात विनिश्चय करने की प्रक्रिया, सर्वसम्मत राय के निर्धारण की औपचारिकताओं में इतना समय लगेगा कि सरकार पीड़ितों के न्यायोचित शोध्यों को वसूल करने के लिए पीड़ितों की ओर से मामले में दक्षतापूर्वक, प्रभावकारी और प्रयोजनपूर्ण कार्यवाही करने में पूर्णतः असमर्थ रहेगी। इसके अतिरिक्त, उसने इस बात पर जोर दिया कि 1976 में उसके संशोधन से पूर्व, सिविल प्रक्रिया संहिता में न तो आदेश 1, नियम 8(4), (5) और (6) के उपबंध और न ही स्पष्टीकरण आदि थे और न ही उसमें आदेश 23, नियम 3-क और 3-ख थे। संशोधन से पूर्व, उच्च न्यायालय ने अपने समक्ष आदेश 1, नियम 6 के अधीन वाद में वाद को तय करने या उसका निपटारा करने से पूर्व, प्रतिनिधि पक्षकारों की सुनवाई की अपेक्षा के विरुद्ध मत अपनाया था। हमारा ध्यान कलकत्ता उच्च न्यायालय के चिन्ताहरण **घोष और अन्य** बनाम **गुजारेडी शेख और अन्य**[1] वाले मामले के विनिश्चय की ओर आकृष्ट किया गया था जिसमें विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रतिनिधि-वाद में वादी को इन शर्तों के

---

1 ए० आई० आर० 1951 कलकत्ता 456.

अध्यधीन समझौता करने का अधिकार था कि वाद उस नियम के उपबंध के निबंधनों के अनुसार समुचित रूप से फाइल किया गया था और समझौते का करार सद्भाविक रूप से किया गया था। उस संदर्भ में, विद्वान महान्यायवादी ने यह दलील दी थी कि जब वाद विधिमान्य रूप से संस्थित किया गया था, तो वादी को वाद में समझौता करने का अधिकार था और कोई समझौता करने से पूर्व, प्रतिनिधित्व किए गए पक्षकारों को सूचना जारी करने के लिए किन्हीं उपबंधों की कोई आवश्यकता नहीं है। **रामस्वरूप** बनाम **नानक राम**[1] वाले मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया गया था जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 6 के अधीन फाइल किए गए वाद में किया गया समझौता उन सभी व्यक्तियों पर आबद्धकर था जो वादी थे और जिन्होंने प्रतिनिधि हैसियत में वाद संस्थित किया था, और उन्हें समझौता करने का प्राधिकार था। इसके अतिरिक्त, उसने यह निवेदन किया कि पीड़ितों में से यदि सभी नहीं तो अधिकांश ने अपना मुख्तारनामा दिया था जो कि सम्यक् रूप से भारत संघ के पक्ष में फाइल किया गया था। इन मुख्तारनामों को न तो अधिक्षेपित किया गया है और न ही उन्हें प्रतिसंहृत किया गया या वापस लिया गया है। यह कथन किया गया कि मुख्तारनामे के कारण, भारत संघ को वादों को फाइल करने और यदि ऐसा अपेक्षित हो तो पीड़ितों के हितों के बारे में समझौता करने का प्राधिकार था। स्वयं प्रश्नगत अधिनियम में परिनिर्धारण अनुध्यात है, जैसा कि हमने अवलोकन किया है, और इस परिनिर्धारण के लिए एक सामान्य प्रवक्ता की आवश्यकता होगी।

67. यह निवेदन किया गया था कि भारत सरकार ने कानूनी प्रतिनिधि के रूप में अपने कर्त्तव्य का निर्वहन किया था और वह किसी भी प्रस्तावित कार्यवाही के अनुक्रम के गुणागुण का मूल्यांकन करने की केंद्रीय स्थिति में है। जहां तक कि पीड़ितों के अधिकारों की परिधि को न्यून करने या कम करने संबंधी समझौते की कार्यवाही का प्रश्न है यह निवेदन किया गया था कि यूनियन कारबाइड कारपोरेशन (यू० सी० सी०) और यूनियन कारबाइड इंडिया लिमिटेड (यू० सी० आई० एल०) के दायित्वों की बाबत, चाहे वे निगमित, दांडिक या अपकृत्यकारी हों, किसी व्यष्टि को दायित्व को तर्कसंगत विस्तार पर्यंत ले जाने या उससे पूर्व समाप्त करने और किसी समझौते को स्वीकार कर लेने की स्वतंत्रता थी। जैसे कि कोई व्यष्टि दायित्व के न्यायनिर्णयन के विषय में चयन कर सकता है, उसी प्रकार कानूनी प्रतिनिधि भी चयन कर सकता है। अतः, यह दलील दी गई कि तर्क प्रस्तुत करना पूर्णतः दोषपूर्ण है कि किसी व्यक्ति के चयन के अधिकार के संबंध में धारा 3(ii)(ख) असंगत है और साथ ही उसमें एक केंद्रित विनिश्चय करने वाली प्रक्रियाओं का उपबंध है जिससे कि प्रभावकारी रूप से सामान्य हित का निर्णय किया जा सके और उसे प्राप्त किया जा सके। यह दलील दी गई कि केवल भारत सरकार जैसा कोई केंद्रीय अभिकरण ही समग्र रूप से दावों को और उन्हें लागू करने में व्यष्टिक वादियों की समस्याओं को भलीभांति देख सकता था। इस बात पर जोर दिया गया कि यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि समझौता एक विधिक कार्यवाही है। प्रस्तुत मामले में, यह वाद के संचालन का एक भाग है। यह दलील दी गई कि इसलिए यह अनिवार्य है कि समझौते का चयन सावधानीपूर्वक, सतर्कतापूर्वक और पर्याप्त विवेक के साथ किया जाए।

[1] ए० आई० आर० 1952 इलाहाबाद 275.

1989(12) eILR(PAT) SC 1

किंतु, विद्वान् महान्यायवादी के अनुसार, यदि कोई दावेदार वाद के संचालन से संबंध रखने की इच्छा करता है, तो उसे उस प्रयोजन के लिए आवश्यक अवसर प्रदान किया जाए। इस संबंध में, अधिनियम की धारा 4 के प्रति निर्देश किया गया था। दूसरी ओर, यह दलील दी गई कि कोई व्यक्ति जिसने वाद के संचालन में भाग न लिया हो और जो मामले की विभिन्न जटिलतओं के बारे में अनभिज्ञ हो, उससे कार्यवाहियों के संचालन या परिनिर्धारण में समझौते की विधिक कार्यवाही में सार्थक रूप से भाग लेने की प्रत्याशा नहीं की जा सकती। उन परिस्थितियों में, विद्वान् महान्यायवादी ने यह निवेदन किया कि तारीख 14-15 फरवरी, 1989 के आदेश और समझौता-ज्ञापन अधिनियम और संविधान दोनों के अधीन न्यायोचित थे। उसके अनुसार, परिनिर्धारण के निबंधन उक्त अधिनियम की धारा 3(ii)(ख) के अनुसरण में प्रकल्पित थे, जो कि उसके अनुसार न्यायिक निदेश के अनुसरण में फाइल किया गया था। उसने इस बात पर कई बार जोर देने की कोशिश की कि आदेश देश के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अधीन उसमें निहित असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए पारित किया गया था।

68. हमारा ध्यान संविधान के अनुच्छेद 136 और 142 के अधीन इस न्यायालय की शक्ति की बाबत अनेक विनिश्चयों की ओर आकर्षित किया गया था। अधिनियम के उपबंधों को बारीकी से देखने पर, यह दलील दी गई थी कि सभी बातों को ध्यान में रखते हुए, अर्थात् जयांश क्रय, शोषण, विवेकशून्य (नितांत अनुचित) करारों की संभाव्यताओं और मृतकों और निःशक्त व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने की आवश्यकता, घटना-क्रम से एक सुव्यवस्थित और क्रमबद्ध संरक्षण एवं व्यापकतम संभव विस्तार तक अधिकारों का न्यायोचित ठहराया जाना प्रकटशील होगा। यह मत व्यक्त किया गया था कि अधिकार अनिवार्य रूप से बहुमूल्य उपलब्धियां होती हैं, किंतु अधिकार ऐसी वस्तु है जिसका आश्रय कोई व्यक्ति ले सकता है और ऐसी वस्तु है जिसकी कि मांग बिना किसी व्याकुलता या लज्जा के की जानी चाहिए या उस पर जोर दिया जाना चाहिए। जब अधिकारों को कम किया जाता है, तो ऐसे अध्युपाय की अनुज्ञेयता की अधिकारों की शक्ति, अत्यावश्यकता, उनके अत्यंत महत्व की परीक्षा करने के लिए ऐसे कदम उठाए जा सकते हैं जिनसे कि ऐसे कम करने से अधिकांशतः व्यक्तियों की सर्वाधिक भलाई (बहुजन हिताय बहुजन सुखाय) हो। उन परिस्थितियों के अधीन, जो भोपाल गैस दुर्घटना (ट्रैजेडी) के पीड़ितों के सामने थी, विद्वान् महान्यायवादी के अनुसार, मानव अधिकारों का न्यायोचित आधार यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के पास नैतिक रूप से ऐसी चीज होनी चाहिए जिसके लिए वह हकदार है। इस बात पर जोर दिया गया था कि कानून का उद्देश्य यही है। अधिनियम में अधिकारों की धारणा के लिए उपबंध इस उद्देश्य से किया गया है कि दावेदार को शीघ्र, प्रभावकारी और साम्यापूर्ण परिणाम के साथ सर्वोत्तम लाभ मिले। विद्वान् महान्यायवादी के अनुसार, अधिनियम और स्कीम इस बात को स्पष्ट करते हैं कि विश्वास की प्रणाली में और संभव सहायता के बारे में संदेह है। जब तक कि ऐसी वृत्ति परिस्थितियों के अधीन नितांत अनुचित नहीं दर्शायी जाती है या उससे न्यायिक अंतःकरण को धक्का लगता है और अधिनियम के उद्देश्यों के विध्वंस के रूप में नुकसान पहुंचता है, तो विधिमान्य शक्ति के घोषित रूप में ऋजु, न्यायोचित और साम्यापूर्ण प्रयोग को चुनौती देने की स्वतंत्रता नहीं होगी। उसने इस दलील का प्रतिवाद किया कि पीड़ितों का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार एक आधार-तत्व है जैसे कि याचियों की ओर से काउंसेल द्वारा मुख्यतः दलील दी

गई है और प्रत्येक अलग दावे का पूर्व अवधारण कार्यवाही को अग्रसर करने के लिए अनिवार्य है। उसने यह दलील दी कि ऐसा अर्थान्वयन मामले के महत्त्व, अत्यावश्यकता और उद्देश्य की भावना का ह्रास होगा। इस मामले में सबसे पहले 7 दिसंबर, 1984 को अमरीकी फैडरल कोर्ट में मामले फाइल किए गए थे, इसलिए पीड़ितों के हित के लिए बहुत ही कम राशि के लिए समझौता किया गया होता। विद्वान महान्यायवादी ने इस बात पर जोर दिया कि अधिनियम की विधिमान्यता का निर्णय करते समय इस पृष्ठभूमि को और किए गए समझौते में वाद के संचालन की उपयुक्तता को ध्यान में रखना होगा।

69. उसने यह निवेदन किया कि इस बात को ध्यान में रखा जाना है कि यदि याचियों की दलीलों को ग्रहण किया जाता है, तो सैद्धांतिक रूप से अधिकारों को कायम रखा जा सकता है, किंतु इससे न्याय के उद्देश्य का बलिदान देना होगा। इन परिस्थितियों में, इस बात पर जोर दिया गया था कि दावेदार एक व्यष्टि है और वही अपनी क्षति के बारे से ठीक से बताने वाला सर्वोत्तम व्यक्ति है। उसकी क्षति के बारे में जानकारी प्रतिकर के प्रयोजन के लिए सुसंगत है जिसका वितरण और संवितरण दूसरा प्रक्रम है। यह सुझाव देना भ्रामक है कि वादपत्र आवश्यक आंकड़ों पर आधारित नहीं था। उसने इस बात पर जोर दिया कि वादपत्र में उल्लिखित आंकड़े यद्यपि अनंतिम थे उनका उल्लेख परीक्षा या विश्लेषण के बिना नहीं किया गया था।

70. इसके अतिरिक्त, विद्वान् महान्यायवादी ने यह निवेदन किया कि जब भारत सरकार ने यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन (यू० सी० सी०) के विरुद्ध कार्यवाही की थी, तो उसे पीड़ितों का एक वर्ग के रूप में प्रतिनिधित्व करना था और सावधानीपूर्ण संवीक्षा के पश्चात् व्यष्टि के अधिकार को परिभाषित करना संभव नहीं था और न ही ऐसी महाविभीषिका वाले मामले में ऐसा करना आवश्यक या संभव था। उक्त परिनिर्धारण न्यायनिर्णयन के लिए प्रतिस्थापना था क्योंकि इसमें हानि-पूर्ति और अनुतोष की प्रक्रिया अंतर्वलित थी। अधिनियम के प्रयोजन के लिए अनुतोष और हानि-पूर्ति असंगत नहीं कही जा सकती। यह कथन किया गया था कि भारत सरकार का अभिकथित दायित्व या अभिकथित संयुक्त अपकृत्यकर्ता के विरुद्ध प्राख्यापित कोई दावा अपने नागरिकों के हितों की संरक्षा करने के लिए भारत सरकार पर बोझ के रूप में अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए। सरकार के विरुद्ध, यूनियन कारबाइड कारपोरेशन द्वारा कोई प्रतिदावा या नागरिकों द्वारा कोई दावा उन पीड़ितों के सामूहिक हित में राज्य की कार्यवाही को दूषित नहीं कर सकता जो कि स्वयं नागरिक हैं। विद्वान् महान्यायवादी ने यह दलील दी कि किसी भी औद्योगिक क्रियाकलाप को सामान्यतया अनुज्ञप्ति दी जानी होती है। किसी क्रियाकलाप का मात्र विनियमन विधिक रूप से उसके साथ ऐसे क्रियाकलाप के अनुक्रम में हुई दुर्घटना की स्थिति में क्रियाकलाप द्वारा कारित क्षति के लिए दायित्व की उपधारणा के साथ नहीं है। चाहे, जो भी हो, विद्वान् महान्यायवादी ने यह निवेदन किया कि भारत सरकार को सुस्थिर विधि के अनुसार प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्ति प्राप्त है। यदि ऐसा न होता, तो प्रभुत्वसंपन्न को सभी विनियामक कृत्यों का त्याग करना होगा जिसमें आटोमोबाइल ड्राइवरों को अनुज्ञप्ति प्रदान करना सम्मिलित है। इसलिए, हमें इस प्रश्न की परीक्षा करनी है कि क्या इस उपधारणा पर भी कि भोपाल में यूनियन कारबाइड द्वारा लगाए गए उद्योग को अनुज्ञप्ति की अनुज्ञा देने में भारत सरकार की ओर से कोई उपेक्षा की गई थी

या कारखाने का विकास करने के लिए अनुज्ञा देने में कोई उपेक्षा बरती गई थी, भारत संघ की ऐसी अनुज्ञा या उसका आचरण उस नुकसान के लिए उत्तरदायी था जो कि भोपाल गैस रिसाव के परिणामस्वरूप हुआ था। इसके अतिरिक्त, इस बात की भी परीक्षा की जानी है कि क्या ऐसा आचरण सरकार के प्रभुत्वसंपन्न कृत्यों के निर्वहन में था और उसके परिणामस्वरूप ऐसी नुकसानी, यदि कोई है, संयुक्त अपकृत्यकर्ता के रूप में सरकार के विरुद्ध कार्यवाही किए जाने के दायित्वाधीन है या नहीं। उन परिस्थितियों में, भारत संघ की ओर से आगे यह प्रकथन किया गया था कि यद्यपि नुकसानी की संगणना ठीक-ठीक रीति में करना वाद का तर्कसंगत परिणाम है, फिर भी इस मामले को तय करने के प्रयोजन के लिए इसे पुरोभाव्य शर्त के रूप में नहीं कहा जा सकता। विद्वान् महान्यायवादी ने इस बात पर जोर दिया कि पीड़ितों को जवाबदारी न्यायालय के माध्यम से होनी चाहिए। उसने इस बात पर जोर दिया कि यह अभिकथन कि पीड़ितों ने किए गए परिनिर्धारण के लिए बड़ी संख्या में अपनी सम्मति नहीं दी थी। सामूहिक अपकृत्य में समझौता करने के मामले में कोई सुसंगति नहीं है। इस बात पर प्रकाश डाला गया था कि यह संभव है कि जिन्हें तत्काल अनुतोष (राहत) की आवश्यकता नहीं है या जिन्हें मामले के विवाद्यकों की जानकारी नहीं है, वे अपनी सम्मति देने से इनकार कर सकते हैं और अनुतोष की प्राप्ति को संकटापन्न कर सकते हैं। इस प्रकार, व्यष्टिक व्यक्तिपरक राय पर आधारित सम्मति कदापि किसी तात्कालिक मामले में समग्र परिनिर्धारण के प्रस्ताव के साथ मेल नहीं खा सकती। इसके अतिरिक्त, विद्वान् महान्यायवादी ने इस बात पर जोर दिया कि यदि वास्तव में सम्मति पर कानून की आज्ञापक अपेक्षा के रूप में जोर दिया जाना था, तो इससे पीड़ितों की राय ठीक रूप से प्रतिबिंबित नहीं होगी क्योंकि राय भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। कोई भी व्यष्टि एकमुश्त आंकड़ों के रूप में मांग करने की स्थिति में नहीं होगा और न ही सार्वभौम कसौटी के आधार पर अपनी प्रत्याशाओं को इंगित करने योग्य होगा। ऐसी परिस्थितियों में, सम्मति का मूल्य बहुत ही कम हो जाता है। यह कहा गया था कि यदि सम्मति पर जोर दिया ही जाना था, तो यह उस जानकारी और प्रत्युत्तर का समर्थन किए बिना उनके मस्तिष्क की अभिव्यक्ति नहीं होनी चाहिए। सम्मति को सार्थक बनाने के लिए, यह आवश्यक है कि इसमें सामूहिक कल्याण और व्यष्टि की भलाई के लिए जानकारी और समझ पर आधारित अर्थपूर्ण रीति में अधिकार के प्रकथन का प्रयोग किया गया हो। ऐसे आयामों वाले मामले में सम्मति पर जोर दिए जाने से ऐसी जांच की प्रक्रिया निकलेगी जो किसी प्रस्ताव पर प्रभावशील विचार करने को असंभव बना सकती है। सम्मति प्रदान करने के प्रयोजनार्थ यह भी आवश्यक होगा कि प्रत्येक व्यष्टि न केवल स्वयं निरपेक्ष रूप से अपनी नुकसानी का निर्धारण करे और ऋजु प्रत्याशा के क्षेत्र में अपनी राय पेश करे, बल्कि उसे अन्य व्यक्तियों की बाबत भी ऐसा करना होगा। विद्वान् महान्यायवादी ने इस बारे में अनेक कारण प्रस्तुत किए कि अब या कभी भी सबकी सहमति प्राप्त करना कठिन या असंभव क्यों है।

71. याचियों द्वारा की गई आलोचना के उत्तर में, भारत संघ की ओर से यह बात स्पष्ट की गई थी कि यूनियन कारबाइड इंडिया लिमिटेड (यू० सी० आई० एल०) को वाद में पक्षकार नहीं बनाया गया था क्योंकि यह बहुराष्ट्रीय उद्यम के दायित्व के अभिवाक् के और वादपत्र में दिए गए मामले के सिद्धांत के पूर्णतः विरुद्ध होगा। इस बात पर प्रकाश डाला गया कि अधिनियम के अधीन प्रतिनिधित्व करने की शक्ति अनन्य थी, भारत सरकार के लिए समझौता करने की शक्ति पीड़ितों के निर्देश से विहीन है, फिर भी इस शक्ति का मार्गदर्शन

पीड़ितों के कल्याण के एकमात्र उद्देश्य से किया गया है। न्यायिक प्रक्रिया का विद्यमान होना और अंततः उसकी सावधानीपूर्ण स्वीकृति पीड़ितों का सर्वोत्तम रक्षोपाय है। विद्वान् महान्यायवादी ने इस बात पर जोर दिया कि परिनिर्धारण के पश्चात् पक्षकारों की सुनवाई करने से भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। उसने यह दलील दी कि इस बात का कदापि पक्का अभिनिश्चय नहीं किया जा सकता कि क्या पीड़ित व्यक्तियों या उनके समूहों ने इस बात के लिए प्राधिकार दिया है जिसे उनकी ओर से अभिकथित किया जा रहा था और यह कि पीड़ित व्यक्ति इस प्रकृति के प्रस्ताव का निर्णय करने में असमर्थ होंगे। अमरीका की तरह सर्व सम्मति की रीति को विकसित करने की वहां कोई आवश्यकता नहीं है जहां प्रत्येक परिनिर्धारण उन समाश्रित फीस वकीलों (कन्टिन्जेंन्सी फीस ऑफ लायर्स) द्वारा किया जाता है जो कि अपने अंश को अभिप्राप्त करने के इच्छुक होते हैं स्वतः उन पीड़ित व्यक्तियों के प्रतिकूल हो जाते हैं और इसलिए इसके बारे में न्यायालय का समाधान होना चाहिए। यह दलील दी गई कि यहां न्यायालय ने ऐसे आंकड़े निकाले और पक्षकारों को तारीख 14 फरवरी, 1989 के अपने आदेश के आधार पर एक परिनिर्धारण का फाइल करने का निदेश दिया और इस बात पर भी जोर दिया कि मध्यक्षेपियों की भी सुनवाई की गई थी। इस बात पर भी जोर दिया गया कि पीड़ित व्यक्तियों को अलग-अलग नोटिस देना एक कठिन बात होती और उनके प्रत्युत्तरों का विश्लेषण करने में बहुत अधिक समय लग जाता।

72. विद्वान् महान्यायवादी ने इस बात पर जोर दिया कि पीड़ितों के दावों के लिए न तो केंद्रीय सरकार और न ही मध्य प्रदेश राज्य सरकार जिम्मेदार है। उसने यह प्राख्यान किया कि वर्तमान मामले के तथ्यों पर संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं के रूप में उनकी ओर से न तो कोई दायित्व है और न हो ही सकता है। समुदाय के कल्याण के लिए, सरकार को अनेक सामाजिक आर्थिक क्रियाकलाप के लिए अनुज्ञा देनी होगी। इन क्रियाकलाप में से अनेक क्रियाकलाप को संसद् या राज्य विधानमंडलों द्वारा बनाए गए कानूनों में अंतर्विष्ट अनुज्ञापन-उपबंधों द्वारा विनियमित किया जाना है। अनुज्ञप्त प्राधिकार के आचरण से किसी व्यक्ति को उसके प्राणों या (दैहिक) स्वतंत्रता को कोई क्षति कारित होती है, तो नुकसानियों के लिए उक्त अनुज्ञापन प्राधिकारी या सरकार को जिम्मेदार बनाया जा सके, न्यायशास्त्रीय सिद्धांत के अनुसरण में नहीं होगा। सरकार की ओर से इस बात पर जोर दिया गया कि यदि ऐसी परिस्थितियों में सरकारी खजाने को जिम्मेदार बनाया जाता है तो इससे बहुत बड़ी लोक क्षति होगी और उसके परिणामस्वरूप खजाना खाली हो जाएगा। यह बात कल्याणकारी राज्य को लोगों के विकास के लिए कार्य करने से आतंकित करेगा और उन प्रभुत्वसंपन्न सरकारी क्रियाकलाप को प्रभावित करेगा जो समुदाय के लिए हितकारी हैं और जिन्हें पर्याप्त रूप से अनुज्ञप्त नहीं किया गया है तो उससे लोक क्षति होगी। सरकार की ओर से इस बात पर जोर दिया गया कि चाहे जो भी हो ऐसे अनुज्ञापन प्राधिकारी इस बात को स्वीकार किए बिना इस उपधारणा पर भी संयुक्त अपकृत्यकर्ता के रूप में जिम्मेदार समझे जा सकते हैं। किस रीति/रूप में अभिकथित अनुज्ञापन प्राधिकारी की अभिकथित कार्यवाही या उसके लोप के पूरे विवरणों और ब्यौरों के साथ उपेक्षा के पर्याप्त अभिकथनों पर ही और उनके पीड़ित व्यक्तियों को कारित क्षति के साथ सीधे संबंध के आधार पर ही जिम्मेदार समझे जा सकते हैं। इस बात को तर्कपूर्ण और पर्याप्त साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना है। तथ्यों के किसी आधार के बिना किसी अटकलबाजी या अनुमान के आधार पर पीड़ित व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने

के लिए सरकार के अधिकार को चुनौती नहीं दी जा सकती। यह प्राख्यान किया गया था कि यदि सरकार को संयुक्त अपकृत्यकर्ता के रूप में जिम्मेदार समझा जाता है, तो वह इस समय विद्यमान विधि के आधार पर प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्ति का दावा करने के लिए हकदार होगी।

73. **कस्तूरीलाल रलिया राम जैन** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय की ओर निर्देश दिया गया था जिसमें कुछ पुलिस अधिकारियों के अपनी कानूनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, सोने के अभिग्रहण करने में उनके आचरण को राज्य के प्रभुत्वसंपन्न कृत्यों के निर्वहन में किया गया समझा गया था और ऐसे क्रियाकलापों के लिए प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्ति दी गई थी। संविधान के अधीन भारत सरकार के दायित्व के लिए अनुच्छेद 300 को निर्दिष्ट किया जाना है जो कि हमारा ध्यान भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 की धारा 15 और 18 तथा गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट, 1935 की धारा 176(1) की ओर आकर्षित करता है। **राजस्थान राज्य** बनाम **मुसम्मात विद्यावती और एक अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय की मताभिव्यक्तियों के प्रति भी निर्देश किया गया था।

74. हमने यूनियन कारबाइड कारपोरेशन के अंश धारण का उल्लेख किया है। यह परिस्थिति कि वित्तीय संस्थाएं यूनियन कारबाइड इंडिया लिमिटेड में अंश धारण किए हुए थीं भारत सरकार को प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक के रूप में और अधिनियम के अधीन अपने कानूनी कर्तव्यों का निर्बहन करने से निरर्हित नहीं करेगी। वाद केवल यूनियन कारबाइड कारपोरेशन के विरुद्ध ही फाइल किया गया था, न कि यूनियन कारबाइड इंडिया लिमिटेड के विरुद्ध। भारत सरकार द्वारा किए गए दावे के आधार पर यूनियन कारबाइड इंडिया लिमिटेड आवश्यक पक्षकार नहीं थे। यह केवल, अन्य बातों के साथ-साथ, यूनियन कारबाइड कारपोरेशन के दायित्व के अनेक विधिक आधारों और उद्यमों के दायित्व के आधार पर बहुराष्ट्रीय कंपनी के प्रति ही दावा किया गया था। यदि भारत सरकार ने यूनियन कारबाइड इंडिया लिमिटेड के विरुद्ध वाद संस्थित किया होता, तो कतिपय विस्तार तक यह **एस० सी० मेहता**[3] वाले पूर्वोक्त मामले के इस न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन के विरुद्ध अपने मामले को कमजोर करता। विद्वान् महान्यायवादी के अनुसार प्रस्तुत मामले में भारत सरकार मेहता वाले मामले में उपदर्शित यूनियन कारबाइड कारपोरेशन को भिन्न न्यायशास्त्रीय सिद्धांत के आधार पर पूर्ण और आत्यंतिक जिम्मेदार बनाने के लिए अग्रसर हुई थी।

75. विद्वान् महान्यायवादी ने यह निवेदन किया कि तर्क के लिए यह मानते हुए भी इस बात को स्वीकार किए बिना कि वर्तमान स्थिति में पीड़ित व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए कोई आक्षेप नहीं किया जा सकता, प्रस्तुत स्थिति को आवश्यकता का सिद्धांत लागू होता है। यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन पर अमरीका के न्यायालयों के समक्ष वाद

---

1 [1965] 1 एस० सी० आर० 375.

2 [1962] 2 सप्ली० एस० सी० आर० 989.

3 [1986] 2 उम० नि० प० 765=1987 (1) एस० सी० आर० 819.

1989(12) eILR(PAT) SC 1

लाया जाना था। यह दुर्घटना एक राष्ट्रीय विपदा के रूप में समझी गई थी और भारत सरकार का अपने प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक की अधिकारिता या ऐसे ही उसके समान सिद्धांतों के आधार पर अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने में अपने नागरिकों की देखभाल का अधिकार और वस्तुतः कर्तव्य था। ऐसे प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक के अधिकार या उसके समान सिद्धांतों के आधार पर अपने आपको कानूनी रूप से सशक्त करने के पश्चात् और उनकी मान्यता के लिए उसने अमेरिका के न्यायालयों में समावेदन किया। पीड़ितों के प्रतिनिधित्व के अधिकार को मान्यता देनी थी। भारत सरकार को अमरीका के न्यायालयों के समक्ष पीड़ित व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए अनुज्ञा दी गई थी। प्राइवेट वादियों का भी उनके अर्टनियों द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया था। न्यायाधीश कीनन के समक्ष मामले में कार्यवाही किए जाने से पूर्व, तीन अर्टनियों की एक समिति बनाई गई थी। इस बात पर प्रकाश डाला गया था कि न्यायाधीश कीनन के आदेश ने भारत सरकार को पीड़ित व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने की अनुज्ञा दी थी। यदि भारत संघ और पीड़ित व्यक्तियों के बीच कोई दूरस्थ विरोध था तो आवश्यकता का सिद्धांत नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के संभव अतिक्रमण पर अध्यारोही होगा कि कोई भी व्यक्ति अपने मामले में निर्णायक नहीं होना चाहिए। हाल्सबरीज़ लॉज आफ इंग्लैण्ड, जिल्द 1, चौथा संस्करण, पृष्ठ 89, पैरा 73 के प्रति भी निर्देश दिया जा सकता है जिसमें यह संकेत किया गया था कि यदि एक ही अधिकरण के सभी सदस्य किसी मामले का अवधारण करने के लिए सक्षम हैं, तो वे निरर्हता के अध्यधीन हैं; उन्हें आवश्यकता संबंधी सामान्य विधि (कॉमन लॉ) सिद्धांत के प्रवर्तन के कारण मामले की सुनवाई करने के लिए प्राधिकृत किया जा सकता है। डी स्मिथ कृत जूडिशियल रिव्यू आफ एडमिनिस्ट्रेटिव ऐक्शन (चौथा संस्करण) पृष्ठ 276-277 के प्रति भी निर्देश किया जा सकता है। **जी०ए० फलिक्क**—नेचुरल जस्टिस (1875, पृष्ठ 138-141) भी देखें। **जे० महापात्रा एंड कंपनी और एक अन्य बनाम उड़ीसा राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की मताभिव्यक्तियों की ओर भी निर्देश किया जा सकता है। जिसमें रिपोर्ट के पृष्ठ 112 पर न्यायालय ने आवश्यकता के सिद्धांत को मान्यता दी थी। यह निवेदन किया गया था कि ऐसी भी स्थितियां थीं, जिनमें आवश्यकता के सिद्धांत के आधार पर हितबद्ध व्यक्ति को अपने अधिकारों के न्यायनिर्णयन के लिए निरर्हित नहीं समझा गया था। प्रस्तुत मामला ऐसा है जिसमें भारत सरकार ने केवल पक्षकार के रूप में पीड़ित व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व किया था और पीड़ित व्यक्तियों और यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन के बीच न्यायनिर्णयन नहीं किया था। केवल न्यायालय पीड़ित व्यक्तियों के अधिकारों का न्यायनिर्णयन करेगा। भारत सरकार द्वारा पीड़ित व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व दोषपूर्ण नहीं समझा जा सकता और नैसर्गिक न्यास के किसी सिद्धांत का अतिक्रमण करने के लिए कोई गुंजाइश न तो है, न कभी थी। मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों में, हमारी यह राय है कि भारत सरकार द्वारा दी गई यह दलील ठीक है। इस कारण नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के अतिक्रमण के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी।

76. इस बात पर भी जोर दिया गया था कि वस्तुतः प्रतिनिधित्व का सिद्धांत प्रस्तुत मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों को भी लागू होगा। **गोकाराजू रंगाराजू और अन्य**

---

1 [1985] 1 उम० नि० प० 186=(1984) 4 एस० सी० सी० 103.

बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया गया था जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वस्तुत: प्रतिनिधित्व के सिद्धांत में यह परिकल्पित है कि लोक-हित या अन्य व्यक्तियों के हित में, न कि स्वयं अपने हित में धारित शासकीय प्राधिकार की परिधि के अंतर्गत किए गए कार्य सामान्यतया उसी प्रकार से आबद्धकर समझे जाते हैं जैसे कि विधित: अधिकारियों के कर्तव्य। यह सिद्धांत शुद्ध अंत:करण साधार नीति और व्यावहारिक समीचीनता पर आधारित है। इसका उद्देश्य लोक और प्राइवेट रिष्टि का निवारण करना और लोक हित और प्राइवेट हित का संरक्षण करना है। यह अनन्त भ्रम और अनावश्यक अव्यवस्था से बचाना है। **पुष्पा देवी एम० जातिया** बनाम **एम० एल० वधावन**[2] और **मैसर्स व्यापार सहायक (प्राइवेट) लिमिटेड और अन्य** बनाम **विश्वनाथ और अन्य**[3] वाले मामलों में इस न्यायालय की मताभिव्यक्तियों के प्रति भी निर्देश किया गया था। उपर्युक्त सिद्धांत के अलावा, परिस्थितियों में सद्भाविक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत का आश्रय लिया जाना ईप्सित था। इस संबंध में **धर्मपाल सिंह** बनाम **निदेशक, लघु उद्योग सेवाएं और अन्य**[4], **एन० के० मो० सुलेमान** बनाम **एन० सी० मोहम्मद इस्माइल और अन्य**[5] और **मलकार्जुन बिन शिग्रामप्पा पासरे** बनाम **नरहरि बिन शिवाप्पा और एक अन्य**[6] वाले मामलों के प्रति भी निर्देश किया गया था।

77. इसके अतिरिक्त, यह निवेदन किया गया था कि दांडिक कार्यवाहियों का प्रारंभ किया जाना और बाद में उन्हें अभिखंडित किया जाना, जहां तक अधिनियम का संबंध है, अधिनियम को अधिकारातीत नहीं बना देगा। विद्वान् महान्यायवादी ने यह निवेदन किया कि अधिनियम भारत सरकार को पीड़ित व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए अधिनियम के अधीन नुकसानी के लिए उनके दावों को लागू करने के लिए ही प्राधिकृत करता था। इसलिए, सरकार दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने से कोई संबंध नहीं रखती थी और यह पीड़ितों के लिए यूनियन कारबाइड कारपोरेशन या यूनियन कारबाइड इंडिया लिमिटेड के दंडात्मक दायित्व की बाबत पीड़ित व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व नहीं कर रही थी। इसके अतिरिक्त, उसने यह निवेदन किया कि दांडिक कार्यवाहियों का अभिखंडित किया जाना न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 136 और 142 के अधीन अपनी पूर्ण शक्तियों का प्रयोग करते हुए किया गया था। इस संबंध में **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **पूसु और एक अन्य**[7], **के० एम० नानावती** बनाम **मुंबई राज्य**[8] वाले मामलों के प्रति भी निर्देश किया गया था। विद्वान् महान्यायवादी के अनुसार, उच्चतम न्यायालय में परिनिर्धारण और अनुतोष का सुझाव देने के लिए भी शक्ति है जैसा कि **राम गोपाल** बनाम **श्रीमती सारूबाई और अन्य**[9], **इंडिया**

---

1 [1982] 1 उम० नि० प० 1197=(1981) 3 एस० सी० आर० 474.

2 [1987] 4 उम० नि० प० 565=(1987) 3 एस० सी० सी० 367.

3 [1987] 4 उम० नि० प० 774=(1987) 3 एस० सी० सी० 698.

4 [1980] उम० नि० प०=ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 1888.

5 [1966] 1 एस० सी० आर० 937.

6 27 आई० ए० 216.

7 [1977] 2 उम० नि० प० 293=[1976] 3 एस० सी० आर० 1005.

8 [1961] 1 एस० सी० आर० 497.

9 (1981) 4 एस० सी० सी० 505.

माइका एंड माइकेनाइट इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[1] वाले मामलों में किया गया था।

78. विद्वान् महान्यायवादी ने इस बात पर जोर दिया कि उच्चतम न्यायालय कानून के बाहर भी कार्यवाही करने के लिए और उसके अतिरिक्त यथा अनुध्यात अनुतोष देने के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए सशक्त है। यह न्यायालय एक साम्यापूर्ण न्यायालय भी है। देखें—**रोशनलाल कुथियाला और अन्य** बनाम **आर० बी० मोहन सिंह ओबराय**[2] वाला मामला। याचियों की सुनवाई के दौरान, उसने इस न्यायालय को यह जानकारी दी कि भारत सरकार और मध्य प्रदेश राज्य सरकार ने भोपाल गैस रिसाव विभीषिका में अपने किसी प्रकार के दायित्व, भागतः या पूर्णतः, से इनकार किया है और इस स्थिति का विद्यमान विधि द्वारा समर्थन होता है। तथापि, यह निवेदन किया गया था कि भारत सरकार के विरुद्ध उसके अभिकथित अपकृत्य दायित्व के विरुद्ध कोई दावा अधिनियम की परिधि से बाहर था और ऐसा दावा, यदि कोई हों, इस न्यायालय के तारीख 14 और 15 फरवरी, 1989 के आदेश के कारण समाप्त नहीं हो जाते हैं।

79. इसके अतिरिक्त विद्वान् महान्यायवादी ने यह कथन किया कि 470 मिलियन अमरीकी डालर की राशि जो समझौता-ज्ञापन के परिणामस्वरूप प्राप्त की गई थी और इस न्यायालय के उक्त आदेशों का अर्थ अनन्य रूप से उन पीड़ित व्यक्तियों के फायदे के लिए होगा, जिन्होंने भोपाल गैस रिसाव विभीषिका के कारण कष्ट झेले थे। भारत सरकार भोपाल के पीड़ित व्यक्तियों के अनुतोष और पुनर्वास के लिए स्वप्रेरणा से किए गए व्यय की कोई प्रतिपूर्ति नहीं चाहेगी और न ही सरकार या उसका कोई परिकरण इस विभीषिका से उत्पन्न होने वाले अपने किसी दावे को करेगा। इसके अतिरिक्त, उसने इस न्यायालय को यह आश्वासन दिया कि प्रतिकर का वितरण चूंकि या तो अधिनियम के अधीन या इस न्यायालय के आदेशों के अधीन किया जा रहा है, इसलिए अधिनियम की धारा 6(3) के अधीन तत्काल एक ऐसी अधिसूचना जारी की जाएगी जो कि आयुक्त या किसी अन्य अधिकारी को अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए और उन सभी या उनमें से किसी एक शक्ति का प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत करती हो जो कि केंद्रीय सरकार पीड़ितों को आयुक्त या उपायुक्त के समक्ष किसी अतिरिक्त उस साक्ष्य, जिस पर विचार किया जा सकेगा, को रखने के लिए समर्थ बनाने के लिए धारा 5 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकती है।

80. इस न्यायालय की संविधान-न्यायपीठ की अध्यक्षता करते हुए, विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति ने तारीख 14-15 फरवरी, 1989 को पारित आदेशों के लिए कारण बताते हुए तारीख 4 मई, 1989 को एक आदेश की घोषणा की थी। चूंकि तारीख 14-15 फरवरी, 1989 के परिनिर्धारण के औचित्य और उसकी विधिमान्यता के बारे में याचियों की ओर से बहस की सुनवाई के दौरान, इस न्यायालय के समक्ष अत्यधिक आलोचना की गई थी, यद्यपि वह प्रत्यक्ष रूप से हमारे समक्ष विवाद्यक नहीं था, इसलिए संक्षेप में उसका निर्देश करना आवश्यक है जो कि संविधान-न्यायपीठ ने तारीख 4 मई, 1989 के उक्त आदेश में कहा था। परिनिर्धारण

---

[1] [1982] उम० नि० प०=(1982) 3 एस० सी० सी० 182.

[2] [1975] 1 उम० नि० प० 1321=[1975] 2 एस० सी० आर० 491.

के लिए मुख्य तथ्यों का निर्देश करने के पश्चात्, न्यायालय ने निम्नलिखित प्रश्नों पर संक्षिप्त कारण बताए हैं- —

(क) समग्र परिनिर्धारण के लिए न्यायालय ने 470 मिलियन अमरीकी डालर की राशि किस प्रकार निकाली थी ? (ख) न्यायालय ने 470 मिलियन अमरीकी डालर की राशि को न्यायोचित, साम्यापूर्ण और युक्तियुक्त क्यों समझा था ? (ग) न्यायालय ने दूरगामी महत्व के कतिपय महत्वपूर्ण विधिक प्रश्नों पर अपना निर्णय क्यों नहीं सुनाया था जो कि अपीलों में अखंड दायित्व के सिद्धांतों के तीसरी दुनिया के विकासशील देशों में अंतर्निहित खतरनाक प्रौद्योगिकी का प्रचालन करने वाली आर्थिक रूप से बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बारे में था। ये प्रश्न तीसरी दुनिया के लोकतंत्रों के लिए बहुत ही सामयिक सुसंगति के कहे गए थे। इस न्यायालय ने इस बात को मान्यता दी कि उस परिनिर्धारण के भाग से संबंधित पुनर्विलोकन का एक अन्य पहलू था जिसने दांडिक कार्यवाहियों को पर्यवसित कर दिया था। पुनर्विलोकन-याचिकाओं में मुद्दों पर उद्‌भूत प्रश्नों के बारे में न्यायालय का मत यह था कि प्रथमदृष्टया उन पर विचार किया जाना चाहिए था और इसलिए उन्होंने ऐसी कोई बात करने से अपने आपको विलग रखा जो कि पक्ष या विपक्ष में इस विवाद्यक के पूर्व-निर्णय किए जाने की प्रवृत्ति को प्रभावी कर सके।

81. न्यायालय ने यह अभिलिखित किया कि परिनिर्धारण के निष्कर्ष को प्रेरित करने वाला आधारभूत विचार तत्काल अनुतोष के लिए वैवश्यक आवश्यकता थी और न्यायालय ने सम्यक् रूप से इस बात पर विचार करते हुए विलंब की विधि तय की कि न्यायिक और मानवीय वैवश्यक कर्त्तव्य पीड़ित व्यक्तियों के लिए तत्काल अनुतोष प्राप्त करने के लिए था। न्यायालय ने यह कथन किया कि ऐसा करने में उसने किसी निषिद्ध आधार पर विचार नहीं किया था। न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि वस्तुतः इस दिशा में प्रयास पहले ही न्यायाधीश कीनन और भोपाल के विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा किए गए थे। अपीलों में बहस के शुरू में ही न्यायालय ने विद्वान् काउंसेल को एक न्यायोचित और ऋजु परिनिर्धारण करने का सुझाव दिया था। और जब काउंसेल सुनवाई के पुनः सूचीबद्ध करने के लिए मिला, तो उसने उस सुझाव को दोहराया था। न्यायालय ने यह अभिलिखित किया था कि विद्वान् काउंसेल का उत्तर परिनिर्धारण करने के प्रयास के बारे में सकारात्मक था, किंतु उन्होंने ऐसी बातचीत के अपने गत अनुभव को ध्यान में रखते हुए सफलता के बारे में कुछ चिंता और संदेह अभिव्यक्त किया क्योंकि उन्होंने यह कथन किया कि परिनिर्धारण के प्रयासों की अज्ञात और अनुत्तरदायी आलोचना हुई थी।

82. विद्वान् महान्यायवादी ने परिनिर्धारण के बारे में पूर्ववर्ती अवसरों पर की गई प्रस्थापनाओं और प्रति-प्रस्थापनाओं की विशिष्टियों और उसके इतिवृत्त को उपलब्ध कराया था। उन परिस्थितियों में, न्यायालय ने ऐसी राशि की मात्रा के आधार के रूप में प्रथम-दृष्टया सामग्री की परीक्षा की थी जो कि सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखकर की गई थी जिसमें भारत में न्यायिक प्रक्रिया में अंतर्निहित विलंब की संभावना भी सम्मिलित थी और इसलिए निष्पादन के प्रयोजनार्थ अमरीका में डिक्री के देशीकरण के मामले में यह निदेश दिया गया था कि 470 मिलियन अमरीकी डालर, जिसे दावेदारों में वास्तविक रूप से वितरण

1989(12) eILR(PAT) SC 1

किए जाने को लंबित रखते हुए उसमें एक युक्तियुक्त अवधि तक ब्याज सहित तत्काल संदाय करने की बात थी, जो ब्याज कुल मिलाकर लगभग 500 मिलियन अमरीकी डालर हो जाएगा और इसका रुपए में समकक्ष मूल्य लगभग 750 करोड़ रुपए होगा जिसका कि विद्वान् महान्यायवादी ने सुझाव दिया था और जिसे परिनिर्धारण का आधार बनाया गया था और दोनों पक्षकारों ने इस निदेश को स्वीकार किया था।

83. न्यायालय ने इस बात को दोहराया कि परिनिर्धारण के प्रस्तावों पर इस आधार-वाक्य पर विचार किया गया था कि सरकार को पीड़ित व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने और उनकी ओर से कार्रवाई करने के लिए अनन्य कानूनी प्राधिकार थे और किसी भी काउंसेल ने इस बारे में कोई शर्त नहीं रखी थी। उक्त आदेश इस आधार-वाक्य पर भी किया गया था कि अधिनियम एक विधिमान्य विधि थी। न्यायालय ने यह घोषित किया कि ऐसी स्थिति में, अधिनियम की विधिमान्यता को चुनौती देने वाली कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान, शून्य घोषित किया जाता है, तो तारीख 14 फरवरी, 1989 के आदेश के उस विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए उसकी परीक्षा की जाने की आवश्यकता होगी। न्यायालय ने यह बात भी दोहराई कि यदि ऐसी सामग्री उसके समक्ष रखी गई थी जिससे ऐसा युक्तियुक्त अनुमान संभव था कि यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन ने किसी पूर्ववर्ती समय पर 470 मिलियन अमरीकी डालर के तुरंत समूचे संदाय से अधिक किसी राशि का संदाय करने की प्रस्थापना की थी, तो यह न्यायालय सीधे ही स्वप्रेरणा से संबद्ध पक्षकारों को इस बारे में यह दर्शाने की अपेक्षा करेगा कि तारीख 14 फरवरी, 1989 का आदेश क्यों न अपास्त कर दिया जाए और पक्षकारों को उनकी मूल स्थिति में पुनः रख दिया जाए। न्यायालय ने इस बात को दोहराया कि उक्त राशि की युक्तियुक्तता न केवल स्वतंत्र मात्रा पर आधारित थी बल्कि प्रस्तुत प्रयोजन के लिए युक्तियुक्तता का विचार विवाद के परिनिर्धारण के संदर्भ में एक व्यापक और सामान्य प्राकलन आवश्यक था और यह न्यायनिर्णयन द्वारा एक ठीक निर्धारण के आधार पर नहीं था। न्यायालय ने यह कथन किया कि परिनिर्धारण कितना ठीक या युक्तियुक्त था यह प्रश्न ऐसा था जो कि विलंब और अनिश्चितताओं से बचाएगा और शीघ्र संदाय के लिए आश्वस्त करेगा। वस्तुओं की प्रकृति के ऐसे प्राकलन में न्यायनिर्णयन की यथार्थता नहीं होगी। न्यायालय ने प्रस्थापनाओं व प्रतिस्थापनाओं, कारणों और संबद्ध व्यक्तियों की संख्या और पहले किए गए दावों को अभिलिखित किया। न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि उच्च न्यायालय के आदेश और वादियों की ओर से स्वीकार की गई स्थिति से प्राणांतक मामलों की संख्या का एक युक्तियुक्त प्रथमदृष्टया प्राक्कलन और गंभीर रूप से व्यक्तिगत क्षति वाले मामले को अलग-अलग करने की संभावना थी। न्यायालय ने अंतरिम प्रतिकर की मात्रा का निर्धारण करने के कार्य की परीक्षा करने के लिए उच्च न्यायालय के मूल्यांकन और उसकी प्रक्रिया के बारे में निर्देश किया था। न्यायालय इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पुनः दोहराए गए **एम० सी० मेहता**[1] वाले मामले के प्रति निर्देश किया कि यदि वाद का विचारण किया जाए तो वादी-भारत संघ मृत्यु और व्यक्तिगत क्षतियों से संबद्ध दावों की बाबत निर्णय निम्नलिखित रीति में अभिप्राप्त करेगा—

---

[1] 1987 (1) एस० सी० आर० 819.

(क) मृत्यु के प्रत्येक मामले में दो लाख रुपए;

(ख) पूर्णतः स्थायी रूप से अपंगता के प्रत्येक मामले में दो लाख रुपए;

(ग) स्थायी रूप से आंशिक अक्षमता के प्रत्येक मामले में एक लाख रुपए, और

(घ) अस्थायी आंशिक अक्षमता के प्रत्येक मामले में पचास हजार रुपए।

84. इन राशियों में से आधी राशि उच्च न्यायालय द्वारा अंतरिम प्रतिकर के रूप में अधिनिर्णीत की गई थी।

85. इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि प्राणांतक मामलों और गंभीर वैयक्तिक क्षतियों के मामलों की संख्या की बाबत उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए आंकड़ों के बारे में उसके समक्ष किसी ने कोई विवाद नहीं किया है। उसने यह निष्कर्ष निकाला कि प्राणांतक मामलों की कुल संख्या लगभग 3,000 थी और घोर और गंभीर वैयक्तिक क्षतियों की संख्या 30,000 थी जिसका अभिलेखों से सत्यापन किया जा सकता है। इस न्यायालय ने इस बात को भी ध्यान में रखा कि घटना के लगभग आठ मास पश्चात् मामलों की शिनाख्त करने के प्रयोजन के लिए एक सर्वेक्षण किया गया था। ये आंकड़े दस हजार से कम संख्या को उपदर्शित करते हैं। उन परिस्थितियों में, लगभग और तैयार प्राकलन के रूप में इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के प्रथमदृष्टया निष्कर्षों और उन 3,000 प्राणांतक मामलों की संख्या के प्राकलन को विचार में लिये जाने में प्रतिकर एक लाख से तीन लाख रुपए के बीच हो सकता था। यह राशि सत्तर करोड़ रुपये होगी जो कि उस राशि से लगभग तीन गुना है जो कि मोटरयान दुर्घटना दावों में ऐसे ही समान मामलों में दी जाती है।

86. न्यायालय ने मृत्यु के प्रभाव को मान्यता दी और इस बात को दोहराया कि अमूल्य मानव जीवन की हानि अपूरणीय है। विधि उस व्यक्ति की संपदा के प्रतिकर के लिए ही आशा कर सकती है जिसके प्राण एक अन्य व्यक्ति के सदोषपूर्ण कार्य द्वारा समाप्त हुए थे और इसके लिए विधि में प्रतिकर की व्यवस्था अर्थात् कतिपय सुमान्यता प्राप्त सिद्धांतों पर संगणित धन संबंधी प्रतिकर द्वारा ऐसा किया जा सकता है। इस न्यायालय ने इस बात पर विचार किया कि 'संपदा की हानि' जो कि संपदा की हकदार है और वारिसों और आश्रितों को दिए जाने वाले पूंजीगत विद्यमान मूल्य के आधार पर प्राक्कलित 'आश्रितता की हानि' प्राणांतक दुर्घटना वाले मामलों में प्रतिकर की संगणना में मुख्य घटक थे, किंतु उच्च न्यायालय ने एक उच्चतर आधार अपनाया। न्यायालय ने वैयक्तिक क्षति वाले मामलों को भी ध्यान में रखा और यह कथन किया कि ये प्रभाजन मात्र व्यापक ऐसे विचार थे जो सामान्यतया परिनिर्धारण के समग्र आधार की युक्तियुक्तता के विचार के लिए मार्गदर्शक थे। न्यायालय ने इस बात को दोहराया कि यह कार्य दावेदारों के बीच या तो अलग-अलग या प्रवर्गवार प्रतिकर की मात्रा का पूर्व अवधारण नहीं था और यह कि दावेदारों को संदेय प्रतिकर की वास्तविक मात्रा का अवधारण प्राधिकारियों द्वारा अधिनियम के अधीन किया जाना है। ये व्यापक निर्धारण थे और उस आधार पर न्यायालय ने निर्धारण किया था। न्यायालय का यह विश्वास था कि यह उस समय उपलब्ध सामग्री पर आधारित न्यायोचित और युक्तियुक्त

1989(12) eILR(PAT) SC 1

निर्धारण था। जहां तक अन्य प्रश्न का संबंध है, अर्थात् सामान्यतया तीसरी दुनिया और विशेषत: भारत के लिए अत्यधिक समकालीन सुसंगति के महत्त्वपूर्ण न्यायशास्त्रीय सिद्धांत, जो इस मामले में बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा आर्थिक अभिलाभ के लिए ऐसी खतरनाक प्रौद्योगिकी के कार्यों से विकसित समस्याओं को छूते हैं इस न्यायालय ने इस बात को मान्यता दी कि यह बहुत बड़ी समस्याएं थीं और इस बात को दोहराया कि आर्थिक अभिलाभ के ऐसे अत्यंत खतरनाक कार्यों से राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा करने के लिए एक राष्ट्रीय नीति का विकास करने की आवश्यकता थी और साथ ही विधिवेत्ताओं, प्रौद्योगिकीविदों और अन्य आर्थिक विशेषज्ञों, पर्यावरण विज्ञान, भविष्य विज्ञान, समाजशास्त्र और लोक स्वास्थ्य को सामान्य चिंता के क्षेत्रों की पहचान करनी चाहिए और ऐसी समुचित कसौटियों का विकास करने में मदद करनी चाहिए जिन्हें न्यायिक मान्यता और विधिक मंजूरी प्राप्त हो सके। न्यायालय ने इस बात को दोहराया कि इन समस्याओं में से कुछ को **एम० सी० मेहता**[1] वाले उपरोक्त मामले में निर्देशित किया गया था। किंतु प्रस्तुत मामले में, कष्ट झेलने वाले हजारों पीड़ितों को तत्काल अनुतोष की आवश्यकता की विवशताओं के लिए उस समय तक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती थी जब तक इन प्रश्नों, यद्यपि ये महत्त्वपूर्ण थे, को न्यायिक कार्यवाहियों के सम्यक् अनुक्रम में सुलझाया न जाए और हजारों व्यक्तियों के भयंकर कष्टों ने इस न्यायालय को तत्काल अनुतोष की दिशा में प्रेरित किया जो कि, इस न्यायालय ने सोचा, विधि के अनिश्चित वचनों के अध्यधीन नहीं होना चाहिए जबकि राशि की ऋजुता का निर्धारण कतिपय कारणों पर आधारित था और वादियों द्वारा भी धारणाओं के बारे में कोई विवाद नहीं किया गया था।

87. इस मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों की पृष्ठभूमि को और दी गई दलीलों को ध्यान में रखते हुए अधिनियम की सांविधानिक विधिमान्यता के प्रश्न पर विचार करने से पूर्व, रिट याचिका सं० 164/86 और 268/89 की बाबत संविधान-न्यायपीठ द्वारा, जिसमें पांच विद्वान् न्यायाधीश थे और जिसकी अध्यक्षता भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा की गई थी, पारित तारीख 3 मार्च, 1989 के आदेश के प्रति निर्देश करना आवश्यक है। उक्त आदेश में यह उल्लेख किया गया है कि क्या इन मामलों को 'एकमात्र इस प्रश्न का कि क्या भोपाल गैस विभीषिका (दावा कार्यवाही) अधिनियम, 1985 अधिकारातीत है' विनिश्चय करने के लिए संविधान-न्यायपीठ के समक्ष 8 मार्च, 1989 को सूचीबद्ध किया जाएगा ? यह उक्त संविधान-न्यायपीठ द्वारा पारित न्यायिक आदेश है। यह कोई प्रशासनिक आदेश नहीं है। इसलिए, ये मामले इस न्यायालय के समक्ष हैं। अत: प्रश्न यह उद्भूत होता है कि ये मामले क्या हैं ? पूर्वोक्त आदेश में विनिर्दिष्ट रूप से यह कथन किया गया है कि ये मामले इस न्यायपीठ के समक्ष 'इस एकमात्र प्रश्न' का विनिश्चय करने के लिए रखे गए थे कि क्या अधिनियम अधिकारातीत है ? अत:, ये मामले इन रिट याचिकाओं के निपटारे के लिए इस न्यायपीठ के समक्ष नहीं हैं। यदि अवधारण के परिणामस्वरूप पक्ष या विपक्ष में इसे साधार या दोषपूर्ण मान लिया जाता है और यह भी कि किंचित अनुतोष देना आवश्यक हो जाता है, तो अधिनियम या अधिनियम के किसी भाग को सांविधानिक रूप से विधिमान्य या अविधिमान्य घोषित करने के सिवाय, जैसा भी विनिश्चय किया जाए, उसे नहीं दिया जा सकता या उसकी बाबत आदेश पारित नहीं किया जा सकता।

[1] [1986] 2 उम० नि० प० 765=1987 (1) एस० सी० आर० 819.

88. 89 की रिट याचिका सं० 268 में तारीख 14/15 फरवरी, 1989 के आदेश को अपास्त करने की पारिणामिक प्रार्थना है। किन्तु तारीख 3 मार्च, 1989 वाला उपर्युक्त आदेश चूंकि केवल यह इंगित करता है कि ये मामले 'एकमात्र इस प्रश्न' की बाबत इस न्यायपीठ के समक्ष रखे गए हैं कि क्या भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम शक्ति बाह्य है या नहीं, अतः उस आदेश के आधार पर इस प्रश्न पर विचार करना संभव नहीं है कि क्या वह परिनिर्धारण विधिमान्य है अथवा, इन आवेदनों में जैसी प्रार्थना की गई है, अपास्त किए जाने योग्य है।

89. अधिनियम के उपबंधों और पक्षकारों की विरोधी दलीलों को इसके पूर्व उपवर्णित किया गया है। किंतु इस बात को दोहराना आवश्यक है कि वह अधिनियम किसी भी रूप में यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन, यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड के अथवा यहां तक कि भारत सरकार अथवा मध्य प्रदेश सरकार के दायित्व को सीमित नहीं करता यदि वे संयुक्ततः और पृथक्तः दायित्वाधीन हैं। यह बात अधिनियम के अर्थान्वयन और स्पष्ट भाषा से सिद्ध हो जाती है। संदर्भ और पृष्ठभूमि इस बात के प्रतिकूल उपदर्शित नहीं करते। पीड़ितों के काउंसेल ने भी यही अभिवचन किया है कि ऐसी ही स्थिति है। विद्वान् महान्यायवादी ने उस स्थिति को स्वीकार किया है। किंतु सरकार के दायित्व पर विवाद किया गया है। यह अधिनियम भी संबद्ध पक्षकारों में से किसी के आपराधिक दायित्व के किसी प्रश्न के बारे में नहीं है। अधिनियम के सुसंगत उपबंधों को समुचित रूप से पढ़ने पर यह बात प्रकट है कि भोपाल गैस रिसाव विभीषिका से उद्भूत होने वाला आपराधिक दायित्व इस अधिनियम की विषय-वस्तु नहीं है और यह नहीं कहा जा सकता कि इस अधिनियम ने उसे किसी भी रूप में प्रभावित, न्यून अथवा उपांतरित किया है। पीड़ितों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यही दलील दी है। विद्वान् महान्यायवादी ने भी यही दलील दी है। हमारी राय में अधिनियम के सुसंगत उपबंधों का यह सही विश्लेषण और परिणाम है। अतः कुछ पीड़ितों की ओर से दी गई यह दलील गलत है कि अधिनियम अविधिमान्य है क्योंकि इसने अपचारी के विरुद्ध, चाहे वह यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन या यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड हो अथवा संयुक्ततः और पृथक्तः भारत सरकार, मध्य प्रदेश सरकार या श्री अर्जुन सिंह, भूतपूर्व मुख्य मंत्री मध्य प्रदेश हो, दांडिक कार्यवाही करने के पीड़ितों के अधिकार को न्यून किया है अथवा छीन लिया है। किसी आपराधिक दायित्व की बाबत किसी अधिकार को कम नहीं किया गया है। आपराधिक दायित्व अधिनियम की विषय-वस्तु नहीं है। अधिनियम के निबंधनों द्वारा और विद्वान् महान्यायवादी ने जो स्वीकृति की है, यदि उसे ऐसा कहा जा सकता है तो क्या आपराधिक दायित्व के बारे में अभियोजन न करना अधिनियम के अधीन दावों के निपटारे के लिए प्रतिफल अथवा विधिमान्य प्रतिफल हो सकता है? पीड़ितों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने इस प्रश्न का सुझाव दिया है और स्पष्ट कहा है। दूसरी ओर, विद्वान् महान्यायवादी की ओर से यह कहा गया है कि तारीख 14-15 फरवरी, 1989 वाले आदेश का वह भाग जो आपराधिक अभियोजन के बारे में है अथवा इस न्यायालय का आदेश इस न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों के आधार पर संविधान के अनुच्छेद 136 और 142 के अधीन है। विद्वान् महान्यायवादी ने यह कहा कि ये इस न्यायालय की सर्वांगीण शक्तियों के प्रयोग में किए गए हैं। ये ऐसी बातें नहीं हैं जिनसे पक्षकार समझौता करने के लिए उत्प्रेरित हुए। किंतु अधिनियम की सांविधानिक विधिमान्यता का अवधारण करने के प्रयोजनार्थ यह

कहना आवश्यक है कि किसी अपचारी अथवा पक्षकारों का आपराधिक दायित्व इस अधिनियम की विषय-वस्तु नहीं है और अधिनियम ऐसे आपराधिक दायित्व से उद्भूत होने वाले किन्हीं दावों अथवा अधिकारों के बारे में नहीं है। अधिनियम की विधिमान्यता के प्रश्न पर इस पहलू को दोहराना आवश्यक है।

90. हमने अधिनियम की भाषा और प्रयोजन को उपवर्णित किया है और 'दावा' अभिव्यक्ति के अर्थ पर भी ध्यान दिया है और हमारा यह निष्कर्ष है कि अधिनियम का आशय विभीषिका से संबद्ध या उद्भूत होने वाले दावों को सुनिश्चित करना था जिससे कि इन दावों के बारे में शीघ्रता से, प्रभावी रूप से और साम्यापूर्ण रूप से और दावेदारों के सर्वोत्तम हित में कार्यवाही की जा सके। हमारी राय में धारा 2 के खंड (ख) के अंतर्गत पीड़ितों के ऐसे सभी दावे आते हैं जो प्रतिकर और नुकसानी के लिए अथवा जीवन हानि या वैयक्तिक क्षति या कारबार और पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं की हानि के लिए विभीषिका से उद्भूत हों या संबंधित हों। किन्तु दायित्व का विस्तार क्या है यह एक अलग प्रश्न है। यह अधिनियम तात्पर्यित रूप से उक्त गैस रिसाव विभीषिका से उद्भूत होने वाले दायित्व के विस्तार के बारे में नहीं है अथवा उससे संबंधित नहीं है। अतः यह दलील देना अनुचित और गलत होगा जैसा कि पीड़ितों की ओर से हाजिर होने वाले सुश्री जयसिंह, श्री गर्ग और अन्य विद्वान् काउंसेलों ने दलील दी है कि अधिनियम ने पक्षकारों के दायित्व—चाहे वह आपराधिक, दंडात्मक अथवा आत्यंतिक हो, को रिसाव की बाबत सीमित किया है। अधिनियम ने उस दायित्व को सिद्ध और प्रवर्तित करने के लिए पद्धति और प्रक्रिया का उपबंध किया है। इस न्यायालय के समक्ष इस प्रश्न पर काफी बहस की गई कि समझौते ने दायित्व को न्यून किया है और इस न्यायालय ने भोपाल गैस रिसाव विभीषिका जैसी विभीषिका से उद्भूत होने वाले दायित्व के विस्तार को अधिकथित करने का अवसर खो दिया है। इस बाबत दलीलें दी गईं कि हमें इस प्रकार की विभीषिकाओं से उद्भूत होने वाले दायित्व के विस्तार को स्पष्टतः अधिकथित करना चाहिए और इसके आगे हमें यह भी अभिनिर्धारित करना चाहिए कि अधिनियम ने ऐसे दायित्व को न्यून किया है और इस प्रकार पीड़ितों के अधिकारों को कम किया है और इस कारण वह अविधिमान्य है। जैसा कि इसमें इसके पूर्व उल्लेख किया गया है यह दलील भ्रांत धारणा पर आधारित है। जहां तक अपचारियों के दायित्व का संबंध है यह अधिनियम किसी भी प्रकार, अधिनियम के सुसंगत उपबंधों में उपदर्शित सीमा के सिवाय, पीड़ितों के अधिकारों के विस्तार को सीमित अथवा न्यून नहीं करता। पीड़ितों के चाहे कुछ भी अधिकार हों और गैस रिसाव विभीषिका से उद्भूत होने वाले चाहे जो भी दावे प्रतिकर, व्यक्तिगत क्षति, जीवन और संपत्ति की हानि, जो हो चुकी है और जो होनी संभाव्य है, अथवा व्यय जो उपगत होने हैं अथवा कोई अन्य हानि अधिनियम के अंतर्गत आते हैं और अधिनियम की धारा 3 के प्रवर्तन द्वारा केंद्रीय सरकार को पीड़ितों का उनके स्थान पर प्रतिनिधित्व करने का अनन्य अधिकार दिया गया है। अधिनियम द्वारा दायित्व के विस्तार को किसी भी रूप में न्यून नहीं किया गया है और इसलिए भोपाल गैस रिसाव विभीषिका जैसी किसी औद्योगिक विभीषिका के मामले में पीड़ितों को आत्यंतिक दायित्व के आधार पर नुकसानी अथवा प्रतिकर वसूल करने का अधिकार है तो उसे किसी भी रीति में न्यून अथवा कम नहीं किया गया है।

91. 120 वर्षों से भी पहले इंगलैंड में **राइलैंड्स** बनाम **फ्लैचर**[1] वाला मामला विनिश्चित किया गया था। उस मामले में क कतिपय खानों का पट्टेदार था। उससे संलग्न भूमि पर जिसके अधीन खानों (की खुदाई) का काम हो रहा था, एक मिल था जिसका स्वामी ख था। ख ने एक जलाशय का निर्माण करना चाहा और इसका निर्माण करने के लिए सक्षम व्यक्ति जैसे कि अभियंता और ठेकेदार नियुक्त किए। क ने कतिपय स्थल तक अपनी खानों का काम किया था जहां पर अप्रयुक्त खानों के कतिपय पुराने रास्ते थे। ये रास्ते ऊर्ध्व कूपकों से जुड़े हुए थे जो ऊपर की भूमि में पहुंचते थे और उस भूमि का भी वर्षों से प्रयोग नहीं हुआ था और प्रकटतः उसमें आसपास की जमीन की चिकनी मिट्टी और मिट्टी भर गई थी। अभियंता अथवा ठेकेदार ने इन कूपकों को बन्द करने के लिए कोई सावधानी नहीं बरती और जलाशय में पानी भरने के शीघ्र पश्चात् वहां से कुछ कूपकों में टूट पड़ा और वहां से पुराने रास्ते से होकर ख की खान में भर गया। इंगलैंड में हाउस आफ लार्ड्स ने यह अभिनिर्धारित किया कि जहां भूमि का स्वामी बिना जाने बूझे अथवा उपेक्षा के बिना अपनी भूमि का मामूली रीति में उपयोग करता है और तब उसके द्वारा उसके पड़ौसी को कोई रिष्टि का सामना करना पड़ता है तो वह नुकसानी के लिए दायित्वाधीन नहीं होगा। किंतु यदि वह अपनी भूमि पर ऐसी कोई वस्तु लाता है जो स्वाभाविक रूप से वहां नहीं आएगी और जो स्वयं में खतरनाक है और वह, यदि उसे समुचित नियंत्रण में नहीं रखा जाता है, रिष्टिकारक हो सकती है यद्यपि ऐसा करने में वह व्यक्तिगत जानकारी के अथवा उपेक्षा के बिना कार्य करता है तो भी वह उसके द्वारा होने वाली किसी रिष्टि के लिए नुकसानी के दायित्वाधीन होगा। तथ्यों की पृष्ठ भूमि में यह अभिनिर्धारित किया गया कि क क्षति की बाबत ख से नुकसानी वसूल करने का हकदार है। **एम० सी० मेहता**[2] वाले पूर्वोक्त मामले में इस न्यायालय ने दायित्व के प्रश्न पर विचार किया जिसमें इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने पूर्ण दायित्व के नियम पर विचार किया था। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि **राइलैंड्स** बनाम **फ्लैचर**[1] वाले पूर्वोक्त मामले का नियम यह सिद्धांत अधिकथित करता है कि यदि कोई व्यक्ति अपनी भूमि पर ऐसी कोई वस्तु लाता है, एकत्रित करता है और रखता है जिससे हानि पहुंचने की संभावना है और ऐसी चीज वहां से निकल जाती है और किसी अन्य को नुकसान पहुंचाती है तो वह पहुंचे हुए ऐसे नुकसान के लिए प्रतिकर के दायित्वाधीन है। यह नियम केवल भूमि के अस्वाभाविक प्रयोग पर लागू होता है और उन चीजों को लागू नहीं होता जो भूमि पर स्वाभाविक रूप से हों अथवा जहां ऐसी कोई चीज दैवी कृत्य के कारण निकल गई है अथवा किसी अजनबी के कार्य के कारण अथवा क्षतिग्रस्त व्यक्ति के व्यतिक्रम के कारण अथवा जो चीज वहां से निकली है वह वहां पर क्षतिग्रस्त व्यक्ति की सम्मति से मौजूद है अथवा कतिपय मामलों में यदि उसके लिए कानूनी प्राधिकार है। उस मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि **राइलैंड्स** बनाम **फ्लैचर**[1] वाले पूर्वोक्त मामले में वह नियम 19वीं शताब्दी में उस समय विकसित किया गया था जब विज्ञान और प्रौद्योगिकी का समस्त विकास उस समय नहीं हुआ था और उससे हमें सांविधानिक मानदंडों और वर्तमान अर्थव्यवस्था और सामाजिक ढांचे से संगत रूप में दायित्व का कोई मानक विकसित करने में कोई सहायता नहीं मिल

---

1 1868 जिल्द 3 एल० आर० ई० एंड आई० अपील केसेज 330.

2 [1986] 2 उम० नि० प० 765=[1987] 1 एस० सी० आर० 819.

सकती । अत्यधिक विकसित वैज्ञानिक जानकारी और प्रौद्योगिकी वाले आधुनिक औद्योगिक समाज में जहां अनिष्टकारी अथवा अन्तर्निहित रूप से खतरनाक उद्योगों का विकासशील प्रक्रिया के भाग स्वरूप चलाया जाना आवश्यक है, न्यायालयों को इस नियम से मात्र इस कारण अवरुद्ध नहीं महसूस करना चाहिए कि नई विधि अनिष्टकारी और खतरनाक क्रियाकलाप में रत उद्यम के मामले में पूर्ण और आत्यंतिक दायित्व के नियम को मान्यता नहीं देती है। इस न्यायालय ने इस बात पर ध्यान दिया कि विधि को द्रुतगति से परिवर्तनशील समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विकसित होना होगा और देश में होने वाले आर्थिक विकासों की जानकारी रखनी होगी । विधि स्थायी नहीं रह सकती । उसमें इस न्यायालय ने यह बात दोहराई कि यदि किसी अप्रायिक स्थिति से निपटने के लिए जो उद्भूत हुई है अथवा जिसकी भविष्य में, अनिष्टकारी अथवा अन्तर्निहित रूप से खतरनाक उद्योगों के कारण जो कि किसी औद्योगिक अर्थव्यवस्था की सहवर्ती हैं, उद्भूत होने की संभावना है, न्यायालय को दायित्व के ऐसे सिद्धांत को विकसित करने में मात्र इस कारण संकोच नहीं करना चाहिए कि इंगलैंड में ऐसा नहीं किया गया है। इस न्यायालय के अनुसार ऐसे उद्यम का, जो किसी अनिष्टकारी अथवा अन्तर्निहित रूप से खतरनाक उद्योग में लगा हुआ है जिससे कारखाने में काम करने वाले और आसपास के क्षेत्रों में निवास करने वाले व्यक्तियों के स्वास्थ्य और सुरक्षा को संभावित खतरा पैदा होता है, समुदाय के प्रति यह सुनिश्चित करने का आत्यंतिक और अप्रत्यायोज्य कर्तव्य है कि किसी को कोई नुकसान न पहुंचे। यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि उद्यम इस बाध्यता के अधीन है कि जिस अनिष्टकारी अथवा अन्तर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप में वह लगा हुआ है उसका संचालन सुरक्षा के सर्वोत्तम मानकों के अनुसार किया जाए और ऐसे किसी क्रियाकलाप की संक्रिया में किसी ऐसी दुर्घटना के परिणामस्वरूप किसी को कोई नुकसान पहुंचता है जिसके परिणामस्वरूप उदाहरणार्थ विषैली गैस के निकलने से, तो वह उद्यम दुर्घटना से प्रभावित होने वाले सभी व्यक्तियों को पूर्ण रूप से और आत्यंतिक रूप से प्रतिकर के दायित्वाधीन है जो कि ऐसे क्रियाकलाप को करने के लिए उसके सामाजिक जोखिम का भाग है, इस बात को महत्व दिए बिना चाहे इसे सतर्कतापूर्वक किया जाता है अथवा नहीं । ऐसा दायित्व ऐसे किन्हीं अपवादों के अधीन नहीं है जो **राइलैंड्स** बनाम **फ्लैचर**[1] वाले मामले में के नियम की तुलना में पूर्ण दायित्व के अपकृत्यात्मक सिद्धांत के संबंध में प्रवर्तित होता है । यदि उद्यम को लाभ के लिए अनिष्टकारी अथवा खतरनाक क्रियाकलाप करने के लिए अनुज्ञात किया जाता है तो विधि को यह उपधारणा करनी चाहिए कि ऐसी अनुज्ञा उस उद्यम को इस शर्त के अधीन दी गई है कि ऐसे क्रियाकलाप के कारण उद्भूत होने वाली किसी दुर्घटना का खर्च वह अपने बंधे खर्च की समुचित मद के रूप में वहन करेगा । एकमात्र उद्यम को ही अनिष्टों और खतरों का पता लगाने और उनके विरुद्ध रक्षा करने का और ऐसे संभावित खतरों के विरुद्ध चेतावनी देने का स्रोत होता है । इस न्यायालय ने यह बात दोहराई कि इस प्रकार के मामलों में प्रतिकर का मापदंड उद्यम की महत्ता और क्षमता से सहसंबद्ध होना चाहिए क्योंकि ऐसे प्रतिकर का भयोपरत करने वाला प्रभावी आशय होना चाहिए। उद्यम जितना ही बड़ा और समृद्ध होगा इसके द्वारा अनिष्टकारी अथवा अन्तर्निहित रूप से खतरनाक क्रियाकलाप किए जाते समय हुई दुर्घटना के

---

[1] 1868 जिल्द 3 एल० आर० ई० एंड आई० अपील केसेज 330.

कारण पहुंचे नुकसान के लिए इसके द्वारा संदेय प्रतिकर की रकम भी उतनी ही बड़ी होगी। संदेय वास्तविक नुकसानी का अवधारण किसी विशेष मामले के बहुत से तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

92. हमारे समक्ष यह दलील दी गई कि ऐसे उद्यम का जो इस देश में गैस से संबंधित खतरनाक संक्रियाएं करता है, आत्यंतिक और पूर्ण दायित्व है। इसके अतिरिक्त यह दलील दी गई कि अभिलेख पर इस बाबत साक्ष्य है कि रिसाव के खतरों और रिसाव की दशा में संरक्षण के विरुद्ध सुरक्षोपाय किए जाने के लिए पर्याप्त सावधानी और सतर्कता नहीं बरती गई। वास्तव में यूनियन कार्बाइड के अध्यक्ष श्री वारन एंडरसन और अन्य के विरुद्ध जो दांडिक अभियोजन शुरू किया गया था, जैसा कि इसके पूर्व उपदर्शित किया गया है, उसमें वाद में प्रतिवादियों के साथ उन्हें इन मामलों में अपचारिता से और भोपाल में विषैली गैस संक्रियाओं के संचालन में आपराधिक उपेक्षा से आरोपित किया गया था। चूंकि प्रस्तुत न्याय-निर्णयन में इस न्यायालय का सरोकार दायित्व के वास्तविक विस्तार का अवधारण नहीं है अतः हम इस आधार पर अग्रसर होंगे कि **एम० सी० मेहता**[1] वाले (पूर्वोक्त) मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि वह विनिश्चय है जिसके आधार पर इस मामले में पीड़ितों को नुकसानी संदेय होगी। किंतु इसके पश्चात् यह व्यावहारिक प्रश्न उद्भूत होता है कि संदेय वास्तविक नुकसानी का विस्तार क्या है और नुकसानी की मात्रा की संगणना किस प्रकार की जायेगी। वास्तव में इस संबंध में इस न्यायालय द्वारा तारीख 3 मई, 1989 को पारित एक आदेश के प्रति निर्देश करना समुचित होगा जिसमें परिनिर्धारण की उपदर्शित राशि पर पहुंचने के कारण दिए गए थे। इस न्यायालय ने यह बात दोहराई कि वह मृत्यु की कतिपय प्रत्यक्ष अविवादग्रस्त संख्या के आधार पर अग्रसर हुआ था और सारवान् रूप से व्यक्तिगत क्षति के लिए प्रतिकर दिया था। इस न्यायालय ने इस तथ्य के प्रति निर्देश किया है कि उच्च न्यायालय **एम० सी० मेहता**[1] वाले पूर्वोक्त मामले में विशद् सिद्धांत के आधार पर अग्रसर हुआ था और उद्यम की क्षमता के आधार पर भी क्योंकि प्रतिकर का प्रभाव भयोपरत करने वाला होना चाहिए। उस आधार पर उच्च न्यायालय मृत्यु और पूर्ण स्थायी निशक्तता के हर एक मामले में दो लाख रुपये की, आंशिक स्थायी निशक्तता के हर एक मामले में एक लाख रुपये की और अस्थायी आंशिक निशक्तता के हर एक मामले में 50 हजार रुपये की नुकसानी प्राक्कलित करने के लिए अग्रसर हुआ था। इस संबंध में यह संविवाद कि यदि कार्यवाही शुरू कर दी गई थी तो क्या नुकसानी होगी, एक अलग विषय है। सामान्यतया सिविल दायित्वों का माप करने में विधि ने दंड की अपेक्षा प्रतिकर के सिद्धांत को अधिक महत्व दिया है। किंतु दांडिक प्रतितोष में क्षत व्यक्ति का प्रतिकर और भयोपरति के रूप में दंड दोनों ही अन्तर्वलित हैं। **रूक्स** बनाम **बर्नार्ड**[2] वाले मामले में इंग्लैंड में हाउस आफ लार्ड्स ने इन समस्याओं का विवेचन किया था जिनसे वर्धित और निवारक नुकसानी (इक्जेम्पलरी डैमेजेज) के बीच अन्तर उपदर्शित होता है। सामंड आन दि ला आफ टार्ट्स, 15वां संस्करण में पृ० 30 पर इस बात पर जोर दिया गया है कि नुकसानी का कृत्य दंड की अपेक्षा प्रतिकर है किंतु दंड की भी सदैव ही उपेक्षा नहीं की जा सकती। ऐसे

---

1 [1986] 2 उम० नि० प० 765=[1987] 1 एस० सी० आर० 819.

2 1964 ए० सी० 1129.

1989(12) eILR(PAT) SC 1

मत भी हैं जो इस आधार पर निवारक नुकसानी के विरुद्ध हैं कि इनसे सिद्धांततः अपकृत्य विधि के उद्देश्य अर्थात् प्रतिकर का अतिलंघन होता है न कि दंड का और इनकी प्रवृत्ति दांडिक विधि में जुर्माने के समतुल्य किसी चीज का अधिरोपण है किंतु दांडिक विधि में सुरक्षोपायों का उपबंध नहीं किया गया है। **रूक्स** बनाम **बर्नार्ड**[1] वाले पूर्वोक्त मामले में इंग्लैंड में हाउस आफ लार्ड्स ने मामलों में तीन वर्ग माने हैं जिन में निवारक नुकसानी दिए जाने को न्यायानुमत समझा गया है। यह कहा गया है कि अधिनिर्णय से न केवल पक्षकारों को प्रतिकर मिलना चाहिए बल्कि उससे दोषी व्यक्ति और अन्य व्यक्ति भविष्य में वैसा ही आचरण करने से भयोपरत होने चाहिए। यह कहा गया है कि निवारक अथवा भयोपरत करने वाली नुकसानी देने के प्रश्न ने प्रायः विधि के सिविल और दांडिक कृत्यों में भ्रांति पैदा की है। यद्यपि बहुत से व्यक्तियों द्वारा यह समझा जाता है कि सिविल दायित्व के क्षेत्र में यह दंड का विधिसम्मत अतिक्रमण है क्योंकि यह विधि के उल्लंघन पर अवरोध के रूप में प्रवर्तित होता है जो (विधि) अन्ततोगत्वा समाज के फायदे के लिए है। इस मामले में यदि कदाचित् कार्यवाही शुरू की जाती तो यह महसूस किया जा सकता था कि इस गैस विभीषिका का परिणाम नुकसानी की संकल्पना का सूत्रीकरण हो सकता है, जिसमें सिविल और दांडिक दोनों ही दायित्व मिले हुए हों। किंतु ऐसी सिविल कार्यवाही की बाबत जिसे एकीकृत किया जा सके और न्यायिक प्रक्रिया द्वारा प्रवर्तित किया जा सके, दंडात्मक नुकसानी की वास्तविक संकल्पना विकसित करने में गंभीर कठिनाइयां हैं। इससे अभिवचन, सबूत और पता लगाने की गंभीर समस्याएं पैदा होतीं और यह कार्य रोचक और चुनौती भरा होने पर भी यह बहुत अनिश्चित है कि ऐसी संकल्पना पर आधारित विनिश्चय अन्तर्राष्ट्रीय मानकों द्वारा स्वीकृत विधि की 'सम्यक् प्रक्रिया' के अनुसार विनिश्चय हुआ होता। इस प्रयत्न में कठिनाइयां थीं। किंतु यथा विद्यमान उपबंधों के अनुसार ये बातें अधिनियम को सांविधानिक रूप से अविधिमान्य नहीं बनातीं। ये बातें परिनिर्धारण की विधिमान्यता के बारे में हैं। इस प्रकार अधिनियम नुकसानी अथवा दायित्व को, वह चाहे जैसी भी हो, न्यून अथवा कम नहीं करता। अतः अधिनियम को इस आधार पर चुनौती दिया जाना कि पीड़ितों के अधिकारों को कम किया गया है अथवा उनसे वंचित किया गया है जो कि इस स्थिति में अयुक्तियुक्त है अन्यायोचित है और उसे कायम नहीं रखा जा सकता।

93. श्री गर्ग ने हमारे समक्ष मानव अधिकारों के क्षितिज के विस्तार की संयाचना की है। उन्होंने यह दलील दी कि विकास के प्रयोजनार्थ खतरनाक गैसों के काम में लगे बहुराष्ट्रीय निगमों का आचरण विशेष रूप से तीसरी दुनिया के देशों में वर्तमान परिस्थितियों में उभरते हुए राष्ट्रों की ओर से गहन संवीक्षा और सतर्कता की अपेक्षा करता है। उन्होंने यह दलील दी कि जब तक कि न्यायालय व्यक्तियों के अधिकारों को परिरक्षित करने में और दांडिक और पूर्ण दायित्व प्रवर्तित करने में और ऐसे मानदंड स्थापित करने में सजग और सक्रिय नहीं होंगे जिससे सरकार अधिक सतर्क होने के लिए विवश हो जाए और भारत के लोगों की प्रभुत्वसंपन्न इच्छा को प्रवर्तित करे जिससे कि यह सुनिश्चित हो सके कि ऐसी दांडिक गतिविधियां जो विकासशील कार्य के बहाने देश की अर्थव्यवस्था और प्रगति को, लोगों के स्वास्थ्य और खुशी को खतरे में डालती हैं और

---

[1] 1964 अपील केसेज 1129.

स्वास्थ्य और विकास की भावी संभावनाओं को नुकसान पहुंचाती हैं पर्यावरण को प्रभावित और दूषित करती हैं उन्हें रोका जाना चाहिए और उनके अनुसार इन्हें केवल तभी रोका जा सकता है जब विधिक न्यायनिर्णयन के माध्यम से नुकसानी के रूप में दंडात्मक और भयोपरत करने वाला दंड दिया जाए। उन्होंने यह भी अभिवचन किया कि ऐसे मानदंड नियत किए जाएं जिनसे यह पता चले कि इस प्रकार की खतरनाक संक्रियाओं को सतर्कता और निगरानी के अधीन ही अनुज्ञात किया जाए। जबकि हम इन तर्कों के बल की प्रशंसा करते हैं और उनके इस अभिवाक् का समर्थन करते हैं कि मानदंडों और भयोपरति की आकांक्षा की जानी चाहिए तो भी उस पहलू को इस विनिश्चय में की वर्तमान समस्या से सह-सम्बद्ध करना कठिन है।

94. जैसा कि मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में उल्लेख किया गया है हम इस बात को दोहराते हैं कि व्यक्ति स्वतंत्र रूप में जन्म लेते हैं और व्यक्तियों की गरिमा को मान्यता दी जानी चाहिए और सक्षम अधिकरण द्वारा प्रभावी उपचार एक सर्वाधिक निश्चित पद्धति है। अतः यदि इस त्रासदी के परिणामस्वरूप इस देश के व्यक्तियों की ओर से ऐसी खतरनाक और जहरीली गैसों की संक्रियाओं को अनुज्ञात करने के लिए अधिक कड़ी सतर्कता सुनिश्चित करने के उपायों और आवश्यकता की बाबत अधिक सतर्क होने की नई चेतना और जागृति आती है तो कदाचित् भोपाल का दुःखद अनुभव व्यर्थ नहीं जायेगा।

95. किंतु पीड़ितों की ओर से सभी विद्वान् काउंसेलों ने जिस मुख्य प्रश्न की संयाचना की है वह यह था कि जहां तक कि अधिनियम लड़ने अथवा पीड़ितों के अधिकारों को सिद्ध करने के लिए उनके अधिकारों को छीनता है तो यह न्याय से वंचित करना है और यह दलील दी गई कि इस रूप में वंचित किया जाना मानव गरिमा और समता के अधिकार दोनों का ही इतना महान वंचन है कि इसे न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि यह प्राण के अधिकार को प्रभावित करता है जिससे विधि द्वारा स्थापित ऐसी प्रक्रिया के बिना वंचित नहीं किया जा सकता जो न्यायसंगत, निष्पक्ष और युक्तियुक्त हो।

96. इस पहलू पर श्री शांति भूषण ने हमारे समक्ष यह दलील दी है कि अधिनियम की धाराएं 3 और 4 जहां तक कि ये केंद्रीय सरकार को कार्यवाहियां संस्थित करने अथवा चलाने के लिए व्यादेश अथवा शक्ति देती हैं वह केंद्रीय सरकार के लिए केवल एक समर्थकारी उपबंध है और न कि पीड़ितों के लिए वंचित करने वाला अथवा अशक्त बनाने वाला उपबंध। इसके अतिरिक्त सुश्री जयसिंह ने यह दलील दी कि उपबंधों को सांविधानिक रूप से विधिमान्य बनाने के लिए हमें केंद्रीय सरकार की अनन्यता की संकल्पना को समाप्त कर देना चाहिए और केंद्रीय सरकार के साथ-साथ पीड़ितों को वाद लाने का अधिकार देना चाहिए। हम इन दलीलों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

97. हमारी राय में धारा 3 और 4 सुनिश्चित और स्पष्ट है। जब अभिव्यक्ति जिस बाबत यह कुछ कहती और जिस बाबत यह कुछ नहीं कहती स्पष्ट है तो वह अभिव्यक्ति निश्चायक होती है। इनसे केंद्रीय सरकार को उन व्यक्तियों के स्थान पर कार्य करने का अनन्य अधिकार मिल जाता है जो दावा करने के हकदार हैं अथवा जिन्होंने पहले ही दावा कर दिया है। 'अनन्य' अभिव्यक्ति स्पष्ट और महत्वपूर्ण है। इस अनन्यता

को, जैसा कि काउंसेल ने सुझाव दिया है, कम अथवा समाप्त, नहीं किया जा सकता है। उक्त अभिव्यक्ति को उसका पूर्ण अर्थ और विस्तार दिया जाना चाहिए। इसकी सभी प्रयोजनों के लिए 'दावा' अभिव्यक्ति के प्रयोग से संपुष्टि होती है। यदि पीड़ितों के साथ-साथ केंद्रीय सरकार को भोपाल गैस रिसाव विभीषिका से उद्भूत होने वाले दावों को संस्थित करने अथवा वसूली के लिए कार्यवाही करने अथवा उनके प्रवर्तन के लिए अधिकारों को द्वयात्मकता दी जाती है तो वह इतनी दुर्भर होगी कि यह शीघ्रता से, प्रभावी रूप से और साम्यापूर्ण रूप से नहीं हो सकती और रिसाव से उद्भूत होने वाले दावों को प्राप्त करने के लिए सर्वोत्तम अथवा अधिक हितकारी प्रक्रिया नहीं होगी। मामले को इस दृष्टि से देखते हुए और प्रयुक्त भाषा और प्राप्त किए जाने के लिए आशयित उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए हम पीड़ितों की ओर से इस पहलू पर दिए गए तर्कों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। इसके पश्चात् यह दलील दी गई कि अधिनियम द्वारा प्रकल्पित प्रक्रिया द्वारा पीड़ितों को अपने अधिकारों और संपत्ति से अपवंचित किया गया है और प्रतिकर के लिए लड़ने से वंचित किया गया है। यह प्राख्यान किया गया है कि पीड़ितों को न्याय की मांग करने से वंचित किया गया है। यह दलील दी गई कि यह एक महान वंचन है। यह दलील दी गई कि पीड़ितों के लिए अधिनियम के अधीन विकसित प्रक्रिया विचित्र है और इसमें पीड़ितों के लिए बहुत अहितकर स्थिति है। यह सुझाव दिया गया कि ऐसी विशेष अहितकर प्रक्रिया और बर्ताव असमान व्यवहार है। अतः यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि इससे संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है।

98. अधिनियम में पीड़ितों के अधिकारों की बाबत विशेष प्रक्रिया का उपबंध किया गया है और उस सीमा तक केंद्रीय सरकार ने पीड़ितों के अधिकार अपने हाथ में ले लिए हैं। यह एक विशेष अधिनियम है जिसमें भोपाल गैस रिसाव विभीषिका से पीड़ितों के एक विशेष वर्ग के लिए एक विशेष प्रक्रिया का उपबंध किया गया है, क्योंकि वे बहुराष्ट्रीय निगम अर्थात् यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन और एक बड़े भारतीय निगम के विरुद्ध खड़े थे और विदेशी समाश्रित वकीलों (कंटिजेंसी लायर्स) की मौजूदगी को ध्यान में रखते हुए, जिनके सामने पीड़ित उच्छिन्न थे, दावेदारों और पीड़ितों को विधिसम्मत रूप से ऐसा वर्ग कहा जा सकता है, जो स्वयं में भिन्न और सुभिन्न है तथा पर्याप्त रूप से पृथक् और इस रूप में अभिज्ञेय हैं कि वह अपने दावों के प्रभावी, शीघ्रतापूर्वक और सर्वोत्तम लाभदायक रूप में परिनिर्धारण (निपटारे) के लिए विशेष व्यवहार का हकदार है। निर्विवाद रूप से प्रभेद किया गया है। किंतु यह प्रभेद ऐसे सिद्धांत पर आधारित है, जिसका इस प्रभेद द्वारा प्राप्त किए जाने के लिए आशयित उद्देश्य से तर्कसंगत संबंध है। यह विभीषिका अपने स्वरूप में और औद्योगिक विभीषिकाओं के अभिलिखित इतिहास में विलक्षण थी क्योंकि वे एक सशक्त बहुराष्ट्रीय कंपनी के विरुद्ध थे और साथ ही विदेशी समाश्रित वकील भी इस दृश्य पर छाये हुए थे, अतः हमारी राय में, ऐसे प्रभेद और भिन्न बर्ताव के लिए पर्याप्त आधार हैं। गैस रिसाव विभीषिका के पीड़ितों को भिन्न मानने और उनके लिए ऐसी प्रक्रिया का उपबंध करने से जो न्यायसंगत, निष्पक्ष और युक्तियुक्त है और जो संविधान द्वार असमर्थित अथवा अप्राधिकृत नहीं है, अनुच्छेद 14 का भंग नहीं होता है। अतः हम अधिनियम की इस आलोचना को स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

99. पीड़ितों की ओर से जिस दूसरे पहलू की संयाचना की गई है यह है कि प्रकल्पित प्रक्रिया अयुक्तियुक्त है और इस प्रकार वह इस स्थिति में उचित नहीं है और उसे ऐसी प्रक्रिया नहीं माना जा सकता जो न्यायसंगत, निष्पक्ष और युक्तियुक्त हो। इस तर्क का निर्णय उस मानदंड द्वारा किया जाना है, जैसा कि इसके पूर्व उल्लेख किया गया है, जो इस न्यायालय ने **मद्रास राज्य** बनाम **वी० जी० रो**[1] वाले पूर्वोक्त मामले में प्रतिपादित किया था। अत: आक्षेपित विधान में अधिष्ठायी और प्रक्रियात्मक अधिकारों पर निर्बंधन या सीमाओं के बारे में निर्णय प्रश्नगत विशेष कानून के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए किया जायेगा। इस बारे में युक्तियुक्तता का कोई सामान्य नियम या मानक लागू नहीं किया जा सकता है। इस प्रश्न का निर्णय इस मामले में अभिकथित रूप से जिन अधिकारों का अतिलंघन किया गया है उनकी प्रकृति को, जिस बुराई का उपचार करने की ईप्सा की गई है उसके विस्तार और आत्ययिकता (एर्जेंसी) को, अननुपातिक अधिरोपण और तत्समय वर्तमान स्थितियों को ध्यान में रखते हुए करना होगा। इन सभी तथ्यों को विचार में रखना होगा। पृष्ठभूमि, कंगाल हो गए लोगों की दुर्दशा, पीड़ितों की आवश्यकता की आत्ययिकता, विदेशी समाश्रित वकीलों की मौजूदगी, सामूहिक कार्यवाही में संयुक्त राज्य अमेरिका में परिनिर्धारण की प्रक्रिया, विदेशी बहुराष्ट्रीय (कंपनियों) की शक्ति, क्षतियों और नुकसानी की प्रकृति और अधिनियम की धारा 4 द्वारा यथा अनुध्यात पीड़ितों के सम्मिलित होने के सीमित किंतु महत्वपूर्ण अधिकार पर विचार करने पर अधिनियम को अयुक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता।

100. इस संबंध में न्यायशास्त्र में 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' संकल्पना की परीक्षा करना उचित होगा। विद्वान् महान्यायवादी द्वारा यह दलील दी गई कि राज्य ने 'प्रभुत्व-संपन्न' संरक्षक के रूप में प्रभावी रूप से कार्यवाही करने का भार अपने ऊपर ले लिया है। हमने भारतीय विनिश्चयों की लम्बी शृंखला पर ध्यान दिया है जिनमें, यद्यपि भिन्न संदर्भ में, ऐसे जनसाधारण के संरक्षक के रूप में राज्य की संकल्पना का उपयोग किया है जो (जनसाधारण) अपने अधिकारों के लिए लड़ने अथवा उनका प्राख्यान करने के लिए बिल्कुल योग्य अथवा सक्षम नहीं हैं। यह दलील दी गई कि प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक का सिद्धांत पीड़ितों को लागू नहीं किया जा सकता है। इस संकल्पना को इस देश में और साथ ही अमरीका में किस प्रकार समझा गया है इस बात पर ध्यान दिया गया है। जैसा कि इसके पूर्व उल्लेख कर चुके हैं विधिक शब्दकोशों के प्रति भी निर्देश किया गया है। विद्वान् काउंसेल द्वारा पीड़ितों की ओर से यह प्राख्यान किया गया कि 'प्रभुत्व-संपन्न संरक्षक' संकल्पना का किसी देश की आन्तरिक अधिकारिता में वादों के प्रयोजनार्थ अवलंब नहीं लिया जा सकता। इसे केवल देश के बाहर विदेशी अधिकारिता के मामलों की बाबत ही लागू किया जा सकता है। इसके आगे यह दलील दी गई कि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' वाली संकल्पना को केवल उन व्यक्तियों को ही लागू किया जा सकता है जो निशक्त हों और यह उनकी बाबत लागू नहीं होगी जो अपने अधिकारों का प्राख्यान करने में समर्थ हैं। यह सही है कि पीड़ित अथवा उनके प्रतिनिधि स्वत: सक्षम हैं और इस प्रकार वे आयु, मानसिक क्षमता अथवा अन्य कारणवश अधिकारों के लिए वाद लाने अथवा उपचारों की पैरवी करने के लिए विधित: सक्षम हैं तो भी निर्बंधन के विशद और व्यापक भाव में वे अत्यधिक अहितकर

[1] [1952] 2 एस० सी० आर० 597.

स्थिति में हैं। इन पीड़ितों को उन बहुराष्ट्रीय कंपनियों अथवा सरकार का कोई जोड़ नहीं समझा जा सकता जिन परिस्थितियों में विभीषिका के पश्चात् पीड़ित अथवा उनके प्रतिनिधि शारीरिक रूप से, मानसिक रूप से, वित्तीय रूप से, आर्थिक रूप से हैं और इस कारण भी कि वह स्थिति जिसमें मुकदमा लड़ा जाएगा। ऐसी दयनीय स्थिति में पीड़ितों को विधिसम्मत रूप से निशक्त समझा जा सकता है। वे अपने हितों का प्रभावी रूप से और सोद्देश्यपूर्ण रूप से देखभाल करने की स्थिति में नहीं थे। इस पृष्ठभूमि में वे ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें राज्य के संरक्षण की आवश्यकता है और इस सामूहिक विभीषिका में अपराधकर्ताओं के विरुद्ध वे अपने अधिकारों का प्राख्यान करने, उन्हें सिद्ध करने और कायम रखने हेतु राज्य की प्रभुता के छत्र के अधीन आते हैं। उस परिप्रेक्ष्य में पीड़ितों को प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक के सिद्धांत को न्यायशास्त्रीय रूप से लागू करना संभव है। किंतु उससे अलग इस बात को ध्यान में रखना होगा कि इस मामले में राज्य स्वयं कानून के आधार पर कार्यवाही कर रहा है। पीड़ितों के लिए और उनकी ओर से अथवा उनके स्थान पर वाद लाने के लिए केंद्रीय सरकार के प्राधिकार के लिए स्वयं अधिनियम के अतिरिक्त किसी अन्य सिद्धांत, संकल्पना अथवा किसी न्यायशास्त्रीय सिद्धांत की आवश्यकता नहीं है। अधिनियम केंद्रीय सरकार को सशक्त करता है और उसे प्रतिस्थापित करता है। अधिनियम की धारा 3 में प्रवर्तन द्वारा यह पीड़ितों को हटा कर केंद्रीय सरकार को उनके स्थान में रखता है। पीड़ितों को वाद लाने के अधिकार से निर्निहित कर दिया गया है और ऐसे दावे और ऐसे अधिकार केंद्रीय सरकार में निहित कर दिए गए हैं। पीड़ितों को इसलिए निर्निहित किया गया है क्योंकि पीड़ित निशक्त हैं। इस मामले में पीड़ितों के विरोधियों की तुलना में उनकी (पीड़ितों की) निशक्तता सुस्पष्ट तथ्य है। यदि ऐसी स्थिति है तो हमारी यह राय है कि यहां तक कि यदि 'प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक' सिद्धांत को यथार्थ रूप से लागू किया जाना उचित नहीं है तो भी संकल्पना के रूप में यह मार्गदर्शक है। राज्य की शक्ति की अधिकारिता को प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक के पारंपरिक सिद्धांत के निर्बंधनों द्वारा सीमित नहीं किया जा सकता। न्यायशास्त्रीय रूप से इसे परिवर्तित परिस्थितियों के उपयुक्त रूप में उपयोग करने के लिए बदला अथवा अपनाया जा सकता है। पीड़ित जिस स्थिति में हैं राज्य को संरक्षक की भूमिका ग्रहण करनी थी जिससे कि पीड़ितों के अधिकारों की संरक्षा की जा सके ताकि वे राज्य की और भारतीय जनसाधारण की सामान्य प्रभुता के संरक्षण के अंतर्गत आ सकें। जैसा कि हमने ऊपर विचार किया है अधिनियम राज्य की प्रभुत्वसंपन्न शक्ति का एक प्रयोग है। यह विशेष रूप में उद्भूत हुई स्थिति में प्रभुता की अभिव्यक्ति का समुचित विकास है। हमें इसको इस रूप में मानना और स्वीकार करना चाहिए।

101. किंतु इस अधिकार का और राज्य की इस बाध्यता का एक अन्य पहलू है। श्री शांति भूषण ने यह दलील दी है और पीड़ितों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों ने भी इसे अंगीकार किया है कि संरक्षक के रूप में उस स्थिति में पीड़ितों की ओर से लड़ने के लिए राज्य द्वारा अधिकारिता और शक्ति ग्रहण किए जाने पर न्यायाधीश कीनन के शब्दों में राज्य पर यह एक आज्ञापक बाध्यता है कि वह 'आधारभूत मानव शिष्टता के नाते' पीड़ितों का तब तक भरणपोषण करे जब तक दावे सिद्ध नहीं हो जाते और विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों से वसूल नहीं हो जाते। अधिनियम और स्कीम तथा अधिनियम से प्रकट 'प्रमुख अस्पष्ट प्रतिपादना' यह है कि जब तक पीड़ितों के अधिकारों की पैरवी की जाती है

तब तक राज्य को पीड़ितों का संरक्षण और परिरक्षण करना चाहिए अन्यथा अधिनियम का उद्देश्य विफल हो जाएगा और इसका प्रयोजन निष्फल हो जाएगा। अतः पीड़ितों के सतत पोषण के लिए अंतरिम निर्वाह व्यय का निरंतर संदाय ऐसी बाध्यता है, जो राज्य के शक्ति ग्रहण करने से और पीड़ितों के अधिकारों के अस्थायी रूप से वंचित किए जाने तथा पीड़ितों के अपने अधिकारों के लिए लड़ने के अधिकारों से निर्निहित किए जाने से उद्भूत हुई है। यही एक मात्र ऐसा युक्तियुक्त निर्वचन है जो न्यायसंगत, निष्पक्ष और उचित है। वस्तुतः अधिनियम की भाषा से इस निर्वचन को समर्थन मिलता है। अधिनियम की धारा 9 केंद्रीय सरकार को इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए अधिसूचना द्वारा स्कीम बनाने की शक्ति देती है। धारा 9 की उपधारा (2) में उन बातों का उपबंध किया गया है जिसका स्कीम में उपबंध किया जा सकता है। अन्य बातों के साथ-साथ धारा 9 की उपधारा (2) के खंड (घ) में स्कीम के और अधिनियम के उपबंधों को लागू करने से संबंधित व्ययों की पूर्ति के लिए निधि के सृजन का उपबंध किया गया है और धारा 9 (2) के खंड (ङ) के अंतर्गत ऐसी रकमें आती हैं जो केंद्रीय सरकार 'संसद् द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा सम्यक् विनियोग किए जाने के पश्चात् खंड (घ) में निर्दिष्ट निधि में जमा कर सकेगी और कोई अन्य रकम, जो ऐसी निधि में जमा की जा सकेगी।' धारा 9 (2) का खंड (च) दावों की तुष्टि के लिए प्राप्त किसी रकम के संवितरण के रूप में (जिसके अंतर्गत प्रभाजन है) उपयोग के बारे में है। ये उपबंध सुझाव के रूप में हैं किंतु स्पष्ट नहीं हैं। धारा 10 के खंड (ख) में यह उपबंध है कि किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकारी द्वारा दावे के न्यायनिर्णयन या परिनिर्धारण के परिणामस्वरूप किसी दावे की तुष्टि में प्रतिकर या नुकसानी के रूप में प्राप्त रकम का स्कीम के अधीन संवितरण करने में ऐसी रकम में से वह राशि, यदि कोई हो, जो ऐसी रकम के संवितरण के पूर्व उस सरकार द्वारा दावेदार को संदत्त की गई है, काट ली जाएगी। विरचित स्कीम भी महत्वपूर्ण है। स्कीम के खंड 10 में दावों और राहत निधियों का उपबंध है और उसके अंतर्गत भोपाल गैस रिसाव विभीषिका से प्रभावित व्यक्तियों को राहत के रूप में जिसके अंतर्गत अंतरिम राहत भी है रकमों के संवितरण के लिए उपबंध किया गया है और खंड 11 (1) में यह अनुबंधित है कि उपायुक्त इस स्कीम के अधीन प्रत्येक दावेदार को रकमों का संवितरण बैंक या डाक बचत खाते में जमा करके करेगा जिसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि भोपाल अधिनियम में अन्तर्निहित विधायी नीति में उस समय तक अंतरिम राहत का संदाय अनुध्यात किया गया है जब तक केंद्रीय सरकार यूनियन कार्बाइड से प्रतिकर की पूरी रकम वसूल नहीं कर ले जिसमें से उन्हें पहले ही संदत्त अंतरिम राहत अंतिम संवितरण के लिए उनको संदेय रकम में से काटी जानी है। अधिनियम का अर्थान्वयन इस रूप में किया जाना चाहिए कि यह अंतरिम राहत का संदाय करने के लिए केंद्रीय सरकार पर बाध्यता सृष्ट करता है क्योंकि अधिनियम पीड़ितों को यूनियन कार्बाइड से प्रतिकर अभिप्राप्त करने के अपने सामान्य और अव्यवहित अधिकार से वंचित करता है। यदि अधिनियम न बनाया गया होता तो कदाचित् पीड़ित न केवल स्वयं यूनियन कार्बाइड पर वाद ला सकते थे बल्कि वे उनके साथ किसी प्रकार का सुलह अथवा समझौता भी कर सकते थे। अधिनियम के उपबंधों ने पीड़ितों को उस विधिक अधिकार और अवसर से वंचित किया है और वह वंचन सारवान् वंचन है क्योंकि अविलंब राहत पर बहुधा इन पीड़ितों का जीवित रहना निर्भर है। उस पृष्ठ भूमि में यह न्यायसंगत और उचित है कि इस वंचन को

केवल तभी न्यायोचित ठहराया जा सकता है यदि अधिनियम को इस रूप में पढ़ा जाए कि यह केंद्रीय सरकार को तब तक अंतरिम राहत अथवा निर्वाह-व्यय देने की बाध्यता के अधीन है जब तक पीड़ितों को देय पूरी रकम न्यायनिर्णयन अथवा परिनिर्धारण के पश्चात् यूनियन कार्बाइड से वसूल नहीं कर ली जाती और तब उसमें से पीड़ितों को संदत्त अंतरिम राहत की रकम नहीं काट ली जाती। जैसा कि विद्वान् महान्यायवादी ने यह दलील दी है, यह सच है कि स्वयं अधिनियम में वास्तव में ऐसी कोई अभिव्यक्ति प्रयुक्त नहीं की गई है जो अधिनियम के अधीन ऐसे किसी कर्त्तव्य या बाध्यता को अभिव्यक्त रूप से अनुध्यात अथवा उपदर्शित करती हो। किंतु ऐसी बाध्यता अन्तर्निहित है और वह अधिनियम की भावना को समुचित रूप से अर्थान्वयन करने का आधार होनी चाहिए। हमारी राय में, यदि हम सही सुविदित पद का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि यह अधिनियम इसी 'प्रमुख अस्पष्ट प्रतिपादना, के आधार पर अग्रसर होता है यद्यपि कि यह बात अभिव्यक्ततः कही नहीं गई है। इस वचन अथवा आधार पर ही राज्य दावे की कार्यवाही करने और उसकी पैरवी करने के अधिकार और बाध्यता को अपने ऊपर लेने में और स्वयं पीड़ितों को अपने आप न्यायालयों से समावेदन करने से वंचित करने में न्यायोचित है। यदि इसे केवल इस प्रकार पढ़ा जाए केवल तभी इसे सांविधानिक रूप से विधिमान्य ठहराया जा सकता है। यह बात ध्यान में रखनी होगी कि अधिनियम की भाषा इस अर्थान्वयन का विरोध नहीं करती बल्कि इसके विपरीत धारा 9, 10 और अधिनियम की स्कीम यह इंगित करती है कि अधिनियम में ऐसी बाध्यता है। यदि इसे इस प्रकार पढ़ा जाए केवल तभी इस निर्जीव अधिनियम में जान डाली जा सकती है जिससे कि इसे अर्थपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण बनाया जा सके। अतः अधिनियम को इसी रूप में पढ़ा जाना चाहिए। अधिनियम के इस निर्वचन के प्रति इस दृष्टिकोण को विधिसम्मत रूप से आन्वयिक अन्तर्बोध' (कन्सट्रक्टिव इन्ट्यूशन) कहा जा सकता है जो हमारी राय में संसद् के अधिनियमों को समझने का एक अनुज्ञेय ढंग है। 'अधिनियम की भावना' अथवा उस रिष्टि की मात्रा को खोजने के लिए जिसके प्रति यह उद्दिष्ट है (जो दोनों संसद् के आशय के पर्यायवाची है) से इस उदार निर्वचन की संभावना प्रशस्त हो जाती है 'जो कि न्यायिक शक्ति की ऐसी नाजुक और महत्त्वपूर्ण शाखा है जिसकी स्वीकृति खतरनाक है और जिससे इनकार करना विनाशक है।' यदि यह स्वतंत्रता दी जाती है तो यह एक बहुत ही विरला अवसर होगा जिसका दुरुपयोग नहीं किया जाना चाहिए और यह अधिनियम को अपनाने और उसे अर्थ, स्पष्ट और अस्पष्ट, देने के लिए न्यायाधीशों के लिए चुनौती है और इस प्रकार संसद् के आशय को कार्यान्वित करना और अधिनियम के उद्देश्य को पूरा करना है। आखिरकार वह अधिनियम उन पीड़ितों को राहत देने के लिए पारित किया गया था जिनके बारे में यह सोचा गया कि वे अपने अधिकारों को सिद्ध करने और स्वयं अपने लिए लड़ने में असमर्थ हैं। यह सामान्य जानकारी की बात है कि पीड़ित निर्धन थे और वे कंगाल हो गए हैं। वे मुकदमेबाजी की लंबी कठिन परीक्षा और डिक्री अथवा आदेशों के अंतिम निष्पादन तक किस प्रकार जीवित रह सकते थे जब तक कि उनके आहार और निर्वाह के लिए (भरणपोषण के लिए) उपबंध न किए जाएं विशेष रूप से जब उन्हें इन दावों के लिए स्वयं लड़ने के अधिकार से वंचित कर दिया गया है। अतः हम अधिनियम को तदनुसार समझते हैं।

102. इसके पश्चात् यह दलील दी गई कि केंद्रीय सरकार पीड़ितों का प्रतिनिधित्व करने के लिए सक्षम नहीं है। यह दलील बहुत से आधारों पर दी गई है। यह दलील दी गई कि केंद्रीय सरकार के यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड में 22% शेयर हैं और इस प्रकार केंद्रीय सरकार और पीड़ितों के बीच हितों का विरोध है और उस आधार पर पूर्वकथित, पश्चात्कथित का यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन और यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड के विरुद्ध उनका प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता है। इस पहलू पर बहुत-सी नजीरें उद्धृत की गई थीं। किंतु हमने इनके बारे में जो दृष्टिकोण अपनाया है उसको ध्यान में रखते हुए इन पर विचार करना आवश्यक नहीं है क्योंकि वस्तुतः केंद्रीय सरकार का यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड में कोई शेयर नहीं है। ये पृथक् कानूनी संगठन हैं अर्थात् भारतीय यूनिट ट्रस्ट और जीवन बीमा निगम जिनके यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड में 20 से 22% के शेयर हैं। जीवन बीमा निगम और भारतीय यूनिट ट्रस्ट में सरकार का कुछ अधिकार अथवा नियंत्रण है। अतः हमारी राय में यह नहीं कहा जा सकता कि भोपाल गैस रिसाव विभीषिका के दावों की बाबत केंद्रीयस रकार और पीड़ितों के बीच वास्तविक रूप से हित का कोई विरोध है। दूसरे, इस प्रकार की स्थिति में केंद्रीय सरकार एकमात्र ऐसा प्राधिकरण है जो पीड़ितों के मामले की पैरवी कर सकता है और उनका प्रभावी रूप से प्रतिनिधित्व कर सकता है। कोई अन्य संगठन अथवा इकाई ऐसी नहीं है जो पीड़ितों का प्रभावी रूप से प्रतिनिधित्व कर सकती है। कदाचित् सैद्धांतिक रूप से सरकार द्वारा अपने नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अधीन किसी अन्य स्वतंत्र कानूनी निकाय का गठन करना संभव हो सकता था जिसमें पीड़ितों के अधिकार निहित किए जाते और प्रतिस्थापित किए जाते और उस निकाय को उन्हीं दावों को उठाने या सिद्ध करने का कार्य उसी रीति में सौंपा जा सकता था जैसा कि केंद्रीय सरकार ने अधिनियम के अधीन किया है। किंतु इस तथ्य से कि वह नहीं किया गया है, हमारी राय में, स्थिति पर किसी भी प्रकार प्रभाव नहीं पड़ता। इसके अलावा अंत में हमारी राय में यह संकल्पना कि जहां हित-भेद हो वहां हित-भेद रखने वाले व्यक्ति को इस प्रकार का काम नहीं सौंपा जाना चाहिए, वर्तमान स्थिति में लागू नहीं होती। प्रस्तुत मामले में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन का कोई प्रश्न नहीं उठता और इस सिद्धांत को लागू करने की कोई गुंजाइश नहीं है कि कोई व्यक्ति अपने निजी मामले का निर्णायक नहीं होना चाहिए। केंद्रीय सरकार किसी दावे का निर्णय नहीं कर रही थी, बल्कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के दावों के लिए लड़ रही थी और उन्हें अग्रसर कर रही थी। इन परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है और दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की ओर से पक्षधर होने का अधिकार केंद्रीय सरकार को सौंपना अनुचित या दोषपूर्ण था। न्यायनिर्णयन न्यायालयों द्वारा किया जाएगा। अतः नैसर्गिक न्याय के किसी भी सिद्धांत के उल्लंघन की कोई गुंजाइश नहीं है।

103. इस निवेदन के साथ-साथ यह तर्क दिया गया कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के दावों के लिए लड़ने के लिए केंद्रीय सरकार को दी गई शक्ति और अधिकार मार्गदर्शन रहित है और असरणीबद्ध है। यह निवेदन स्वीकार नहीं किया जा सकता। विद्वान् महान्यायवादी का यह कहना ठीक है कि केंद्रीय सरकार को प्रदत्त की गई शक्ति असरणीबद्ध नहीं है। यह शक्ति अधिनियम के प्रयोजन से परिसीमित है। यदि शक्ति का अनुचित प्रयोग या अतिक्रमण किया गया है तो उस शक्ति के प्रयोग को प्रश्नगत किया जा सकता है और

अपास्त किया जा सकता है किंतु अधिनियम के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उससे इस आधार पर दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के अधिकारों का उल्लंघन होता है। हम इस प्रश्न पर सुसंगत नजीरों का हवाला दे चुके हैं कि यह प्रश्न कि शक्ति का प्रयोग कैसे किया जाना चाहिए इस प्रश्न से भिन्न और पृथक है कि वह शक्ति विधिमान्य है अथवा नहीं। दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की ओर से अगला तर्क यह दिया गया कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों और सरकार के बीच विषय के एक अन्य पहलू की दृष्टि से हितभेद था। इस बात पर जोर दिया गया कि केंद्रीय सरकार एवं पूर्ववर्ती मध्य प्रदेश राज्य के मुख्यमंत्री श्री अर्जुन सिंह के साथ-साथ मध्यप्रदेश सरकार उपेक्षा, अपकरण तथा अकरण के दोषी थे और इस प्रकार यूनियन कार्बाइड और यू० सी० आई० एल० के साथ-साथ वे भी नुकसानी के लिए दायित्वाधीन हैं। दूसरे शब्दों में, यह कहा गया कि श्री अर्जुन सिंह के साथ-साथ मध्य प्रदेश सरकार और भारत सरकार संयुक्त अपकृत्यकर्त्ता और संयुक्त दोषकर्ता हैं। अत: इस बात पर जोर दिया गया कि भारत सरकार और दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के बीच गैस विभीषिका से उत्पन्न दावों की बाबत हितभेद है और ऐसे मतभेद में भारत सरकार में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के अधिकारों और दावों को निहित करना अनुचित, बिल्कुल अवैध और अन्यायसंगत है। जैसा कि इससे पहले देखा जा चुका है, यह अधिनियम एक विशिष्ट पृष्ठभूमि में पारित किया गया था और हमारी राय में, यदि इसे उस पृष्ठभूमि में पढ़ा जाए तो इसके अंतर्गत केवल यूनियन कार्बाइड अथवा यू० सी० आई० एल० के विरुद्ध दावे ही आते हैं। धारा 2 के खंड (क) में 'भोपाल गैस विभीषिका' अथवा 'विभीषिका' को परिभाषित किया गया है, जो घटना 2 और 3 दिसम्बर, 1984 को घटी थी। इस घटना में भोपाल स्थित एक संयंत्र (यू० सी० आई० एल० का एक संयंत्र जो संयुक्त राज्य अमरीका की यूनियन कार्बाइड कंपनी की एक सहायक कंपनी थी) में से अत्यधिक अनिष्टकर और अत्यंत खतरनाक गैस बाहर निकल आई थी जिसके परिणामस्वरूप एक विशाल पैमाने पर जान-माल का भारी नुकसान हुआ।

104. इस संदर्भ में, इस अधिनियम को समझना होगा कि यह उस व्यक्ति की बाबत है जो यू० सी० आई० एल० और मुख्य कंपनी, यूनियन कार्बाइड कंपनी का प्रभारी व्यक्ति होने के कारण जिम्मेदार है। अधिनियम का यह निर्वचन इस तथ्य से और भी प्रबल हो जाता है कि 'दावेदार' शब्द धारा 2 के खंड (ग) में ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है जो दावा करने के लिए हकदार हैं तथा धारा 2 (ङ) में 'व्यक्ति' शब्द के अंतर्गत सरकार भी आती है। अत: यह अधिनियम इस उपधारणा पर अग्रसर होता है कि सरकार भी एक व्यक्ति होने के नाते दावेदार हो सकती है। साथ ही यह अर्थान्वयन और अधिनियम का परिप्रेक्ष्य और भी सुदृढ़ हो जाता है यदि लोकसभा और राज्यसभा दोनों में हुई बहस के प्रति निर्देश किया जाए, जिसके प्रति निर्देश किया गया है।

105. यह प्रश्न कि क्या भारत संघ के संयुक्त अपकृत्यकर्ता के रूप में जिम्मेदार या दायित्वाधीन होने की गुंजाइश है अथवा नहीं यह एक कठिन और भिन्न प्रश्न है। किंतु यदि यह मान लिया जाए कि यह संभव था कि केंद्रीय सरकार इस प्रकार के मामले में दायित्वाधीन हो सकती थी तो भी विद्वान् महान्यायवादी की यह दलील ठीक थी कि केवल यही ठीक है कि केंद्रीय सरकार दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ और प्राधिकृत

होनी चाहिए। ऐसी स्थिति में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन की कोई गुंजाइश नहीं होगी। आवश्यकता का सिद्धांत इस प्रकार की स्थिति में लागू होगा। हाल्सबरीज़ लाज आफ इंग्लैंड, चतुर्थ संस्करण, पृ० 89, पैरा 73 में इस सिद्धांत की व्याख्या की गई है, जहां यह दोहराया गया था कि यदि किसी मामले को तय करने के लिए सक्षम अधिकरण के सभी सदस्य निरर्हता के अध्यधीन थे तो भी वे सामान्य विधि के आवश्यकता के सिद्धांत के प्रवर्तन के फलस्वरूप उस मामले की सुनवाई के लिए प्राधिकृत किए जा सकते थे और बाध्य किए जा सकते थे। ऐसे न्यायनिर्णायक से, जो उस मामले में, जिसका उसे विनिश्चय करना है, विद्वेष या हित के आधार पर निरर्हता के अध्यधीन है, कुछ परिस्थितियों में न्यायनिर्णयन के लिए अपेक्षा उस दशा में की जा सकती हैं, यदि दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है, जो न्यायनिर्णायक होने के लिए सक्षम या प्राधिकृत हो अथवा यदि उसके बिना गणपूर्ति न हो सके अथवा यदि कोई अन्य सक्षम अधिकरण गठित न किया जा सके। मामले की इन परिस्थितियों में, जैसा कि इससे पहले उल्लेख किया जा चुका है, केवल भारत सरकार ही पक्षकार के रूप में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए समर्थ है। तथापि, दावों का न्यायनिर्णयन न्यायालय द्वारा किया जाएगा। इन परिस्थितियों में, हम इस आधार पर नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आधार पर दी गई चुनौती को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। फिर भी विद्वान् महान्यायवादी ने, जैसा कि हम इससे पहले इंगित कर चुके हैं, अपनी दलील, तथ्यत: विधि-मान्यता के आधार पर देनी चाही। उन्होंने कुछ विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया। हमारी राय है कि यह सिद्धांत लागू नहीं होगा। हम इन सब कार्यवाहियों में क्षतिग्रस्त व्यक्तियों के हितों के वास्तविक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत के अभिवाक् से भी प्रभावित नहीं हैं। हमारी राय है कि वास्तविक प्रतिनिधित्व का सिद्धाँत पूरी तरह सुसंगत नहीं होगा और इस प्रकार विद्वान् महान्यायवादी द्वारा प्रोद्धृत विनिश्चयों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

106. तथापि, इस मामले का एक और पहलू है जिस पर विचार किया जाना चाहिए। दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को उनके अधिकारों से निर्रहित किया जा सकता है अर्थात् ये अधिकार उनसे छीने जा सकते हैं बशर्ते कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के वे अधिकार न्यायसंगत, ऋजु और युक्तियुक्त प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए केन्द्रीय सरकार द्वारा सिद्ध किए जाने और उठाए जाने के लिए सुनिश्चित कर दिए जाएं। सिविल प्रक्रिया संहिता एक मार्गदर्शक है जो इस देश में सिविल प्रक्रियाओं को और अन्य देशों की प्रक्रियाओं को जो सिविल प्रक्रिया संहिता के अनुरूप हैं, मार्गदर्शित करती है। इस प्रकार इन्हें कार्यवाहियों की ऋजुता के अनुरूप और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप माना और स्वीकार किया गया है। अत: अधिनियम के अधीन अनुध्यात प्रक्रिया का इस आधार पर मूल्यांकन करना होगा कि क्या यह इस प्रकार अनुरूप है। जैसा कि पहले इंगित किया जा चुका है, इस अधिनियम में धारा 3 और 4 में प्रक्रिया दी गई है। धारा 11 में उपबंधित है कि इस अधिनियम के और के अधीन बनाई गई किसी स्कीम के उपबंध इस अध्यादेश से भिन्न किसी अधिनियमिति में या इस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति के आधार पर प्रभाव रखने वाली किसी लिखत में उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे। इस प्रकार यदि कोई चीज तत्समय अधिनियम के अनुरूप नहीं है तो वह प्रभावी नहीं होगी और अधिनियम उस समय तक उन उपबंधों पर अध्यारोही होगा। अधिनियम की धारा 4 में उपदर्शित सीमा

को छोड़कर, अधिनियम में धारा 3 द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अनुसरण में की जाने वाली कार्यवाही में अपनाए जाने वाली कोई प्रक्रिया विनिर्दिष्ट तौर पर अनुध्यात नहीं की गई है। तथापि, धारा 5 अधिनियम की धारा 3 और 4 के अधीन निहित प्राधिकार के अनुसरण में कृत्यों के निर्वहन के प्रयोजन के लिए केंद्रीय सरकार को सिविल न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत करती है। उन दावों की बाबत जो उसे भोपाल गैस विभाषिका के शिकार लोगों के लिए या की ओर से या के बजाए प्रवृत्त करने चाहिएं, केंद्रीय सरकार के न्यायालय के रूप में काम करने का कोई प्रश्न नहीं है। इस संबंध में यह ध्यान देना आवश्यक है कि यह निवेदन किया गया था कि जहां तक यह अधिनियम दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के संबंध में है, वहां तक इसे सिविल प्रक्रिया संहिता और/या नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप पढ़ा जाना चाहिए और जब तक कि अधिनियम के उपबंधों को इस प्रकार नहीं पढ़ा जाएगा तब तक यह इस अर्थ में संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघनकारी होगा कि ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना जो न्यायसंगत, ऋजु और उपयुक्त हो, प्राण और स्वाधीनता के अधिकारों से वंचित करना होगा। दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की ओर से हाजिर होने वाले विभिन्न काउंसेलों का यही मुख्य निवेदन और दलील है। उन विभिन्न दृष्टिकोणों पर जिनसे यह दलील पेश की गई है, पहले ही दृष्टिपात किया जा चुका है। दूसरी ओर, सरकार की ओर से विद्वान् महान्यायवादी ने हमारे समक्ष यह याचना की है कि इस अधिनियम के अंतर्गत नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप प्राप्त रक्षोपाय हैं और ऐसी स्थिति में जिसके लिए अधिनियम अधिनियमित किया गया था, जो कुछ उपबंध किया गया है उसके बाहर और अधिक उपबंध नहीं किया जा सकता था तथा बताये गए तरीके से अधिनियम के उपबंधों में और अधिक कुछ ढूंढ़ने से अधिनियम का प्रयोजन विफल हो जाएगा। पूर्वोक्त धारा 3 ऐसे प्रत्येक व्यक्ति के स्थान पर जिसने विभीषिका की बाबत दावा किया है या जो दावा करने के लिए हकदार है (चाहे भारत के भीतर या भारत के बाहर), प्रतिनिधित्व और कार्य करने के अधिकार से युक्त केंद्रीय सरकार के प्रतिस्थापन के लिए उपबंध करती है राज्य ने प्रभुत्व शक्ति का प्रयोग करते हुए दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के अधिकारों और दावों को ग्रहण कर लिया है जिससे कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के मां-बाप और संरक्षक के नाते सांविधानिक बाध्यताओं का निर्वहन किया जा सके जिन्हें वर्तमान स्थिति में संरक्षण की छाया जरूरी है। इस प्रकार राज्य को शक्ति और अधिकारिता प्राप्त है और इस प्रयोजन के लिए जब तक कि अधिनियम अन्यथा अयुक्तियुक्त न हो, या सांविधानिक उपबंध के उल्लंघनकारी न हो, तब तक राज्य द्वारा उन अधिकारों को ग्रहण करने के कारण, पक्षकारों के सुने जाने का कोई प्रश्न पैदा नहीं होता। संसद् द्वारा विधान बनाने के लिए नैसर्गिक न्याय का कोई सिद्धांत लागू नहीं होता बशर्ते कि ऐसा विधान विधानमंडल की क्षमता के अंदर हो और वस्तुतः वर्तमान अधिनियम संसद् की क्षमता के अंतर्गत है। हम विद्वान् महान्यायवादी के इस निवेदन से सहमत हैं कि धारा 3 केंद्रीय सरकार को सर्वोपरि वादकारी (डोमिनस लिटस) बनाती है और उसे कार्यवाहियों का वाहन प्राप्त है, किंतु इससे समस्या हल नहीं होती कि किस प्रक्रिया से कार्यवाहियां चलाई जाएं।

107. अगला पहलू यह है कि अधिनियम की धारा 4 जो विद्वान् महान्यायवादी के अनुसार इस अर्थ में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को सीमित अधिकार प्रदान करती है कि यह केंद्रीय सरकार को इस बात के लिए बाध्य करती है कि वह 'ऐसे विषय का सम्यक् ध्यान

रखेगी जिस पर ऐसे व्यक्ति द्वारा अपने दावे के संबंध में जोर दिया जाना अपेक्षित है और यदि ऐसा व्यक्ति ऐसी वांछा करे, तो ऐसे व्यक्ति के व्यय पर, उसके दावे से संबंधित किसी वाद या अन्य कार्यवाही का संचालन करने में उसकी पसंद के किसी विधि व्यवसायी को सहयुक्त होने की अनुज्ञा देगी ।' अत: यह धारा किसी ऐसे विषय का सम्यक् ध्यान रखने के लिए बाध्य करती है, और दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की ओर से इस बात पर जोर दिया गया है कि इसे इस रूप में पढ़ा जाना चाहिए ताकि उपबंधों को सांविधानिक दृष्टि से इस रूप में विधिमान्य बनाया जा सके कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को कार्यवाहियों के संचालन में कुछ कहने का अधिकार होगा और इस प्रकार उन्हें यह जानने का अवसर दिया जाना चाहिए कि केंद्रीय सरकार को अनुदेश देकर या राय देकर और/अथवा निर्धारण और अन्य विषयों की बाबत ऐसे निदेशों के लिए उपबंध करके क्या हो रहा है । दूसरे शब्दों में, दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की ओर से यह दलील दी गई कि उन्हें कार्यवाहियों की सूचना दी जानी चाहिए और इस प्रकार उन्हें अपना मत पेश करने का अवसर दिया जाना चाहिए, यदि वे ऐसा चाहते हैं और यह कि धारा 4 के उपबंधों को सार्थक और प्रभावी बनाने के लिए जब तक कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को सूचना न दी जाए जो निःशक्त हैं, तो वह उपधारणा जिस पर यह अधिनियम अधिनियमित किया गया है, सामने आकर कार्यवाहियों में सुझाव नहीं दे सकती । यदि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को सूचित नहीं किया जाता है और कोई अवसर नहीं दिया जाता है तो धारा 4 का प्रयोजन पूरा नहीं किया जा सकता ।

108. इसके विपरीत, विद्वान् महान्यायवादी का सुझाव था कि धारा 4 का अनुपालन किया गया है, और उन्होंने दलील दी कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को कार्यवाहियों की सूचना थी । उन्हें अमरीका में वाद की तथा न्यायाधीश कीनन द्वारा पारित आदेश की जानकारी थी । प्राइवेट वादियों का प्रतिनिधित्व, जो अमरीका गए थे, समाश्रित विदेशी वकीलों द्वारा किया गया था जो यह पूरी तरह जानते थे कि वे क्या कर रहे हैं और उन्होंने भी भारत सरकार के साथ-साथ उक्त वाद में भाग लिया था। विद्वान् महान्यायवादी का निवेदन था कि अधिनियम की धारा 4 स्पष्टतः दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को कार्यवाहियों में भाग लेने के अपने अधिकार का प्रयोग करने में समर्थ बनाती है। उनके अनुसार न्याय निर्णयन की प्रक्रिया से दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों का अपवर्जन है किंतु सीमित भागीदारी उपबंधित की गई थी तथा उस भागीदारी से परे और अधिक भागीदारी अपेक्षित नहीं थी तथा सांविधानिक अपेक्षाओं के अनुसार या नैसर्गिक न्याय के सामान्य सिद्धांतों के अधीन अधिनियम के उपबंधों द्वारा और आगे सूचना न्यायोचित नहीं थी। उन्होंने निवेदन किया कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को एक बने बनाए सांचे में नहीं रखा जा सकता और उनका लागू होना स्थिति के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। विद्वान् महान्यायवादी के अनुसार प्रस्तुत मामले में विधानमंडल ने उस क्षेत्र का निर्माण किया था जहां नैसर्गिक न्याय लागू किया जा सकता है और किस क्षेत्र या प्रक्रम तक वाद के साथ दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को सहयुक्त किया जा सकता है इससे परे नैसर्गिक न्याय के किसी सिद्धांत को लागू करना अनुध्यात नहीं था ।

109. यह तथ्य निर्विवाद है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन करना होगा । यह न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों से सुस्थिर है । भारतीय संविधान इसकी स्पष्ट

आज्ञा देता है अन्यथा, अधिनियम और कार्यवाही संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन में होंगे और अनुच्छेद 19(1)(छ) के लिए घातक होंगे तथा ऐसी प्रक्रिया से वंचित करके जो न्याय-संगत, ऋजु और युक्तियुक्त है, संविधान के अनुच्छेद 21 को भी नकारना होगा। इस संबंध में देखिए **मेनका गांधी** वाले मामले[1] में और **आल्गा टेलिस**[2] वाले मामले में इस न्यायालय की मताभिव्यक्तियां। **स्वदेशी काटन मिल्स** बनाम **भारत संघ**[3] में इस न्यायालय के विनिश्चय में इनमें से कुछ पहलुओं पर दृष्टिपात किया गया था। वह विनिश्चय उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 के अधीन उद्योगों का प्रबंध ग्रहण करने के प्रश्न पर था। उसमें प्रश्न यह उठा था कि क्या अधिनियम की धारा 18(क)(1) के अधीन अधिसूचना जारी करने से पहले नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना आवश्यक है अथवा नहीं। न्यायाधीशों ने बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया था कि मामले के तथ्यों में विनिश्चयपूर्व प्रक्रम पर नैसर्गिक न्याय के नियम 'दूसरे पक्षकार को भी सुनो' की विवक्षित अपेक्षा का अनुपालन नहीं किया गया था। उस मामले के आदेश को इस आधार पर अविधिमान्य ठहराकर अवैध घोषित किया जा सकता था, किंतु इस न्यायालय का निष्कर्ष था कि इस रियासत की दृष्टि से कि कंपनी को सुनवाई का मौका दिया जाएगा, मामला केंद्र सरकार के पास पूर्ण, निष्पक्ष और प्रभावी सुनवाई के लिए भेज दिया गया। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि 'नैसर्गिक न्याय' पद की स्थिर और सुनिश्चित परिभाषा नहीं की जा सकती। इसे परिशुद्ध लौह-सांचा सूत्र (स्ट्रेट जैकेट आफ ए कास्ट आइरन फार्मूला) में कैद नहीं किया जा सकता। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत लेखबद्ध नहीं हैं इसलिए ऐसे सिद्धांतों की निःशेषी तालिका बनाना संभव नहीं था। इस न्यायालय ने यह दोहराया कि 'दूसरे पक्षकार को भी सुनो' एक अत्यंत कारगर सिद्धांत है जो न्यायालय द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए विवक्षित किया गया है कि कानूनी प्राधिकरण न्यायसंगत विनिश्चय करे और उसका उद्देश्य शक्ति दुरुपयोग या गलत प्रयोग पर निष्पक्ष नियंत्रण रखना है। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत उन्हीं क्षेत्रों में प्रभावी हो सकते हैं जो विधिमान्य रूप से बनाई गई किसी विधि के अंतर्गत नहीं आते। एकरूपता से लागू करने के पूर्ण सिद्धांत से प्रभेदित रूप में, साधारण सिद्धांत यह प्रतीत होता है कि जहां कानून स्पष्ट शब्दों में पूर्व सुनवाई के इस सिद्धांत को अपवर्जित नहीं करता अपितु गुणागुण पर मूल आदेश के पूर्ण पुनर्विलोकन के समान विनिश्चयोत्तर सुनवाई को भी अनुध्यात करता है, वहां ऐसे कानून का अर्थ यह लगाया जाएगा कि वह विनिश्चयपूर्व प्रक्रम पर 'दूसरे पक्षकार को भी सुनो' के सिद्धांत को अपवर्जित करता है। यदि शक्ति प्रदान करने वाला कानून प्रभावित व्यक्ति को विनिश्चयपूर्व सुनवाई देने के बारे में मौन है तो विनिश्चयोत्तर सुनवाई के बाद प्रशासनिक विनिश्चय उपयुक्त होगा।

110. इस न्यायालय ने **भारत संघ और एक अन्य** बनाम **तुलसी राम पटेल और अन्य**[4] वाले मामले में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का विवेचन किया है। पुनः यह बात दोहराई गई कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत संविधान के अनुच्छेद 14 की देन नहीं हैं। अनुच्छेद 14 नैसर्गिक

---

1 [1979] 1 उम० नि० प० 243=[1979] 2 एस० सी० आर० 621.

2 [1986] 1 उम० नि० प० 269=[1985] सप्ली० एस० सी० आर० 51.

3 [1981] 4 उम० नि प० 1157=[1981] 2 एस० सी० आर० 533.

4 [1985] 4 उम० नि० प० 106=ए० आई० आर० 1985 एस० सी० 1416=2 एस० सी० आर० 131.

न्याय के सिद्धांतों का जनक नहीं है अपितु उनका सांविधानिक संरक्षक है। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों में अन्य बातों के साथ-साथ यह अपेक्षा भी शामिल है कि किसी भी व्यक्ति को बिना सुने दंड न दिया जाए। तथापि, यदि कोई विधान या कानून अभिव्यक्त रूप से या आवश्यक विवक्षा द्वारा नैसर्गिक न्याय के किसी सिद्धांत विशेष को लागू करना अपवर्जित करता है तो न्यायालय को उसकी सूक्ष्म संवीक्षा करनी चाहिए।

111. दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की ओर से याचना की गई है कि सिविल प्रक्रिया संहिता इस बात का एक प्रस्तुत उदाहरण है कि न्यायसंगत, ऋजु और युक्तियुक्त प्रक्रिया क्या है, कम से कम उसमें समाविष्ट सिद्धांत और वह अधिनियम अयुक्तियुक्त होगा, यदि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को अपने विचारों और अधिकारों को उचित रूप से प्रस्तुत करने से अपवर्जित कर दिया जाता है। यह अपवर्जन न्याय से वंचित करने के समान हो सकता है। जो भी हो, यह सुझाव दिया गया है और, हमारी राय में, इस दलील में काफी बल है कि यदि ठीक या गलत कारणों से दावे के एक भाग के बारे में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के विचारों पर कम से कम विचार किए बिना ही समझौता या समायोजन किया जाना ईप्सित है तो वह दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के अधिकारों का अयुक्तियुक्त हनन होगा। आखिरकार, यह ध्यातव्य है कि किसी कृत्य या प्रक्रिया से प्रभावित लोगों के मन में इस अर्थ में अन्याय से यह भावना पैदा होती है कि उनकी व्यथाओं, विचारों या दावों पर सुनवाई या विचार नहीं किया गया है। ऐसी भावना अपने आप में ही अन्याय या दोष है। विधि का अर्थान्वयन या कार्यान्वयन इस प्रकार किया जाए कि उन लोगों के मन में ऐसी भावना पैदा न हो जिनके फायदे के लिए वह विधि बनाई गई है। समझौता करने से पूर्व सुनवाई या प्रतिनिधित्व का अधिकार उस अर्थ में समझी गई विधि की सम्यक् प्रक्रिया में समाविष्ट प्रतीत होता है जिसमें इस शब्द का प्रयोग इस देश की सांविधानिक शब्दावली में किया गया है, हालांकि संभवतः मूलतः ऐसा आशय नहीं था। इस संबंध में **संग्राम सिंह बनाम निर्वाचन अधिकरण, कोटा**[1] में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया जा सकता है। लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में धारा 90 है और अधिनियम के अधीन निर्वाचन अधिकरणों की प्रक्रिया के संबंध में उक्त उपबंध लागू होता है। धारा 90 की उपधारा (2) में उपबंधित है कि इस अधिनियम के और तद्धीन बनाए गए किन्हीं भी नियमों के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए, हर निर्वाचन अर्जी अधिकरण द्वारा यथाशक्य निकटतम उस प्रक्रिया के अनुसार विचारित की जाएगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के अधीन वादों के विचारण को लागू है। न्या० बोस ने न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए कहा था कि यह एक प्रक्रिया है जो न्याय को सुकर बनाने और उसके लक्ष्यों की पूर्ति करने के लिए प्रकल्पित एक चीज है और इसे दंड या शास्तियों के लिए एक दंड विधान नहीं माना जा सकता। इसे ऐसी चीज नहीं माना जा सकता जो लोगों की मदद करने के बजाए उन्हें तंग करने के लिए बनाया गया हो। यह बात दोहराई गई कि प्रक्रिया संबंधी हमारी विधियां नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत पर आधारित है जिसके अनुसार यह अपेक्षित है कि किसी भी आदमी को अनसुने दंडित न किया जाए, उसके पीठ पीछे विनिश्चय न किए जाएं, उसके जान-माल को प्रभावित करने वाली कार्यवाहियां उसकी अनुपस्थिति में न चलाई

---

1 [1952] 2 एस० सी० आर० 1.

1989(12) eILR(PAT) SC 1

जाएं और यह कि उनमें भाग लेने से उन्हें प्रविरत न किया जाए, इसमें कुछ अपवाद हो सकते हैं, और जहां वे स्पष्ट रूप से परिभाषित हैं वहां उन्हें अवश्य प्रभावी किया जाना चाहिए। किंतु व्यापक रूप से और इस परंतुक के अधीन रहते हुए, प्रक्रिया संबंधी विधियों का अथन्वियन जहां भी ऐसा युक्तियुक्त रूप से संभव हो, इस सिद्धांत के प्रकाश में किया जाना चाहिए। रिपोर्ट के पृष्ठ 9 पर न्यायमूर्ति बोस ने यह मत व्यक्त किया था :—

> "किंतु, नैसर्गिक न्याय की विधि इस अर्थ में विद्यमान है कि पक्षकार को न्यायालय में अवश्य सुना जाना चाहिए अथवा हर कीमत पर हाजिर होने और अपनी प्रतिरक्षा करने का अवसर दिया जाना चाहिए, जब तक कि इसके प्रतिकूल अभिव्यक्त उपबंध न हो, यह हमारी राय में, निर्विवाद है। देखिए—बालकृष्ण उडियार **बनाम** वासुदेव अय्यर (आई० एल० आर० 40, मद्रास 793, 800) में और विशेष रूप से ओ० एम० बैरट **बनाम** अफ्रीकन प्रॉडक्ट्स लिमिटेड (ए० आई० आर० 1928 टी० सी० 261) में प्रिवी कौंसिल की मताभिव्यक्तियां, जहां लार्ड बकमास्टर ने कहा था—'कभी भी कोई प्ररूप या प्रक्रिया ऐसी न बनने दी जाए जो पक्षकार की प्रतिरक्षा प्रस्तुत करना अपवर्जित करती हो।' हरिविष्णु वाले मामले को भी देखिए जिसे हमने अभी उद्धृत किया है।
>
> हमारी राय में न्या० वैलस ने वेंकट सुबय्या **बनाम** लक्ष्मी नर्सिंग होम (ए० आई० आर० 1925 मद्रास 1274) वाले मामले में यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया था कि 'किसी न्यायालय द्वारा विचारणों में अपनाया जाने वाला एक सौहार्दयपूर्ण सिद्धांत प्रकटतः यह है कि जब मामला सुनवाई के लिए आए तो पक्षकार को सभी मौकों पर हाजिर होने और अपना पक्षकथन पेश करने का अधिकार होता है', और यह कि 'इसका अभिप्राय यह है कि उस पक्षकार को उस अधिकार से वंचित नहीं किया जाना चाहिए और वस्तुतः न्यायालय को उस अधिकार से इंकार करने की छूट नहीं है, जब तक कि सिविल प्रक्रिया संहिता उसे उससे वंचित न करती हो।' "

112. सभी सभ्य देशों ने सुने जाने के अधिकार को विधि की सम्यक् प्रक्रिया का अंग माना है जहां उनके अधिकारों, विशेषाधिकारों अथवा दावों से संबंधित प्रश्नों पर विचार किया जाए या निर्णय किया जाए।

113. **कपूर, एस० एल०** बनाम **जगमोहन और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए न्या० चेन्नप्पा रेड्डी ने यह मत व्यक्त किया था कि यह संकल्पना हमारी प्रणाली की बुनियाद है कि न्याय किया ही नहीं जाना चाहिए बल्कि किया गया प्रतीत भी होना चाहिए। यह दोहराया गया है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों में अपवर्जनकारी सिद्धांत की कोई गुंजाइश नहीं है जो इस बात पर आश्रित हों कि यदि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का पालन किया जाता तो कोई अंतर पड़ता। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का अननुपालन किसी भी व्यक्ति के प्रतिकूल होता है और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत से वंचित करने के सबूत से पृथक् प्रतिकूल प्रभाव का सबूत होना अनावश्यक है और यह कहा गया है कि यह सिद्ध करने

[1] [1981] 3 उम० नि० प० 935=[1981] 1 एस० सी० आर० 745.

का भार उस व्यक्ति पर है जिसने नैसर्गिक न्याय से वंचित किया है, कि उस व्यक्ति पर जिसे नैसर्गिक न्याय से वंचित रखा गया है प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है। अतः नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन अवश्य किया जाना चाहिए। यह एक सामान्य अपेक्षा है।

114. इस न्यायालय द्वारा स्थापित और विश्व भर में मान्य सिद्धांत की दृष्टि से हमारी राय है कि इतने बड़े और इस प्रकृति के मामले में जहां दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को अधिनियम की धारा 4 द्वारा कुछ करने का अधिकार दिया गया है जिससे कि अधिनियम की धारा 4 द्वारा अनुध्यात अवसर सार्थक और कारगर हो सकें। इसे इस रूप में पढ़ा जाना चाहिए कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को किसी भी समझौते की बाबत किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले अपना अभ्यावेदन करने का अवसर देना होगा। अवसर कैसे दिया जाए यह स्थिति विशेष पर निर्भर करेगा। प्रतिनिधित्व जन अपकृत्य अनुयोजन में निष्पक्ष प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए। ऐसे अनेक उदाहरण हैं और इनमें से कुछ हमारे समक्ष इन मामलों की सुनवाई के दौरान पेश किए गए थे जिनसे यह इंगित होता है कि जन समूह के अनुयोजन की बाबत सूचना देने की प्रक्रिया को न्यायालय कैसे विनियमित करते हैं जहां असंख्य लोगों के विचारों को अभिनिश्चित करना होता है। ऐसी स्थिति आने पर न्यायालय को ऐसी प्रक्रिया विकसित करनी चाहिए।

115. इस अधिनियम के अनुसार सिविल प्रक्रिया संहिता का लागू होना अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित नहीं किया गया है। अधिनियम की धारा 11 अध्यारोही प्रभाव का उपबंध करती है कि यह इंगित करती है कि सिविल संहिता समेत अन्य विधि में इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत किसी भी बात की उपेक्षा की जानी चाहिए और अधिनियम अभिभावी रहना चाहिए। हमारा ध्यान संहिता के आदेश, 1, नियम 8(4) के उपबंधों की ओर आकर्षित किया गया था। यह कहना उपयुक्त होगा कि आदेश 1, नियम 8, अधिनियम के अधीन किसी वाद या कार्यवाही पर लागू नहीं होगा। यह मामला ऐसा नहीं है कि किसी का दूसरों के साथ सामान्य हित हो। यहां वादी, अर्थात् केंद्रीय सरकार ने दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को प्रतिस्थापित और निर्निहित कर दिया है।

116. विद्वान् महान्यायवादी का निवेदन था कि 1976 के संशोधन से पूर्व संहिता के उपबंधों के बारे में उच्च न्यायालय ने यह मत अपनाया था कि वाद में प्रतिनिधित्व प्राप्त पक्षकारों की सुनवाई समझौते से पूर्व आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त आदेश 23, नियम 1 के परंतुक के प्रति निदेश किया गया था। चूंकि इस मामले में हमारी राय में वाद या वाद के किसी भाग के परित्याग का प्रश्न नहीं है इसलिए इस नियम के उपबंध भी पूरी तरह लागू नहीं होंगे। तथापि, संहिता का आदेश 23, नियम 3-ख एक महत्वपूर्ण और उपयोगी संकेत करता है तथा उक्त उपबंध में अंतर्निहित सिद्धांत इस मामले को लागू होंगे। इस नियम 3-ख उपबंधित है कि प्रतिनिधि वाद में करार या समझौता न्यायालय की ऐसी इजाज़त के बिना जो कार्यवाही में अभिव्यक्त रूप से अभिलिखित हो, नहीं किया जाएगा तथा नियम 3-ख के उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट है कि ऐसी इजाज़त मंजूर करने के पूर्व न्यायालय ऐसी रीति से जैसी वह ठीक समझे ऐसे व्यक्तियों को सूचना देगा जिनके बारे में उसे यह प्रतीत हो कि वे वाद में हितबद्ध हैं। पुनः प्रतिनिधि वाद की परिभाषा खंड घ के अनुसार उक्त नियम के स्पष्टीकरण

के अंतर्गत किसी अन्य वाद के रूप में दी गई है जिसमें पारित की गई डिक्री इस संहिता के या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंध के फलस्वरूप किसी भी व्यक्ति को आबद्ध कर सकेगी जो वाद में पक्षकार नहीं है। इस मामले में निस्संदेह दुर्घटना के शिकार व्यक्ति समझौते द्वारा आबद्ध होंगे हालांकि वे वाद में पक्षकार नहीं हैं। इस स्थिति को सभी ने मान लिया है। यदि ऐसा है, तो यह संहिता के आदेश 23 के नियम 3-ख के शब्दों में और के प्रयोजन के लिए प्रतिनिधि वाद होगा। यदि इस नियम के सिद्धांत नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत हैं तो हमारी राय है कि इसके पीछे जो सिद्धांत हैं वे लागू होंगे; तथा यह भी कि धारा 4 का अर्थान्वयन भी इस प्रकार किया जाएगा हालांकि सूचना की प्रक्रिया की कठिनाइयां हैं और बुद्धिमत्तापूर्ण विनिश्चय करने की प्रक्रिया की जटिलता-जैसी अन्य कठिनाइयां हैं, जैसी कि विद्वान् महान्यायवादी ने बहस की है।

117. हमारी राय में, सांविधानिक अपेक्षाएं और धारा की भाषा, अधिनियम का प्रयोजन और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत हमें अधिनियम की धारा 4 के इस निर्वचन की ओर ले जाते हैं कि प्रस्थापित या अनुध्यात समझौते की दशा में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को जो प्रभावित हैं या जिनके अधिकार प्रभावित होने वाले हैं, उनके विचार जानने के लिए सूचना दी जानी चाहिए। धारा 4 महत्वपूर्ण है। यह केंद्रीय सरकार को केवल यह व्यादेश देती है, 'केंद्रीय सरकार किसी ऐसे विषय का सम्यक् ध्यान रखेगी जिस पर ऐसे व्यक्ति द्वारा अपने दावे के संबंध में जोर दिया जाना अपेक्षित है।' इसलिए धारा 4 में अनुध्यात स्थिति में केंद्रीय सरकार इस बात के लिए बाध्य है कि वह दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के विचारों को ध्यान में रखे और इस बाध्यता का निर्वहन केंद्रीय सरकार द्वारा तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को यह न बता दिया जाए कि एक समझौता प्रस्थापित, आशयित या अनुध्याय है। यह आवश्यक नहीं है कि ऐसे मतों के लिए सभी दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की सम्मति आवश्यक होगी। दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की प्रतिनिधि के रूप में केंद्रीय सरकार को दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के विचारों को जान लेना चाहिए और उन्हें न्यायालय के समक्ष ऐसी रीति से, जैसी वह ठीक समझे, समझौता किए जाने से पूर्व पेश करना चाहिए। यदि दुर्घटना के शिकार व्यक्ति अधिनियम के अधीन कार्यवाही के दौरान मामले के किसी पहलू का उल्लेख करना चाहते हैं और समझौता वस्तुतः कार्यवाहियों में एक महत्वपूर्ण प्रक्रम है, अतः दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को अवसर दिए जाने चाहिएं हो सकता है, अलग-अलग सूचनाएं आवश्यक न हों। न्यायालय को हमारी राय में ऐसी स्थिति में सूचना देने की प्रक्रिया अपनानी चाहिए तथा जनसंचार माध्यम की मदद से दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के विचारों को आमंत्रित करते हुए सार्वजनिक सूचना भी दी जा सकती है।

118. हमारा ध्यान अन्य देशों में ऐसी ही स्थितियों की ओर आकर्षित किया गया था जहां इस प्रकार की महाविभीषिका की कार्यवाहियों में अथवा असंख्य लोगों को प्रभावित करने वाली महा विपत्ति की कार्यवाहियों में भिन्न-भिन्न प्रकार से सूचनाएं दी गई हैं। अतः समाचार-पत्रों, रेडियो और दूरदर्शन आदि के माध्यम से घोषणा करके दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के विचारों को आमंत्रित करना संभव हो सकता है और दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को यह बताया जा सकता है कि एक समझौता प्रस्थापित या अनुध्यात है और एक नियत

अवधि के भीतर दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के विचार आमंत्रित किए जा सकते हैं। इन विचारों को ध्यान में रखते हुए केंद्रीय सरकार इस मामले में समझौते की आगे कार्यवाही कर सकती है। अधिनियम की धारा 4 के अनुसार सबकी सम्मति पूर्व शर्त नहीं है। इस प्रकार सबकी सम्मति और सर्वसम्मति लेने में विद्वान् महान्यायवादी द्वारा बताई गई कठिनाइयां वास्तव में उत्पन्न नहीं होतीं और हमें इस धारा का उचित अर्थान्वयन करने से विमुख नहीं होना चाहिए।

119. मामले का अगला पहलू यह है कि उपरोक्त प्रकाश में धारा 4 का अनुपालन किया गया है अथवा नहीं। यह तथ्य निर्विवाद है कि इस मामले में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को कोई विनिर्दिष्ट सूचना नहीं दी गई थी। तथापि विद्वान् महान्यायवादी ने यह मत प्रकट करना चाहा कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को सूचना थी और उनमें से कुछ ने कार्यवाहियों में भाग भी लिया था। किंतु हम इस बात को मानने में असमर्थ हैं कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को संहिता के आदेश 23, नियम 3-ख में अंतर्निहित सिद्धांत के अनुसार अधिनियम के अधीन अनुध्यात प्रक्रिया की सूचना थी। यह कहना काफी नहीं है कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को सतर्क रहकर कार्यवाही पर नजर रखनी चाहिए। एक धारणा जिसके अंतर्गत यह अधिनियम न्यायोचित है, यह है कि दुर्घटना के शिकार व्यक्ति इस प्रकार अनुयोजन में अपनी प्रतिरक्षा करने में असमर्थ थे। यदि ऐसा है तो न्यायालय यह अवधारण नहीं कर सकता कि दुर्घटना के शिकार व्यक्ति इस प्रकार का समझौता सोचने या अनुध्यात करने में समर्थ थे और ऐसा किए जाने की योग्यता से परिचित थे। हमारी राय में, विषय की पूर्वोक्त दृष्टि से सूचना आवश्यक थी। अधिकांश दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को जानकारी नहीं थी।

120. बहरहाल, प्रश्न यह है कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को तुरंत राहत देने के लिए पर्याप्त प्रयास किए जाने के बाद ही समझौता किया गया है। हमने इस न्यायालय द्वारा पारित 4 मई, 1989 का आदेश देखा है जिसमें वे कारण दिए गए हैं जिनसे प्रेरित होकर न्यायालय ने 14/15 फरवरी, 1989 को उस रूप में और उस रीति से आदेश पारित किए थे। कुछ दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की ओर से हमारे समक्ष इस बात पर जोर दिया गया है कि उन्हें जो नुकसान हुआ है, उसकी बाबत उनके विचारों और दावों के प्रति न्याय नहीं किया गया है। तारीख 4 मई, 1989 को इस न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों को पढ़ने पर हमें यह प्रतीत होता है कि कदाचित न्याय तो किया गया है, किंतु प्रश्न यह है कि क्या न्याय किया गया प्रतीत होता है और यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह है : क्या अधिनियम ऐसी प्रक्रिया को परिकल्पित करता है अथवा ऐसी प्रक्रिया को अनुध्यात करता है जिससे केवल यही सुनिश्चित नहीं होता कि न्याय किया गया है बल्कि न्याय किया गया प्रतीत होता है। यदि प्रक्रिया यह सुनिश्चित नहीं करती है कि न्याय किया गया प्रतीत होता है तो क्या यह विधि-मान्य है? अतः हमारी राय में इस पृष्ठभूमि में हमें यह अवधारित करना चाहिए कि धारा 4 से अभिप्रेत हैं कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के अधिकारों और दावों के बारे में कोई समझौता किए जाने से पूर्व, दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को किसी प्रकार की सूचना या जानकारी दी जानी चाहिए। हमें वास्तविक सूचना के बारे में और उसे सूचना दिए जाने की रीति के बारे में बताने की आवश्यकता नहीं है जो इस अधिनियम की धारा की आज्ञा और प्रयोजन के अनुरूप हों।

121. इस न्यायालय ने 4 मई, 1989 के अपने आदेश में कहा है कि 14/15 फरवरी, 1989 को आदेश पारित करते समय यह न्यायालय विधि के अनिश्चित वायदे पर निर्भर रहने की अपेक्षा दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को तुरंत राहत देने की आवश्यकता से प्रेरित हुआ था। हमारे अर्थान्वयन के अनुसार, अधिनियम द्वारा यह अपेक्षित है कि इस प्रकार का समझौता, जिससे हमारा संबंध है, किए जाने से पूर्व किस रूप में और किस रीति से सूचना दी जानी है यह बताने की आवश्यकता नहीं है। आगे ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार की सूचना दी जानी अपेक्षित है उस प्रकार की सूचना नहीं दी गई, अतः प्रश्न यह है कि क्या किया जाना है और उसके परिणाम क्या हैं। यदि अधिनियम का अर्थान्वयन इस रूप में न किया जाए कि अधिनियम की धारा 4 के अधीन कोई समझौता करने से पूर्व सूचना दी जानी अपेक्षित थी तो यह अधिनियम अविधिसम्मत होगा। इसके बाद यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सूचना न देने के क्या परिणाम होंगे। इस न्यायनिर्णयन में हमारा विशुद्ध रूप से इस बात से संबंध नहीं है कि समझौता विधिमान्य है या नहीं, जैसा कि हम इससे पहले इंगित कर चुके हैं। किंतु सांविधानिक न्यायनिर्णयन स्थिति की वास्तविकता से या न्यायनिर्णयन के परिणाम से विछिन्न नहीं किया जा सकता। सांविधानिक प्रतिपादनाएं कभी भी शून्य में नहीं की जातीं। ये एक स्थिति विशेष के यथार्थ में जीवन संबंधी समस्याओं के विशेष में होती है। कोई भी सांविधानिक न्यायनिर्णयन तब तक संभव नहीं होता जब तक ऐसे न्यायनिर्णयन के परिणामों की जानकारी न हो। इस प्रकार के मामलों में जिनमें किसी न किसी रूप में व्यापक परिणाम निकलते हैं, कोई भी उससे अलग प्रस्तुत करने में संकोच करेगा जो दूसरों ने एक साथ मिलकर किया है। जैसा कि जस्टिस होम्स ने किया था, यह ध्यान रखना जरूरी है कि कालांतर में अनेक जूझती आस्थायें धराशायी हो गई हैं, और हमें सर्वदा अपूर्ण ज्ञान पर आधारित भविष्यवाणी पर किसी की मुक्ति को दाव पर लगाना होगा। हमारा ज्ञान बदलता रहता है। हमारा असत्य ज्ञान भी बदलता है। यह सही है कि सूचना दी जानी चाहिए थी और सूचना नहीं दी गई है। हमने जो सूचना अनुध्यात की है वह समझौते से पूर्व की सूचना है या जिसे विधिक शब्दावली में विनिश्चयपूर्व सूचना कहते हैं। किंतु स्थिति की तात्कालिकता को ध्यान में रखते हुए और दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को राहत और मदद देने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए तथा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि समझौते के लिए आधार ढूंढने के लिए इतने प्रयास किए गए हैं हमने एक बार तो यह सोचा कि इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विनिश्चयोत्तर सुनवाई अधिनियम की धारा 4 में समाविष्ट नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों की अपेक्षाओं का पर्याप्त अनुपालन माना जा सकता है। जिन कारणों से यह न्यायालय 14/15 फरवरी, 1989 के आदेश पारित करने के लिए प्रेरित हुआ था वे महत्वपूर्ण और अनिवार्य हैं। यदि सूचना दी जाती तो क्या होता ? दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की ओर से काउंसेल ने सुझाव दिया है कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को सुनवाई का अवसर दिया जाता तो वे अन्य बातों के साथ-साथ यह बताते कि समझौते के द्वारा संदत्त की जाने के लिए तय की गई रकम बेहद अपर्याप्त है। हमने इस न्यायालय में उपलब्ध साक्ष्य पर ध्यान दिया है जो इस न्यायालय ने अपने आदेश तारीख 4 मई, 1989 में उस अंक के आधार के रूप में लेखबद्ध किया है जिस पर यह समझौता किया गया है। आगे सुझाव दिया गया है कि यदि समझौते से पूर्व एक अवसर दिया जाता तो दुर्घटना के शिकार व्यक्ति संभवतः यह पुनः बता देते कि आपराधिक दायित्व से उस रीति से मुक्त नहीं हुआ जा सकता

जिससे इस न्यायालय ने 14/15 फरवरी, 1989 को किया है। इसके बाद दलील दी गई कि केंद्रीय सरकार पर भी संयुक्त अपकृत्यकर्ता के रूप में वाद चलाया गया था। फिर भी दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के प्रति किसी भी दायित्व की बाबत कार्यवाही केंद्रीय सरकार के विरुद्ध की जा सकती है, यदि ऐसा दायित्व सिद्ध कर दिया जाता है। किए गए समझौते से या अधिनियम से दायित्व किसी भी तरह न्यून या प्रभावित नहीं होता। दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की ओर से निवेदन किया गया कि यदि अवसर दिया जाता तो वे संभवतः यह बता देते कि केंद्रीय सरकार, मध्य प्रदेश सरकार और यू० सी० आई० एल० के विरुद्ध वाद समझौते द्वारा नहीं निपटाया जा सकता। आगे सुझाव दिया गया था कि यदि अवसर दिया जाता तो यह बता दिया जाता कि यू० सी० आई० एल० पर भी वाद चलाया जाना चाहिए था। न्याय की एक महत्वपूर्ण अपेक्षा यह भी है कि किसी कार्य या अकार्य से प्रभावित लोगों को अपनी बात कहने का अवसर मिलना चाहिए। दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को यह अवसर उस समय मिल चुका है जब इन आवेदनों की सुनवाई की गई और अत्यधिक प्रचार-प्रसार के बाद उनकी सुनवाई की गई। और जब समझौते के विरुद्ध पुनर्विलोकन आवेदन सुना जाएगा तो उन्हें पुनः अवसर दिया जाएगा।

122. दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की ओर से सुझाव दिया गया था कि **एम० सी० मेहता**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत की दृष्टि से यू०सी०सी० अथवा यू०सी०आई०एल० के शिकार व्यक्तियों के विरुद्ध नुकसानी का आधार अन्य किसी भी कंपनी या पक्षकार के विरुद्ध जो वित्तीय दृष्टि से इतना संपन्न या समर्थ नहीं है, इसी प्रकार के मामले में उठाए गए सामान्य नुकसान की अपेक्षा बहुत अधिक होगा। इस बात पर जोर दिया गया कि नुकसानी को भयोपरक बनाने के लिए यह ऐसा समय है जब नुकसानी का परिकलन ऐसी नुकसानी देने के लिए दायी बनाए गए अपराधी की सामर्थ्य के आधार पर किया जाना चाहिए और दिलवाई गई नुकसानी की मात्रा अपराधी की धनीय सामर्थ्य के आधार पर भिन्न-भिन्न होगी, न कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों द्वारा भोगे गए वास्तविक परिणामों के आधार पर। यह विधि की एक अनिश्चित प्रतिज्ञा है। उपलभ्य साक्ष्य के आधार पर और अब तक स्थापित सिद्धांतों के आधार पर इस मानदंड की स्वीकृति की कोई युक्तियुक्त संभावना को भांपना कठिन है और यदि इसे स्वीकार कर लिया जाए, तो भी अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से इस मत को विधि के अनुसार एक न्यायसंगत आधार के रूप में स्वीकार किए जाने में अनेक कठिनाइयां हैं। बहरहाल, ये संभावना के क्षेत्र के अंतर्गत आती हैं।

123. श्री गर्ग, श्री शांति भूषण और सुश्री जयसिंह ने आगे दलील दी थी कि वे सभी विशिष्टियां जिनके आधार पर समझौता किया गया था, सूचना में दी जानी चाहिए थीं, जो समझौते को मंजूर या स्वीकार किए जाने से पूर्व दी जानी अपेक्षित थी। हम इस स्थिति को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। यह आवश्यक नहीं है कि प्रस्तावित समझौते के आधार के लिए अन्य सब विशिष्टियां अंतिम विनिश्चय से पूर्व इस प्रकार के वाद में प्रकट की जानी चाहिएं। जो भी आंकड़े इससे पहले प्रकट किए जा चुके थे, वे हमारी राय में, अपने मत प्रकट करने में समर्थ बनाने के लिए दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के लिए पर्याप्त होंगे, यदि वे ऐसा चाहें।

1 [1987] 3 उम० नि० प० 765=ए० आई० आर० 1987 एस० सी० 1086=(1987) 1 एस० सी० सी० 395=[1987] 1 एस० सी० आर० 819.

नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों की अपेक्षा के अनुसार और अधिक विशिष्टियों का प्रकटन अपेक्षित नहीं है । वस्तुतः अंतिमता से पूर्व इस मामले में ऐसा प्रकटन मामले के न्याय के लिए आवश्यक सभी भावी कार्यवाही को संकट में डाल सकता है ।

124. इसलिए दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को उपलभ्य सामग्री के आधार पर अपने मत प्रकट करने होंगे । दुर्घटना के शिकार व्यक्ति कोई भी अन्य मुद्दा या सामग्री दर्शाने में समर्थ नहीं रहे हैं, जिससे समझौते की विधिमान्यता गलत सिद्ध हो सके । अतः हमारी राय में, यद्यपि सूचना के बिना समझौता पूरी तरह ठीक नहीं है, फिर भी अब तक उपलभ्य सामग्री के आधार पर, हमारी राय है कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के प्रति न्याय तो किया गया है किंतु न्याय किया गया प्रतीत नहीं होता है । इस मामले में अंतर्ग्रस्त कष्टों और समस्याओं की विशालता को देखते हुए हमारी यह भी राय है कि इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि से इस आधार पर समझौते को अपास्त करना अथवा प्रास्थगन में रखना और दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को विनिश्चयोत्तर सूचना देना अंततोगत्वा न्याय के हित में नहीं होगा । यह सही है कि सूचना न देना उचित नहीं था क्योंकि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत इस देश की सांविधानिक व्यवस्था में मूलभूत स्थान रखते हैं । किसी भी व्यक्ति पर या उसके अधिकार पर उसके विचारों को सुनने का अवसर दिए बिना प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए । हम इस बात के प्रति भी सचेत हैं कि न्याय एक मनोवैज्ञानिक उत्कंठा है, जिसमें मनुष्य उसके अधिकार को प्रभावित करने वाले विनिश्चय करने के लिए व्यादिष्ट या बाध्य न्यायमंच या प्राधिकरण के समक्ष अपना दृष्टिकोण पेश करने का अवसर प्राप्त करके अपने दृष्टिकोण की स्वीकृति चाहते हैं । फिर भी विशिष्ट स्थितियों में यह ध्यान रखना होगा कि उसका उल्लंघन न्याय के अनुसार कैसे दूर किया जा सकता है । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में जहां उस समय पर्याप्त अवसर सुलभ होगा जब पुनर्विलोकन आवेदन की सुनवाई सूचना देकर की जाएगी, जैसा कि न्यायालय ने निदेश दिया है, आगे किसी अवसर की आवश्यकता नहीं है, और यह नहीं कहा जा सकता कि अन्याय किया गया है । आखिरकार, बहुत अच्छा काम करने के लिए कभी-कभी थोड़ा-सा गलत करना भी अनुज्ञेय है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह उन दुर्लभ अवसरों में से एक है, यद्यपि अपेक्षित सूचना दिए बिना समझौता करना गलत है । अतः इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में हमारी राय है कि यह निदेश देना कि अब सूचना दी जाए, इस स्थिति में न्याय में फलीभूत नहीं होगा । सारांश यह है कि इस न्यायालय द्वारा आगे कोई पारिणामिक आदेश देना आवश्यक नहीं है । यदि ऐसा पारिणामिक आदेश पारित करना इस न्यायपीठ के लिए आवश्यक होता तो इसकी बाबत ऐसा कोई पारिणामिक आदेश पारित करते ।

125. नुकसानी के निर्धारण और रकम के वितरण के विषय में संबद्ध धाराओं और स्कीम को भी चुनौती दी गई है, जैसा कि पहले संकेत दिया जा चुका है । प्रतिकर के संदाय से संबंधित अधिनियम के उपबंधों और उसके लिए विरचित स्कीम की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया था । यह निवेदन किया गया था कि अधिनियम की धारा 5 केंद्रीय सरकार द्वारा एक ऐसे अधिकारी की नियुक्ति व्यादिष्ट करती है जो दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के कल्याण के लिए आयुक्त कहलाएगा । यह निवेदन किया गया कि यह उस अधिकारी को पर्याप्त न्यायिक प्राधिकार प्रदान नहीं करती और वस्तुतः कार्यपालक प्रकृति के अधिकारी द्वारा स्कीम

के अंतर्गत न्यायनिर्णयन करना छोड़ दिया गया है। बहरहाल, विद्वान् महान्यायवादी का निवेदन था कि अधिनियम के अधीन या इस न्यायालय के आदेशों के अनुसार अनुध्यात प्रतिकर के संवितरण के लिए अधिनियम की धारा 6(3) के अधीन एक सूचना जारी करके उस आयुक्त या अन्य अधिकारियों को उन सब या किन्हीं शक्तियों का प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत किया जाएगा जिनका प्रयोग केंद्रीय सरकार दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को आयुक्त या उपायुक्त के समक्ष ऐसा कोई अतिरिक्त साक्ष्य, जिसे वे पेश करना चाहें, पेश करने के लिए समर्थ बनाने के लिए धारा 5 के अधीन कर सकेगी। हम ऐसा निदेश देते हैं ऐसी समुचित अधिसूचना जारी की जाए। हम यह भी निदेश देते हैं कि स्कीम के अंतर्गत उपायुक्त द्वारा किया जाने वाला प्रवर्गीकरण समुचित न्यायिक प्राधिकरण के समक्ष अपीलनीय होना चाहिए और स्कीम का तदनुसार उपांतरण किया जाना चाहिए। हम यह पुनः दोहराते हैं कि प्रवर्गीकरण का आधार और वास्तविक प्रवर्गीकरण न्याय्य और न्यायिक दृष्टि से पुनर्विलोकनीय होने चाहिएं, अधिनियम और स्कीम के उपबंधों को इस प्रकार पढ़ा जाना चाहिए। स्कीम में संशोधन करने के बारे में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की ओर से बहुत सारे निवेदन किए गए थे। उल्लिखित को छोड़ कर और की सीमा तक हमारी राय में स्कीम के अलग-अलग खंडों में टांका लगाना असुरक्षित होगा। यह स्कीम एक एकीकृत संपमर्ण स्कीम है और इसका टुकड़ों में संशोधन करना उचित नहीं होगा। बहरहाल, हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि प्रवर्गीकरण और दावे की बाबत प्राधिकारियों को नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों तथा न्यायिककल्प रूप से कार्यवाही करनी चाहिए।

126. जैसा कि इससे पहले कहा जा चुका है, इस बारे में हमारे समक्ष काफी तर्क दिए गए कि क्या समझौते का यह खंड कि दांडिक कार्यवाहियां आगे न चलाई जाएं और वे अभिखंडित रहेंगी, विधिमान्य है अथवा अविधिमान्य। हम यह अभिनिर्धारित कर चुके हैं कि ये अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों का भाग नहीं हैं, इसलिए 14/15 फरवरी, 1989 के आदेश में इस पहलू पर आदेश अधिनियम के अधीन आदेश नहीं है। अतः अधिनियम की विधिमान्यता के प्रश्न पर यह पहलू उत्पन्न नहीं होता। क्या दांडिक कार्यवाहियों का समझौता अथवा दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करना समझौते के लिए विधिमान्य विचारणा हो सकती है अथवा क्या यह एक ऐसी विचारणा थी या नहीं, एक ऐसा विषय है जिस पर समझौते का पुनर्विलोकन करने वाले न्यायालय को विनिश्चय करना होगा।

127. सारांश में, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि यह अधिनियम इस रीति से सांविधानिक है जिस रूप में हम इसे पढ़ते हैं। यह इस धारणा पर अग्रसर होता है कि जब तक दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के दावे को अपराधियों, अर्थात् यू०सी०सी० और यू०सी०आई० एल० से समझौते द्वारा या न्यायनिर्णयन द्वारा वसूल या प्राप्त नहीं हो जाते और जब तक कि उनकी बाबत कार्यवाहियां जारी रहती हैं, तब तक केंद्रीय सरकार को दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के लिए अंतरिम प्रतिकर या भरणपोषण भत्ता संदत्त करना चाहिए। अधिनियम की धारा 4 की दृष्टि से समझौता करते समय दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के विचारों को ध्यान में रखना चाहिए और उनका सम्मान करने के प्रयोजन के लिए कोई समझौता करने से पहले समुचित सूचनाएं आवश्यक थीं। फिर भी कुछ मामलों में विनिश्चयोत्तर सूचना पर्याप्त हो सकती है, किंतु इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में 4 मई, 1989 के इस न्यायालय

1989(12) eILR(PAT) SC 1

के आदेश में वर्णित परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तथा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि और अधिक अतिरिक्त आंकड़े और तथ्य दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के पास उपलभ्य नहीं हैं, जो समझौते के आधार का खंडन करने के लिए लाभप्रद रूप से और सार्थक ढंग से पेश किए जा सकें तथा साथ ही इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों ने अपना पक्षकथन रख दिया था या उनकी ओर से उनके विचार इन कार्यवाहियों में पेश किए गए थे और उन्हें लंबित पुनर्विलोकन कार्यवाहियों में और भी अवसर मिलेगा, विनिश्चयोत्तर सुनवाई देने से कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। इस पहलू पर आगे कोई आदेश आवश्यक नहीं है। प्रतिकर के संदाय और प्रवर्गीकरण विषयक धाराओं को उल्लिखित रीति से कार्यान्वित किया जाना चाहिए।

128. यह अधिनियम दुखद औद्योगिक गैस विभीषिका के शिकार मूक, कमजोर, विनम्र और दरिद्र लोगों को राहत और सांत्वना प्रदान करने के श्रेष्ठ वचन पर सोचा गया था। इस अधिनियम ने कमजोर और थके-मांदे, चौकस और असहाय लोगों के मन में ऊंची आशाएं जगाई थीं। अधिनियम से मानवता की आशा पैदा हुई थी। अधिनियम का कार्यान्वयन न्याय के साथ होना चाहिए। कदाचित जिस रूप में दुर्घटना के शिकार व्यक्ति स्थित थे उस रूप में उनके साथ न्याय किया जा चुका है। किंतु यह भी सही है कि न्याय किया गया प्रतीत नहीं होता है। यह एक भारी कमी है। यह अंशतः इस तथ्य के कारण है, हम जैसा समझ पाये हैं, कि प्रक्रिया का कड़ाई से पालन नहीं किया गया और अंशतः इस वातावरण के कारण भी जो देश में उत्पन्न हो गया था। न्यायिक प्रक्रिया में लोगों की आस्था भंग करने और इस न्यायालय की विश्वसनीयता को कम करने के प्रयास किए गए थे। यह दुर्भाग्यपूर्ण था। कदाचित यह भ्रमित जन-मत के कारण और इस तथ्य के भी कारण था कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को समझौता करते समय आरंभ में विश्वास में नहीं लिया गया था। यह एक ऐसा तत्व है जो नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के पालन की आवश्यकता पर जोर देता है। न्यायपालिका की विश्वसनीयता उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितना दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के कष्टों का निवारण और उतनी महान है जितने वे। आशा है, इन न्यायनिर्णयों से वह विश्वसनीयता पुनः स्थापित होगी। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत हमारे सांविधानिक ढांचे में अखंड रूप से समाविष्ट हैं और उनकी पुरातन गरिमा और प्रधानता को स्थिति या मामले-विशेष की तात्कालिकता से विलुप्त नहीं होने दिया जा सकता और न होने दिया जाना चाहिए। इस न्यायालय को हमेशा समस्त न्यायनिर्णयों में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के पालन की श्रेष्ठता पर बल देना चाहिए। किंतु साथ ही इन्हें विशिष्ट परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मामले-विशेष में एक विशिष्ट रीति से लागू किया जाना चाहिए। अतः यह दोहराना आवश्यक है कि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों से किए गए वायदे और उनके दिलों और मन में जगाई गई आशाएं तभी कुछ सीमा तक पूरी की जा सकती हैं जब वसूल की गई रकम उल्लिखित रीति से स्कीम के अनुसार दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों में तेजी से वितरित की जाए। यह कुछ सीमा तक कष्ट निवारण होगा। यह दोहराना भी आवश्यक है कि विधि के ऐसे सिद्धांत बनाने का प्रयास किया जाए जो सरकार और प्राधिकारियों को ऐसी सामग्री और चीजों में व्यापार करना अनुज्ञात करने के लिए मार्गदर्शन प्रदान कर सकें जिनके खतरनाक परिणाम हो सकते हैं। ऐसा पर्याप्त विनिर्दिष्ट रक्षोपायों के अंतर्गत किया जाना चाहिए, विशेष रूप से भारत में व्यापार करने वाले और राष्ट्रीय निगमों की दशा में। इस दिशा में जागरूकता आरंभ हो गई है। आशा है कि इस

जागरूकता के बाद कार्यवाही होगी। यह दोहराना भी आवश्यक है कि नुकसानी से संबंधित और अंतरित नुकसानी या प्रतिकर का इस प्रकार के शिकार व्यक्तियों को संदाय करने से संबंधित विधि का समुचित अभिकरणों द्वारा गंभीरतापूर्वक और वैज्ञानिक तरीके से विवेचन किया जाना चाहिए।

129. भोपाल गैस विभीषिका और उसके दुष्परिणामों से ऐसे कुछ सिद्धांत और मानदंड अधिकथित करने की आवश्यकता बलवती हो जाती है जिनका खतरनाक तत्वयुक्त सामग्री वाले उद्योग चलाने के लिए अनुज्ञा या अनुज्ञप्तियां प्रदान करने से पूर्व, सरकार अनुसरण करे। अत: सरकार को स्वयं या विशेषज्ञ समिति द्वारा इस समस्या पर विचार करवाना चाहिए कि किन शर्तों पर भारत में उद्योग चलाने के लिए प्रभावी अनुज्ञप्तियां और/या अनुज्ञा प्रदान की जाएगी तथा इन शर्तों का प्रवर्तन सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त रक्षोपाय बनाए जाने चाहिए और प्रवर्तन की स्कीम इंगित की जानी चाहिए। सरकार को ऐसी अनुज्ञप्तियां या अनुज्ञायें मंजूर करने की पूर्व शर्त के रूप में उद्योगों द्वारा एक ऐसी निधि बनाए जाने पर आग्रह करना चाहिए जो ऐसी औद्योगिक संक्रियाओं के उपेक्षापूर्ण कार्य से हुई दुर्घटना या विभीषिका की दशा में रिसाव या नुकसान होने की दशा में अथवा ऐसी घटनाओं को निवारित करने वाले उपायों को सुनिश्चित न करने की दशा में उक्त निधि में से नुकसानी के संदाय के लिए उपलभ्य हों। सरकार को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि पक्षकार परिकलन के लिए पृथक् रूप से बनाई गई प्रक्रिया द्वारा उक्त नुकसानी में से ऐसी नुकसानी का संदाय करने के लिए तथा उपेक्षापूर्ण कृत्य के शिकार या दुखी व्यक्तियों को लम्बी और विलंबित प्रक्रिया में तंग किए बिना नुकसानी के संदाय के लिए सहमत हों। विशेष प्रक्रिया का उपबंध किया जाना चाहिए और उद्योगों को अनुज्ञप्ति की मंजूरी की शर्त के रूप में ऐसी प्रक्रिया का पालन करने या कानूनी मध्यस्थ की बात मानने के लिए सहमत होना चाहिए। रिसाव और दुर्घटना की दशा में नुकसानी का आधार किए गए नुकसान की प्रकृति, उसके परिणाम और संदाय करने में पक्षकारों की योग्यता और सामर्थ्य को ध्यान में रखते हुए, कानूनी तौर पर नियत किया जाना चाहिए। इसमें भयोपरक या दंडात्मक नुकसानी का भी उपबंध किया जाना चाहिए जिसका आधार उचित विशेषज्ञ समिति द्वारा या सरकार द्वारा बनाया जाना चाहिए। इस प्रयोजन के लिए सरकार को ऐसे निकाय से मामले की छानबीन करवानी चाहिए जैसी वह आवश्यक समझे, जैसे विधि आयोग या अन्य सक्षम निकाय। यह भविष्य के लिए महत्त्वपूर्ण है।

130. इस मामले ने कुछ समय ले लिया है। इसमें विस्तृत बहस की गई है। हम उन काउंसेलों के आभारी हैं जिन्होंने इन सब मामलों में सहायता दी है। हम इसका उल्लेख कर चुके हैं। विनिश्चय सुनाने में हमने कुछ समय लिया है। हम चाहते थे कि कुछ समय बीत जाए जिससे कि तात्कालिक आवेश ठंडा पड़ जाए और उचित वातावरण पुन: स्थापित हो हो जाए। कहा जाता है कि न्याय हर व्यक्ति को उसका देय देने के लिए एक अनवरत और स्थायी साधन है। किंतु किसी स्थिति-विशेष में और परिस्थिति-विशेष में किसी व्यक्ति का देय क्या है, यह निर्धारण और समायोजन का विषय है। कहा जाता है कि न्याय तुला है। तुला के दो पलड़े हमेशा समान न्याय के प्रतीक रहे हैं, किंतु जैसा कि लार्ड डैनिंग ने **जोन्स** बनाम **नेशनल कोल बोर्ड लिमिटेड**[1] में कहा था—भले ही एक के बाद एक अधिवक्ता पलड़ों में वजन

---

[1] (1957) 2 क्वीन्स बेंच 55, 61.

1989(12) eILR(PAT) SC 1

रखते जाएं—बारीकी से परिकलित कम या अधिक—किंतु अंत में विनिश्चय न्यायाधीश करता है कि तुला का कौन-सा पलड़ा भारी है, भले ही वह बहुत मामूली-सा हो। ऐसा प्रत्येक मामले में और प्रत्येक स्थिति में होता है।

131. इन आवेदनों का निपटार उस रीति में और निदेश के साथ किया जाता है जिसका हम ऊपर संकेत कर चुके हैं।

आवेदनों का निपटारा तदनुसार किया गया।

न्या० सिंह :

132. मैंने अपने विद्वान् बंधु मु० न्या० सव्यसाची मुखर्जी के प्रस्तावित निर्णय का परिशीलन कर लिया है। मैं उससे सहमत हूं किंतु कुछ पहलुओं पर स्वयं अपनी राय व्यक्त करना आवश्यक समझता हूं।

133. पांच वर्ष पूर्व वर्ष 1984 के 2 और 3 दिसंबर की रात्रि के बीच, मानवता के अभिलिखित इतिहास में त्रासदतम औद्योगिक विभीषिकाओं में से एक मध्य प्रदेश राज्य के भोपाल नगर में घटित हुई, जिसके परिणामस्वरूप अनेकों व्यक्तियों की मृत्यु हो गई और हजारों व्यक्ति जीवन भर के लिए निःशक्त और शारीरिक रूप से अशक्त हो गए। भोपाल में और उसके आसपास के परिवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और वायु, जल तथा पर्यावरण प्रदूषित हो गया। उसके पूर्ण परिमाण को अभी अवधारित किया जाना है। यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन (संयुक्त राज्य अमरीका का एक पारदेशीय निगम) की समनुषंगी कंपनी—यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड (यू०सी०आई०एल०) भोपाल नगर में स्थित अपने संयंत्र में नाशिकीटमार (पेस्टीसाइड) का विनिर्माण करती रही है। पेस्टीसाइड के विनिर्माण की प्रक्रिया में, यू० सी० आई० एल० ने एक अत्यधिक विषाक्त (विषैली) गैस मेथिल आइसोसाइअनेट का, जो सामान्यतः एम० आई० सी० के रूप में ज्ञात है, स्टाक संगृहीत किया था। त्रासदी (दुर्घटना) की रात को संयंत्र से एम०आई०सी० सारभूत मात्रा में लीक हुई (रिसी), जिसके परिणामस्वरूप संयंत्र में कार्य करने वाले और उसके आसपास रहने वाले अनेकों व्यक्तियों की मृत्यु हो गई और अनेकों को बेहद तकलीफ और मुसीबत हो गई। इस अभूतपूर्व विपत्ति ने खतरनाक रसायनों के उत्पादन में, (यद्यपि औद्योगिक विकास के प्रयोजन के लिए) अंतर्निहित खतरों को दर्शित कर दिया। संयुक्त राज्य अमरीका और इस देश में भी यू० सी० सी० के विरुद्ध नुकसानी के लिए अनेक सिविल वाद फाइल किए गए। संयुक्त राज्य अमरीका में फाइल किए गए मामले न्या० कीनन द्वारा भारतीय न्यायालयों को वापस निर्देशित (प्रेषित) किए गए, जिनके विवरण मेरे विद्वान् बंधु मु० न्या० मुखर्जी के निर्णय में अंतर्विष्ट हैं। चूंकि इस विपत्ति से पीड़ित व्यक्ति अधिकांशतः निर्धन, अज्ञान तथा अशिक्षित हैं और संयुक्त राज्य अमरीका के न्यायालयों या भारतीय न्यायालयों के समक्ष नुकसानी के लिए अपने वाद चलाने में समर्थ नहीं है, अतः संसद् ने भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम [भोपाल गैस लीक डिजास्टर (प्रोसेसिंग ऑफ कलैम्स) ऐक्ट] 1985 (जिसे इसमें इसके पश्चात् अधिनियम कहा गया है) अधिनियमित किया, जिसके द्वारा भारत संघ को अलग-अलग दावेदारों के स्थान पर इस संबंध में वाद का संचालन अपने हाथ में लेने के लिए सशक्त किया गया। वे तथ्य और परिस्थितियां, जिनके परिणामस्वरूप इस न्यायालय के समक्ष दावों को तय

किया गया, मु० न्या० मुखर्जी के निर्णय में विस्तारपूर्वक पहले ही वर्णित की जा चुकी हैं और इसलिए मेरे लिए उन तथ्यों और परिस्थितियों के प्रति निर्देश करना आवश्यक नहीं है। हमारे समक्ष वर्तमान याचिकाओं में उक्त अधिनियम की संवैधानिकता को चुनौती दी गई है। यदि अधिनियम को असंवैधानिक घोषित कर दिया जाता है, तो वह समझौता, जो इस न्यायालय में अभिलिखित किया गया और जिसके अधीन यू० सी० सी० भोपाल गैस दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के दावों को पूरा करने के लिए 750 करोड़ रुपए की राशि पहले ही जमा कर चुका है, निरर्थक हो जाएगा और वह धन, जो इस न्यायालय की रजिस्ट्री (रजिस्ट्रार-कार्यालय) में पहले से ही जमा कराया जा चुका है, घटना के शिकार व्यक्तियों की राहत (अनुतोष) के लिए उपलब्ध नहीं होगा। अनेक दिनों तक हमारे समक्ष लंबे और ब्यौरेवार तर्क दिए गए तथा उन पर सावधानीपूर्वक विचार करने और विधिक तथा सांविधानिक पहलुओं, विशेष रूप से गैस दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की तुरंत सहायता और राहत की आवश्यकता, को ध्यान में रखते हुए, जिसमें पहले ही काफी विलंब हो गया है, हमने अधिनियम की संवैधानिकता को कायम रखा है। मु० न्या० मुखर्जी ने विस्तृत और व्यापक निर्णय दिया है, जिससे मैं ससम्मान सहमत हूं। तथापि, मैं उन उपायों के संबंध में कुछ शब्द कहना आवश्यक समझता हूं, जो भविष्य में ऐसी दुर्घटना को रोकने के लिए और औद्योगिक दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को दीर्घ कष्ट और दुःख से बचाने के लिए कार्यपालिका और विधायिका (विधानमंडल) द्वारा किए जाने चाहिए।

134. हमारा देश एक विकासशील देश है। विज्ञान, प्रौद्योगिकी, उद्योग और कृषि के क्षेत्र में हमारे राष्ट्रीय संसाधनों का विकास किया जाना है। औद्योगिक विकास की आवश्यकता के परिणामस्वरूप स्वदेशी कंपनियों और उपक्रमों तथा पारदेशीय निगमों द्वारा भी अनेक संयंत्र और कारखाने स्थापित किए गए हैं। उनमें से अनेक उद्योग खतरनाक या अंतर्निहिततः खतरनाक कार्यकलापों में लगे हुए हैं, जो कारखानों में कार्य करने वाले या उनके आसपास के क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों के जीवन, स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए संभाव्य संकट प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि ऐसे कारखानों और संयंत्रों का कार्यकरण हमारे देश की अनेक विधियों, अर्थात् कारखाना अधिनियम, औद्योगिक विकास और विनियमन अधिनियम तथा कर्मकार प्रतिकर अधिनियम आदि, द्वारा विनियमित है, तथापि बाह्य व्यक्तियों को, जो किसी औद्योगिक दुर्घटना के कारण पीड़ित हों, प्रतिकर और नुकसानी का उपबंध करने वाला कोई विशेष विधान नहीं है। जैसी कि इस समय विधि है, प्रभावित व्यक्तियों को प्रतिकर और नुकसानी अभिप्राप्त करने के लिए सिविल न्यायालयों में जाना होता है। सिविल न्यायालयों में, प्रतिकर या नुकसानी तथा उद्यम के दायित्व का अवधारण **रिलैंड** बनाम **फ्लैचर**[1] वाले मामले में हाउस ऑफ लार्ड्स द्वारा अधिकथित पुराणखंडी सिद्धांतों की श्रृंखला द्वारा आबद्ध है। उसमें अधिकथित सिद्धांतो द्वारा उद्यम से पर्याप्त नुकसानी अभिप्राप्त करना कठिन बना दिया गया है और वह भी उद्यम की उपेक्षा साबित किए जाने के पश्चात् ही। यह विधिक स्थिति तब तक बनी रही, जब तक कि **एम० सी० मेहता** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में, जो सामान्यतया श्रीराम ओलियम गैस लीक वाले मामले के रूप में जाना जाता है, इस

---

1 [1868] एल० आर० 3 एच० एल० पृ० 330.

2 [1987] 1 एस० सी० सी० 420.

न्यायालय के संविधान-पीठ ने अत्यधिक औद्योगीकृत अर्थतंत्र में उद्भूत होने वाली नई समस्याओं से पर्याप्त रूप से निपटने के लिए नए सिद्धांत और मानक प्रतिपादित और अधिकथित किए। इस न्यायालय ने ऊपर निर्दिष्ट **रिलैंड बनाम फ्लैचर**[1] वाले मामले में अधिकथित नियम से विचलन करते हुए, खतरनाक या अन्तर्निहितत: खतरनाक कार्यकलाप करने वाले उद्यमों के दायित्व के संबंध में सिद्धांत अधिकथित करने में न्यायिक नवाचार आरंभ किया। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया—

> "हमारा यह मत है कि ऐसे उद्यम का, जो खतरनाक या अंतर्निहितत: खतरनाक उद्योग में लगा हुआ है, जो कारखाने में काम करने वाले और आसपास के क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों के स्वास्थ्य और सुरक्षा को संभाव्य खतरा प्रस्तुत करता है, यह सुनिश्चित करने का समाज के प्रति आत्यंतिक और अप्रत्यायोज्य कर्तव्य है कि किसी भी व्यक्ति का उस कार्यकलाप की, जो उसने शुरू किया है, खतरनाक या अंतर्निहितत: खतरनाक प्रकृति के परिणामस्वरूप कोई नुकसान नहीं होता है। ऐसे उद्यम को यह व्यवस्था करने की बाध्यता के अधीन माना जाना चाहिए कि खतरनाक या अंतर्निहितत: खतरनाक कार्यकलाप जिसमें वह लगा हुआ है, सुरक्षा के उच्चतम मानकों के अनुसार संचालित किया जाना चाहिए और यदि ऐसे कार्यकलाप के परिणामस्वरूप कोई नुकसान होता है, तो उद्यम को ऐसे नुकसान के लिए क्षतिपूर्ति करने के लिए आत्यंतिक रूप से दायी माना जाना चाहिए और उद्यम के लिए यह कहना उचित उत्तर नहीं होगा कि उसने सभी प्रकार की युक्तियुक्त सतर्कता बरती थी और नुकसान उसकी ओर से किसी उपेक्षा के बिना हुआ था। चूंकि वे व्यक्ति, जिन्हें उद्यम द्वारा चलाए जाने वाले खतरनाक या अंतर्निहित रूप से खतरनाक कार्यकलाप के कारण नुकसान हुआ, किसी पदार्थ या किसी अन्य संबद्ध चीज की खतरनाक तैयारी से संक्रिया की प्रक्रिया को पृथक् करने की स्थिति में नहीं होंगे, जिससे नुकसान हुआ है, अत: उद्यम को खतरनाक या अंतर्निहितत: खतरनाक कार्यकलाप चलाने की सामाजिक कीमत के भाग के रूप में ऐसा नुकसान कारित करने के लिए पूर्णत: दायी माना जाना चाहिए। यदि उद्यम को, उसके फायदे के लिए खतरनाक या अंतर्निहितत: खतरनाक कार्यकलाप चलाने के लिए अनुज्ञात किया जाता है, तो विधि को यह उपधारणा करनी ही चाहिए कि ऐसी अनुज्ञा इस अर्थ में सशर्त है कि उद्यम अपने ऊपरी खर्चों की समुचित मद के रूप में ऐसे खतरनाक या अंतर्निहितत: खतरनाक कार्यकलाप के कारण होने वाली किसी दुर्घटना की कीमत को सम्मिलित करेगा। प्राइवेट लाभ के लिए ऐसे खतरनाक या अंतर्निहितत: खतरनाक कार्यकलाप को केवल इस शर्त पर सहन किया जा सकता है कि ऐसे खतरनाक या अंतर्निहितत: खतरनाक कार्यकलाप में लगा हुआ उद्यम उन सब लोगों की क्षतिपूर्ति करेगा जो ऐसे खतरनाक या अंतर्निहितत: खतरनाक कार्यकलाप चलाए जाने के कारण पीड़ित होते हैं, और इस बात का विचार नहीं किया जाएगा कि वह सावधानीपूर्वक चलाया गया है या नहीं। यह सिद्धांत इस आधार पर भी स्वीकार्य है कि एकमात्र उद्यम को ही खतरों या संकटों का पता लगाने और उनके विरुद्ध सतर्कता बरतने और

[1] [1868] एल० आर० 3 एच० एल० पृ० 330.

संभाव्य खतरों के विरुद्ध चेतावनी देने का साधन प्राप्त होता है। अतः हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि जहां कोई उद्यम खतरनाक या अंतर्निहितत: खतरनाक कार्यकलाप में लगा हुआ है और ऐसे खतरनाक या अंतर्निहितत: खतरनाक कार्यकलाप के चलाए जाने में दुर्घटना के कारण किसी व्यक्ति को नुकसान पहुंचता है, जिसके परिणामस्वरूप उदाहरणार्थ विषाक्त गैस रिसती है, उद्यम ऐसे सभी व्यक्तियों की क्षतिपूर्ति करने के लिए पूर्णत: दायी है, जो दुर्घटना से प्रभावित होते हैं और ऐसा दायित्व उन अपवादों में से किसी भी अपवाद के अधीन नहीं है जो रिलैंड्स **बनाम** फ्लैचर वाले मामले में अधिकथित नियम के अधीन कठोर (पूर्ण) दायित्व के अपकारी सिद्धांत के संदर्भ में लागू होते हैं।"

इस प्रकार अधिकथित विधि में खतरनाक या अंतर्निहितत: खतरनाक कार्यकलाप चलाने वाले उद्यम के दायित्व के संबंध में पुराणखंडी सिद्धांतों से महत्त्वपूर्ण विचलन किया गया है।

135. प्रस्तुत मामले में इस बात के बारे में कोई विवाद नहीं है कि यू० सी० सी० की समनुषंगी कंपनी, यू० सी० आई० एल० नाशिकीटमार (प्रेस्टीसाइड) के विनिर्माण का कार्यकलाप कर रही थी और उस प्रक्रिया में उसने एक अत्यधिक विषाक्त और खतरनाक गैस—एम० आई० सी० स्टोर की थी, जिसके रिसने से न केवल भोपाल में और उसके आसपास मानव-जीवन को बल्कि पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं को भी बेहद नुकसान हुआ। ऊपर निर्दिष्ट **एम० सी० मेहता**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को देखते हुए, भोपाल में और उसके आसपास मनुष्यों और प्रकृति को कारित नुकसान के लिए यू० सी० सी० के दायित्व के संबंध में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है। समझौता करते समय, यू० सी० सी० ने अपना दायित्व स्वीकार किया है और उस कारण उसने इस न्यायालय में 750 करोड़ रुपये की राशि जमा की है। याचियों के काउंसेल ने समझौते के अधीन प्रतिकर की रकम की अपर्याप्तता को चुनौती दी किंतु हमारे लिए उस प्रश्न पर कोई राय व्यक्त करना आवश्यक नहीं है क्योंकि एक अन्य संविधान पीठ के समक्ष पुनर्विलोकन याचिकाएं लंबित हैं और विशेष रूप से इसलिए कि वर्तमान मामलों में हमारा संबंध केवल अधिनियम की संवैधानिकता से ही है।

136. भोपाल गैस दुर्घटना से तृतीय विश्व के देशों में बहुराष्ट्रीय निगमों के कार्यकरण के संबंध में अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उद्भूत हुए हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात्, विश्व के अनेक भागों में औपनिवेशिक शासन समाप्त हो गया क्योंकि अनेक राष्ट्रों ने विदेशी शासन से स्वतंत्रता प्राप्त की। राजनीतिक प्रभुत्व तो समाप्त हो गया किंतु नवजात राष्ट्र वित्त और विकास के अभाव के कारण विभिन्न समस्याओं से घिर गए। अनेक बहुराष्ट्रीय और पारदेशीय निगमों ने, स्वयं अपने निबंधनों पर उन देशों में अपने उद्योग स्थापित करके, वित्त और तकनीकी जानकारी प्रदान करने के लिए अव-विकसित (कम विकसित) और विकासशील देशों को अपनी सेवाओं की प्रस्थापना (पेशकश) की, जिससे पारदेशीय निगमों के कार्यकरण पर नियंत्रण से संबंधित समस्याएं उत्पन्न हुईं। अनेक मामलों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने कम विकसित राष्ट्रों का शोषण किया और कुछ मामलों में, उन्होंने मेजबान देशों की राजनीतिक

---

1 [1986] 2 उम० नि० प० 765=[1987] 1 एस० सी० आर० 819.

1989(12) eILR(PAT) SC 1

और आर्थिक नीतियों को प्रभावित किया, जिससे उन देशों की संप्रभुता ध्वस्त हुई। बहुताष्ट्रीय निगमों के विरुद्ध मेजबान देशों में अपने हितों की पूर्ति के लिए अनुचित और भ्रष्ट साधन अपनाने के लिए शिकायतें हुई हैं। चूंकि यह एक विश्वव्यापी सिलसिला था, अतः संयुक्त राष्ट्र संघ ने विचार करने के लिए मामला अपने हाथ में ले लिया। संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक और सामाजिक परिषद् ने पारदेशीय निगमों से संबंधित विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक पहलुओं पर शोध करने के लिए पारदेशीय निगमों पर एक आयोग स्थापित किया। सावधानीपूर्वक और विस्तृत अध्ययन के पश्चात्, आयोग ने पारदेशीय निगमों के लिए आचार संहिता विकसित करने के लिए 1985 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। संहिता 1986 में अंगीकृत की गई, जिस पर विश्व के अनेक देशों ने हस्ताक्षर किए हैं। यद्यपि उसे अभी तक अंतिम रूप नहीं दिया गया है। उक्त संहिता द्वारा अव-विकसित और विकासशील देशों में उद्यम चलाने वाले पारदेशीय निगमों के लिए आचरण की संहिता के सिद्धांत प्रतिपादित करते हुए, एक व्यापक लिखत प्रस्तुत की गई है। संहिता में पारदेशीय निगमों और मेजबान देशों के प्रतिस्पर्धी हितों के बीच संतुलन रखने के लिए आशयित स्वामित्व और नियंत्रण से संबंधित उपबंध अंतर्विष्ट हैं। उसमें राजनीतिक, आर्थिक, वित्तीय, सामाजिक और विधिक प्रश्नों पर विस्तार से चर्चा की गई है। संहिता में मेजबान देशों को जानकारी के प्रकटीकरण का उपबंध किया गया है और उसमें राष्ट्रीयकरण और प्रतिकर, अंतर्राष्ट्रीय विधि की बाध्यताओं तथा न्यायालयों की अधिकारिता के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत भी अधिकथित किए गए हैं। संहिता में मेजबान राज्यों और पारदेशीय निगमों से संबद्ध निगम कंपनी के बीच विवादों के तय किए जाने के लिए उपबंध भी अधिकथित किए गए हैं। उसमें यह सुझाव दिया गया है कि ऐसे विवाद मेजबान देशों के राष्ट्रीय न्यायालयों या प्राधिकरणों के समक्ष प्रस्तुत किए जाने चाहिए, जब तक कि पक्षकारों के बीच सौहार्दपूर्वक समझौता नहीं हो जाता। उसमें संविदाओं से उद्भूत होने वाले विवादों के तय किए जाने के लिए विधि के विकल्प और साधनों का उपबंध किया गया है। संहिता में दुर्घटना और विपत्ति से उद्भूत होने वाले विवादों के तय किए जाने और पारदेशीय निगमों के दायित्व तथा न्यायालयों की अधिकारिता के अवधारण के लिए भी मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित किए गए हैं। संहिता उन देशों के लिए आबद्धकर है, जो उसे प्ररूपिकतः स्वीकार करते हैं। हमारे समक्ष यह कथन किया गया कि भारत ने संहिता को स्वीकार किया है। यदि ऐसा है तो यह आवश्यक है कि सरकार को संहिता के उपबंधों को विनिर्दिष्ट कार्यरूप में परिणत करने के लिए और समुचित विधान द्वारा समर्थित और किसी दुर्घटना या विपत्ति को रोकने के लिए मशीनरी प्रवृत्त करने वाली नीतियों को कार्यान्वित करने के लिए तथा किसी औद्योगिक विपत्ति से पीड़ित व्यक्तियों के कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी उपाय करना चाहिए।

137. मानव-अधिकारों के हमारे राष्ट्रीय आयामों के संदर्भ में, संविधान के अनुच्छेद 21, 48(क) और 51(छ) द्वारा जीवन, स्वतंत्रता, प्रदूषणमुक्त वायु और जल का अधिकार प्रदत्त किया गया है। राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह इन गारंटीकृत सांविधानिक अधिकारों को संरक्षण प्रदान करने के लिए प्रभावी कदम उठाए। हमारी अपनी संप्रभुता को ध्यान में रखते हुए, पारदेशीय निगमों पर संयुक्त राज्य आचरण संहिता के खंड 9 और 13 द्वारा यथाउपदर्शित, पारदेशीय आयाम और मानक विकसित करके इन अधिकारों को एकीकृत और स्पष्ट किया जाना चाहिए। हमारे लोगों की गरिमा और संप्रभुता को कायम रखते हुए,

अंतरराष्ट्रीय बाध्यताओं के विकासशील मानकों को सम्मान दिया जाना चाहिए और राज्य को विधियां अधिनियमित करके नागरिकों के सांविधानिक अधिकारों को रक्षोपाय प्रदान करने के लिए प्रभावी कदम उठाने चाहिए। इस प्रकार बनाई गई विधियों में, जीवन स्वतंत्रता तथा पर्यावरण और परिवेश की सुरक्षा से संबंधित सांविधानिक अधिकारों को सुनिश्चित करते हुए भारतीय भूमि पर उद्योग चलाने के लिए नियम और मानक विहित करते हुए, पारदेशीय निगमों को अनुज्ञप्ति मंजूर करने हेतु शर्तों का उपबंध किया जा सकता है जिससे कि लोग स्वस्थ और स्वच्छ जीवन व्यतीत करने में समर्थ हो सकें। पारदेशीय निगम को हमारे देश की विधियों का अनुसेवी और दायी बनाया जाना चाहिए तथा दायित्व केवल संबद्ध कंपनी तक ही निर्बंधित नहीं किया जाना चाहिए बल्कि मुख्य निगम को भी मनुष्यों या परिवेश को कारित किसी भी नुकसान के लिए दायी बनाया जाना चाहिए। विधि में यह अपेक्षा अवश्य ही की जानी चाहिए कि पारदेशीय निगम ऐसी नुकसानी का संदाय करने के लिए सहमत हो, जो उसके अधीन गठित कानूनी अभिकरणों और फोरमों (न्यायालयों) द्वारा अवधारित की जाए तथा दुर्घटना से पीड़ित व्यक्तियों को लंबी मुकदमेबाजी के चक्कर में न पड़ना पड़े। विद्यमान सिविल विधि के अधीन, नुकसानी का अवधारण लंबी मुकदमेबाजी के पश्चात् सिविल न्यायालयों द्वारा किया जाता है, जिससे कि नुकसानी अभिनिर्णीत करने का प्रयोजन ही नष्ट हो जाता है। इस स्थिति से निपटने के लिए, विलंब से बचने के लिए और पीड़ितों को तुरंत राहत सुनिश्चित करने के लिए, हम यह सुझाव देंगे कि संसद् द्वारा बनाई गई विधि में, औद्योगिक विभीषिका या दुर्घटना से पीड़ित व्यक्तियों को प्रतिकर अवधारित करने के लिए विशेष प्रक्रिया द्वारा विनियमित अधिकरणों के गठन के लिए उपबंध किया जाना चाहिए, जिसके विरुद्ध अपील, अधिकरण द्वारा अवधारित रकम के निक्षेप के पश्चात्, विधि के प्रश्न के सीमित आधार पर ही इस न्यायालय को हो सकेगी। विधि में कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान दुर्घटना से पीड़ित व्यक्तियों को अंतरिम अनुतोष (राहत) का भी उपबंध किया जाना चाहिए। इन उपायों से खतरनाक उद्यमों से पीड़ित होने वाले व्यक्तियों का दु:ख और कष्ट कम होगा।

138. इस मामले का एक अन्य पहलू भी है, जिस पर सरकार और संसद् द्वारा विचार किए जाने की आवश्यकता है। हमारे देश में औद्योगिक विकास और उसमें अंतर्वलित खतरे कानूनी 'औद्योगिक विभीषिका निधि' (इंडस्ट्रियल डिजास्टर फंड) गठित करने की अनिवार्य आवश्यकता प्रस्तुत करते हैं, जिसके लिए अभिदाय सरकार और उद्योगों द्वारा किए जा सकते हैं, चाहे वे अंतरराष्ट्रीय निगम हों या स्वदेशी उपक्रम (पब्लिक या प्राइवेट) हों। अभिदाय का परिमाण, उद्यम की खतरनाक प्रकृति के परिमाण और अन्य संबंधित बातों को ध्यान में रखते हुए, निकाला जा सकता है। निधि प्रकृति में स्थायी होनी चाहिए, जिससे कि पीड़ितों को तुरंत प्रभावी अनुतोष (राहत) प्रदान करने के लिए धन शीघ्रता से उपलब्ध हो सके। ऐसा करने से विलंब से बचा जा सकेगा और पीड़ितों को शीघ्र प्रभावी अनुतोष प्रदान किया जा सकेगा, जैसा कि प्रस्तुत मामले में हुआ है। अत: सरकार और संसद् को, इन सुझावों को ध्यान में रखते हुए, पारदेशीय निगमों पर संयुक्त राष्ट्र आचरण संहिता में यथाअंतर्दिष्ट अंतरराष्ट्रीय मानकों और मार्गदर्शक सिद्धांतों से संगत विधियां अधिनियमित करने के लिए तुरंत कार्यवाही करनी चाहिए।

139. यह मत व्यक्त करते हुए, मैं अपने विद्वान् बंधु मु० न्या० सव्यसाची मुखर्जी द्वारा प्रस्तावित आदेश से सहमति व्यक्त करता हूं।

सिविल अपीली अधिकारिता : 1988 की रिट याचिका सं० 258, जिसके साथ तीन रिट याचिकाएं और सुनी गईं।

संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका।

न्या० रंगनाथन् :

140. पांच वर्ष पूर्व एक राष्ट्रीय विपत्ति ने इस देश के मर्म को ही भेद दिया, जो परिमाण और खतरनाक प्रभावों में केवल हीरोशीमा और नागासाकी में परमाणु विस्फोटों द्वारा की गई तबाही से कुछ ही कम है। भोपाल में और उसके आसपास के अशिक्षित और निर्धन व्यक्तियों के जीवन और शरीर को विशाल बहुराष्ट्रीय निगम, यूनियन कार्बाइड कार्पोरेशन (यू० सी० सी०) की पूर्णत: स्वामित्वाधीन कंपनी, भोपाल स्थित यूनियन कार्बाइड (इंडिया) लि० (यू० सी० आई० एल०) के कारखाने में एक स्टोरेज टैंक से विषैली एम० आई० सी० गैस के निकलने के कारण अत्यधिक नुकसान हुआ। यू० सी० सी० से नुकसानी का दावा करते हुए, संयुक्त राज्य अमरीका में अनेक सिविल वाद फाइल किए गए तथा भारतीय न्यायालयों में भी उसके पश्चात् ऐसी ही मुकदमेबाजी शुरू की गई। निहित स्वार्थों द्वारा स्थिति का अनुचित लाभ उठाए जाने की आशंका को देखते हुए, भारत सरकार ने ऐसी मुकदमेबाजी के अनुक्रम को विनियमित करने के लिए भोपाल गैस विभीषिका (दावा-कार्यवाही) अधिनियम, 1985 (संक्षेप में जिसे अधिनियम कहा गया है) अधिनियमित किया। संक्षेप में, उसके द्वारा भारत सरकार को इस संबंध में संपूर्ण वाद (मुकदमेबाजी) के संचालन को अपने हाथ में लेने और अलग-अलग दावेदारों के स्थान पर या उनके सहयोग से उसका संचालन करने के लिए सशक्त किया गया। उसके द्वारा संघ को यू० सी० सी० और यू० सी० आई० एल० के साथ समझौता करने के लिए भी समर्थ बनाया गया। हमारे समक्ष वाली रिट याचिकाएं इस आधार पर इस कानून की संवैधानिकता को चुनौती देते हुए फाइल की गई हैं कि हमारे देश में खतरनाक कार्यकलाप चलाने के परिणामों के लिए बहुराष्ट्रीय निगम के विरुद्ध विधिक उपचार के अधिकार से दावेदारों को वंचित किए जाने से संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 21 के अधीन गारंटीकृत मूल अधिकारों का उल्लंघन होता है।

141. संयुक्त राज्य अमरीका के जिला न्यायालयों (डिस्ट्रिक्ट कोर्ट्स) के न्या० कीनन के समक्ष कतिपय कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप मुकदमेबाजी का स्थान बदल कर भारत में कर दिया गया है। संघ द्वारा भारत में फाइल किए गए मुख्य वाद (सिविल वाद सं० 1118/86) में भोपाल के विचारण न्यायालय द्वारा आदेश पारित किए गए, जिनमें यू० सी० सी० को, वाद के लंबित रहने तक, गैस दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को अंतरिम संदाय के रूप में 370 करोड़ रुपये (जो धनराशि मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा कम करके 250 करोड़ रुपये कर दी गई) जमा करने का निदेश किया गया। इस न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं, जिनमें यू० सी० सी० ने धनीय वाद में अंतरिम संदाय के लिए आदेश पारित करने की न्यायालय की अधिकारिता का प्रतिवाद किया, जबकि संघ ने यह अभिवचन किया कि उच्चतर अंतरिम संदाय मंजूर किया जाना चाहिए था। जब इस न्यायालय में मामले पर

बहस चल रही थी, तब संघ और यू० सी० सी० के बीच एक समझौता हुआ, जिसके अधीन संघ द्वारा 750 करोड़ रुपये की राशि, यू० सी० सी० के विरुद्ध गैस रिसाव की दुर्घटना के शिकार सभी व्यक्तियों के सभी दावों का पूर्ण निपटारा करते हुए, प्राप्त की गई है। संघ उन अभियोजनों को भी वापस लेने के लिए सहमत हो गया है, जो इस संबंध में यू० सी० सी० और यू० सी० आई० एल० के पदधारियों के विरुद्ध आरंभ किए गए थे। इस समझौते को इस न्यायालय का, तारीख 14 और 15 फरवरी, 1989 के उसके आदेशों में, अनुमोदन प्राप्त हुआ।

142. यह दुभाग्यपूर्ण बात है कि यद्यपि हमारे समक्ष वाली रिट याचिकाएं उस समय इस न्यायालय में लंबित थीं, न तो उनकी अंतर्वस्तुओं और न उसके उपबंधों के अनुसरण में समझौते पर विचार करने से पूर्व अधिनियम की विधिमान्यता के विवाद्यक पर विचार करने की आवश्यकता के तथ्य को न्यायपीठ की जानकारी में प्रभावी ढंग से लाया गया—ऐसा प्रतीत होता है—जिससे इस विषय पर समझौते के निबंधनों के अनुसार संपूर्ण मुकदमेबाजी समाप्त हुई। इस प्रकार समझौता- अनुमोदित कर दिया गया, जबकि अधिनियम की विधि-मान्यता का विवाद्यक, जिसके अधीन समझौता किया गया था, अविनिश्चित रहा। जब यह तथ्य उपर्युक्त न्यायपीठ की जानकारी में लाया गया, तो उसने इस संभावित आशंका से बचने के लिए इन रिट याचिकाओं को एक भिन्न न्यायपीठ के समक्ष रखे जाने का निदेश किया कि वही न्यायपीठ उस अनुमोदन के कारण, जो उसने संपन्न कार्य अर्थात् समझौते को दिया था, संबंधित विवाद्यक पर अपना मत व्यक्त करने में पक्षपात कर सकता है। इस प्रकार ये मामले हमारे समक्ष आए हैं।

143. सर्वप्रथम, याची, जिन्होंने घटना के शिकार व्यक्तियों के एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करने का दावा किया है, यू० सी० सी० के साथ किसी प्रकार का समझौता किए जाने के विरुद्ध है। उनके अनुसार, दांडिक कार्यवाही द्वारा यह सुनिश्चित करना महत्त्वपूर्ण है कि बहुराष्ट्रीय निगम विकासशील और अव-विकसित देशों में लोगों के जीवन से खिलवाड़ न करें तथा नुकसान के लिए मात्र प्रतिकर से ही संतुष्ट न रहा जाए और इस मामले में शुरू किए गए दांडिक अभियोजन जारी रखे जाने चाहिए थे। दूसरे, उनका यह मत है कि वह रकम, जिसके लिए दावों का निपटारा किया गया है, दान मात्र है और वह उस नुकसानी की रकम से कहीं कम है, जिसके लिए वे **मेहता वाले मामले**[1] में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित, पूर्ण, आत्यंतिक और दांडिक दायित्व के सिद्धांत के आधार पर हकदार हुए होते। तीसरे, उनकी यह शिकायत है कि इस न्यायालय द्वारा आदेश पारित किए जाने से पूर्व, अलग-अलग दावेदारों को या उनके समूहों को प्रस्तावित समझौते की बाबत अपने सुझाव या आक्षेप प्रस्तुत करने के लिए समर्थ बनाने हेतु कोई प्रचार नहीं किया गया। उनका यह कहना है कि नैसर्गिक न्याय के प्रारंभिक सिद्धांत का अनुपालन किए बिना, उनके हित की अनदेखी कर दी गई। उन्होंने यह दलील दी है कि ऐसे अधिनियम के उपबंध, जिसके द्वारा ऐसा समझौता संभव बनाया गया, संवैधानिक रूप से मान्य नहीं हो सकते हैं।

144. हमारे समक्ष दिए गए तर्क काफी व्यापक आधारों पर थे और उनमें अनेक विवाद्यक सम्मिलित किए गए तथा वे अनेक दिनों तक चले। यह न्यायपीठ कुछ विकट

---

1 [1986] 2 उम० नि० प० 765 = [1987] 1 एस० सी० आर० 819.

1989(12) eILR(PAT) SC 1

परिस्थिति में पड़ गया है, क्योंकि उसे एक विशेष रीति में अधिनियम के उपबंधों के कार्यान्वयन के संदर्भ में अधिनियम के उपबंधों की विधिमान्यता के प्रश्न पर निर्णय करना है, यद्यपि हम समझौते के गुणागुण के संबंध में कोई मत व्यक्त नहीं कर सकते (और ऐसा हम कर भी नहीं रहे हैं); हमसे इस प्रश्न पर विचार करने के लिए कहा गया है कि क्या ऐसा समझौता, संविधान के अधीन गारंटीकृत मूल अधिकारों की कसौटी पर परखते हुए, अधिनियम के सही और समुचित निर्वचन से संगत हो सकता है। मु० न्या० मुखर्जी ने विवाद्यकों की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की है, दी गई दलीलों पर विस्तारपूर्वक विचार किया है और एक विद्वत्तापूर्ण तथा विस्तृत निर्णय में अपने निष्कर्षों को अभिव्यक्ति दी है, जिसके प्रारूप का परिशीलन करने का हमें लाभ प्राप्त हुआ है। हमारे विद्वान् बन्धु न्या० सिंह ने भी अपने पृथक् निर्णय में कुछ पहलुओं पर प्रकाश डाला है। हम उनसे काफी सीमा तक सहमत हैं किंतु हम इस मामले में कुछ विवाद्यकों पर, विशेष रूप से ऐसे विवाद्यकों पर, जिनके संबंध में हमारा दृष्टिकोण कुछ भिन्न रहा है, कुछ शब्द कहना चाहेंगे।

145. अधिनियम की मान्यता से संबंधित विवाद्यक मुख्यत: अधिनियम की धारा 3 और 4 के अर्थान्वयन पर केंद्रित है। हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि इस तथ्य का कि समझौता हो गया है या उन परिस्थितियों का, जिनमें, या उस रकम का, जिसके लिए घटना के शिकार व्यक्तियों के दावों का निपटारा कर दिया गया है, निर्वचन के इस प्रश्न से कोई संबंध नहीं है और संदर्भ की पृष्ठभूमि प्रदान करने के रूप के सिवाय, जिसमें उक्त प्रश्न उद्भूत हुआ है, उन्हें बिल्कुल ही छोड़ दिया जाना चाहिए। अत: अब कानून और उसकी विवक्षाओं पर आने पर यह स्थिति बनती है। ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को, जिसे गैस रिसाव के परिणामस्वरूप नुकसान हुआ, उन व्यक्तियों से प्रतिकर का दावा करने के लिए अधिकार प्राप्त था, जो, उसके अनुसार, उसे कारित क्षति के लिए विधि की दृष्टि में दायी थे और उसे नुकसानी का दावा करने के अपने अधिकार को प्रवृत्त करने के उद्देश्य से किसी न्यायालय या प्राधिकरण के समक्ष वाद या कार्यवाही संस्थित करने का अधिकार प्राप्त था। घटनाओं के सामान्य अनुक्रम में, ऐसा दावेदार, जिसने वाद या कार्यवाही संस्थित की, उक्त वाद या कार्यवाही वापस लेने या ऐसा कोई समझौता करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र होता, जो वह उस संबंध में करना चाहता। धारा 3 द्वारा, निस्संदेह, दावेदार का यह अधिकार बिल्कुल ही छीन लिया गया है: (क) सिवाय धारा 3(3) के परंतुक में विनिर्दिष्ट सीमित विस्तार (परिमाण) तक; और (ख) धारा 4 के उपबंधों के अध्यधीन; क्योंकि इस धारा में स्पष्टत: यह कहा गया है कि केवल केंद्रीय सरकार को ही दावेदारों का, उनके दावों के प्रवर्तन के संबंध में सभी प्रयोजनों के लिए, प्रतिनिधित्व करने और उनके स्थान पर कार्य करने का अधिकार प्राप्त है, चाहे भारत के अंदर या भारत के बाहर, सर्वप्रथम हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि धारा 3 का मुख्य उपबंध (परंतुक और धारा 4 का विवरण छोड़ते हुए) कहां तक संविधान के अनुरूप हैं।

146. प्रथम प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या विधानमंडल का दावेदारों को अपने दावों को प्रवृत्त कराने और ऐसी रीति में अभियोजन चलाने के अधिकार और विशेषाधिकार से वंचित करना न्यायोचित है, जैसी कि वह उचित समझे, और क्या उनके स्थान पर अनिवार्यत: सरकार को प्रतिस्थापित करना न्यायोचित है। हम समझते हैं कि इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर हो सकता है। जैसा कि हमारे विद्वान् बंधु द्वारा उपदर्शित किया गया, स्थिति ऐसी थी

कि घटना के शिकार व्यक्तियों को संरक्षण की आवश्यकता थी क्योंकि उनका प्रतिपक्षी एक सशक्त बहुराष्ट्रीय निगम था और कार्यवाहियां काफी सीमा तक विदेश में शुरू की गई थीं, जहां मामले का संचालन मुकदमेबाजी की ऐसी पद्धति के अधीन विदेशी वकीलों को सौंपा गया था, जिससे यहां हम लोग बिल्कुल अपरिचित हैं। स्थिति की इस निपट वास्तविकता को देखते हुए, युक्तियुक्त रूप से यह दलील भी नहीं दी जा सकती है कि गैस रिसाव विभीषिका के शिकार अधिकांश व्यक्तियों को अपना प्रबंध स्वयं करने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए था और उन्हें केवल किसी-न-किसी प्रकार की कानूनी सहायता की ही व्यवस्था की जानी चाहिए थी। यहां यह याद रखना आवश्यक है कि, घटना के शिकार (से पीड़ित) सभी व्यक्तियों के दावे के मुख्य आधार (की पहचान) को ध्यान में रखते हुए, यदि एक भी शिकार व्यक्ति अपने वाद का संचालन करने के संबंध में सचेत नहीं भी था या उसने अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण से ही विवाद्यकों का मूल्यांकन करते हुए, कोई समझौता किया या डिक्री को स्वीकार कर लिया, तब भी ऐसे विनिश्चय या डिक्री से दुर्घटना से पीड़ित अन्य असंख्य व्यक्तियों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता था। वस्तुतः, ऐसा प्रतीत होता है कि दावेदारों के एक सैट और प्रतिपक्षी निगम के बीच समझौता प्रायः आसन्न था और वह कदाचित् हो भी जाता, यदि भारत सरकार समय से हस्तक्षेप न करती। व्यक्ति के अधिकारों के प्रवर्तन के लिए लड़ाई न केवल लंबी बल्कि बहुत श्रमसाध्य और खर्चीली होनी थी तथा विधानमंडल का यह विनिश्चय कि प्रतिपक्षी के विरुद्ध लड़ाई समेकित की जानी चाहिए और उसका संचालन भारत सरकार को सौंप दिया जाना चाहिए—कदाचित् यह बेहतर होता कि वह सरकार से स्वतंत्र किसी स्वायत्त निकाय को सौंप दिया जाता, जैसा कि हमारे विद्वान् बंधु ने उपदर्शित किया है, अपनाया गया मार्ग आपत्तिजनक भी नहीं था—कदाचित् ऐसा एकमात्र विनिश्चय था, जो विद्यमान परिस्थितियों में किया जा सकता था। वस्तुतः यह एक अजीब स्थिति है, जिसमें घटना के शिकार व्यक्तियों को यू० सी० सी० के विरुद्ध अपने अधिकारों का अधिकतम लाभ उद्भूत कराने के लिए, सरकार द्वारा प्रवृत्त कराने के लिए उस अधिकार को पक्षांतरित करके सहायता दी जानी पड़ी।

147. वस्तुतः हम नहीं समझते कि किसी विद्वान् काउंसेल ने हमारे समक्ष यह कहा कि विधानमंडल ने भारत सरकार को घटना के शिकार व्यक्तियों की ओर से लड़ाई लड़ने के उत्तरदायित्व को सौंप कर कोई गलती की है। एकमात्र शिकायत यह है कि इस प्रक्रिया में कानूनी कार्यवाही करने के उनके अधिकार को पूर्णतः नहीं छीना जाना चाहिए था और उन्हें समस्त कार्यवाहियों में भाग लेने की स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए थी। वस्तुतः, यद्यपि अधिनियम में यह अनुध्यात किया गया है कि केंद्रीय सरकार घटना के शिकार व्यक्तियों के स्थान पर पूर्णतः कार्य करेगी, केंद्रीय सरकार ने उन्हें वस्तुतः बिलकुल ही विस्थापित नहीं किया है। इस देश में लंबित सभी कार्यवाहियों में तथा न्या० कीनन के समक्ष सभी कार्यवाहियों में भी, भारत सरकार ने कार्यवाहियां संचालित की हैं किंतु घटना के शिकार अन्य व्यक्तियों को या उनमें से ऐसे व्यक्तियों को, जिन्होंने पक्षकार बन कर स्वयं को कार्यवाहियों से जोड़ना उचित समझा, कार्यवाहियों में भाग लेने से रोका नहीं गया। वस्तुतः, जैसा कि विद्वान् महान्यायवादी ने उपदर्शित किया है, वादार्थियों के एक समूह ने भोपाल स्थित विचारण न्यायाधीश को बहुत सहायता दी। किंतु यदि धारा 3 के उपबंधों का सावधानीपूर्वक अनुपालन किया भी गया होता और केंद्रीय सरकार से भिन्न सभी पक्षकारों के नाम इस देश में लंबित

वादों और कार्यवाहियों में पक्षकारों की सूची से निकाल भी दिए गए होते, तब भी हम नहीं समझते कि परिणाम वादार्थियों के हितों के लिए घातक होता। इसके विपरीत, उसके द्वारा वादार्थियों को यूनियन कार्बाइड कार्पोरेशन के विरुद्ध अपने अधिकारों का प्रयोग करने में केंन्द्रीय सरकार के पास उपलब्ध संपूर्ण विधिक विशेषज्ञता का फायदा अभिप्राप्त करने के लिए समर्थ बनाया गया। ऐसा प्रतिनिधित्व ऐसे सिद्धांत का अवलंब लेकर न्यायोचित ठहराया जा सकता है, जो 'पैरेंस पैट्आए' (संप्रभु संरक्षक) के सिद्धांत के सदृश है (यदि ठीक वही नहीं)। दुर्घटना के शिकार व्यक्ति को अपने एक मूल्यवान् अधिकार को त्यागने के लिए विवश किया गया है जिससे कि उसे उसकी सक्षमता की तुलना में और अधिक प्रभावी रूप से तथा संतोषजनक रूप से उसके फायदे के लिए उपयोग में लाया। निस्संदेह, यह संभव है कि ऐसा संपन्न दावेदार हो सकता है या उसके द्वारा ऐसा वकील नियुक्त किया जा सकता है, जो मुकदमे को बेहतर ढंग से लड़ने में सक्षम हो। यह संभव है कि वादार्थी के रूप में भारत सरकार उनकी दृढ़ता या सक्षमता से वाद चलाने में सक्षम हो या न हो, जितना कि ऐसा वादार्थी। किंतु इस प्रकार के मामले में किसी को भी ऐसी संभावना से भ्रांत नहीं होना चाहिए। संपन्न वादार्थियों की तुलना में निर्धन वादार्थी बहुत अधिक होते हैं। प्रबुद्ध वादार्थियों की तुलना में अशिक्षित वादार्थी बहुत अधिक होते हैं। ऐसे दावेदार बहुत कम होते हैं, जो मुकदमा लड़ने के लिए आवश्यक वित्तीय साधनों को प्राप्त करने में सक्षम हों। उनमें से बहुत ही कम इस देश में ऐसा मुकदमा चलाने में सक्षम होते हैं, विदेश में मुकदमा लड़ने की आवश्यकता का कहना ही क्या। यू० सी० आई० एल० की वित्तीय स्थिति, उस दावे के परिमाण के साथ तुलना करने पर, जो उद्भूत हो सकता था, नगण्य थी और, यद्यपि अंततः लड़ाई अपने ही देश में लड़ी जानी थी, संयुक्त राज्य अमरीका में आरंभिक और अंतिम कार्यवाहियों का अवलंब संभव था, वस्तुतः वह अनिवार्य भी था। ऐसी स्थिति में, विधान-मंडल का घटना के शिकार व्यक्तियों की इस विधान द्वारा सहायता करना और केंद्रीय सरकार से दावों से संबंधित सभी प्रयोजनों के लिए घटना के शिकार व्यक्तियों के स्थान पर स्वयं को प्रतिस्थापित करके उत्तरदायित्व संभालने के लिए कहना पूर्णतः न्यायोचित था। यदि अधिनियम में घटना के शिकार व्यक्तियों के स्थान पर भारत सरकार के पूर्ण प्रतिस्थापन का उपबंध किया भी गया होता और यदि उन्हें किसी रीति में अपने अधिकार का प्रयोग करने से प्रवारित भी किया गया होता, तब भी कदाचित् यह दलील दी जा सकती थी कि उन्हें इस प्रकार वंचित करना व्यापक लोकहित में आवश्यक था।

148. किंतु अधिनियम की अंतर्वस्तु उतनी कठोर नहीं है। वस्तुतः, जैसा कि हमने इससे पूर्व कहा है, याचियों की शिकायत यह नहीं है कि सरकार को इस मुकदमे में डोमिनस लाइटस (वाद-नियंत्रक) के कृत्य सौंपे गए थे। उनकी दलील यह है कि मुकदमे का संपूर्ण उद्देश्य और प्रयोजन दावेदारों के हितों का संवर्धन करना है, जिससे कि उन्हें और अधिक शक्ति से यू० सी० सी० से लड़ाई लड़ने के लिए समर्थ बनाया जा सके और समय धन तथा विधिक सहायता की सीमाओं को दूर करने में सहायता दी जा सके तथा उन्हें हुए नुकसान से यथासंभव संगत अधिकतम प्रतिकर ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय सम्मान और प्रतिष्ठा के अनुरूप प्रतिकर भी दिलाया जा सके। यह सुझाव दिया गया है कि सरकार को प्रदत्त शक्ति का इस प्रकार अर्थान्वयन किया जाना चाहिए कि वह इस प्रमुख उद्देश्य द्वारा नियंत्रित है। यह कहा गया है कि ऐसी स्थिति में दावेदारों को उनके अधिकारों से वंचित किया जाना केवल तभी

युक्तियुक्त होगा, यदि दावेदारों के अधिकार सरकार द्वारा अनुपूरित किए जाते हैं, नष्ट नहीं।

149. उक्त तर्क को सही मान लेने से, धारा 3(3) के परंतुक और धारा 4 के उपबंधों से इस दलील का उत्तर मिल जाता है। धारा 3 के मुख्य भाग में अंतर्विष्ट उपबंध भारत सरकार को दावेदारों का प्रतिनिधित्व करने हेतु दावा करने और उनकी ओर से वाद या कार्यवाही का संचालन करने के लिए समर्थ बनाने हेतु पर्याप्त हो सकता है, जबकि भारत से बाहर अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व अन्य दावेदारों द्वारा फाइल किए गए वादों में भारत सरकार का अधिकार स्वभावतः मामले की जांच करने वाले न्यायालय के विवेकाधिकार पर निर्भर करेगा। इसलिए धारा 3 के उपबंध में भारत सरकार के, न्यायालय या प्राधिकरण की अनुज्ञा के अधीन ऐसी कार्यवाहियों में घटना के शिकार व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने और उनके स्थान पर कार्य करने के, अधिकार का उपबंध किया गया है, जहां कार्यवाहियां लंबित हैं। निस्संदेह, ऐसे न्यायालय को इस बात की छूट कि वह केंद्रीय सरकार को दावेदारों को विस्थापित करने के लिए भी अनुज्ञा दे सकता है यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अधिनियम का प्राधिकार उसे ऐसा करने के लिए समर्थ बनाने के लिए पर्याप्त है। प्रस्तुत मामले में, यह सामान्य आधार है कि न्या० कीनान के समक्ष कार्यवाहियां विभिन्न दावेदारों के साथ-साथ केंद्रीय सरकार द्वारा चलाई जा रही थीं। न केवल न्या० कीनान ने इन कार्यवाहियों में भारत सरकार के सहयोग को अनुज्ञात किया बल्कि भारत सरकार को उक्त कार्यवाहियों के संचालन में भी हस्तक्षेप करने का सारभूत अधिकार प्राप्त था।

150. पुनः, धारा 4 में यह आदेश किया गया है कि धारा 3 में किसी बात के होते हुए भी किसी दावे के संबंध में किसी व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करने या उसके स्थान पर कार्य करने में, केंद्रीय सरकार किसी ऐसे विषय का सम्यक् ध्यान रखेगी, जिस पर ऐसे व्यक्ति द्वारा अपने दावे के संबंध में जोर दिया जाना अपेक्षित है। उसमें यह उपबंध भी किया गया है कि यदि ऐसा व्यक्ति ऐसी वांछा करे तो ऐसे व्यक्ति के व्यय पर उसके दावे से संबंधित किसी वाद या अन्य कार्यवाही का संचालन करने में उसकी पसंद के किसी विधि-व्यवसायी को सहयुक्त होने की अनुज्ञा देगी। दूसरे शब्दों में, यद्यपि, कदाचित्, ठीक-ठीक कहें तो, धारा 3 के अधीन केंद्रीय सरकार स्वयं घटना के शिकार व्यक्ति को या उसके विधि-व्यवसायी को कार्यवाहियों में भाग लेने से पूर्णतः प्रवारित कर सकती है (सिवाय भारत से बाहर लंबित वादों में), धारा 4 द्वारा घटना के शिकार व्यक्तियों के अधिकारों का सारतत्व अविकल रखा गया है। उसके द्वारा सरकार को उस सीमा तक, जिस तक वे उसकी प्रस्थापना करने में समर्थ हैं, अलग-अलग दावेदारों से सहायता प्राप्त करने के लिए समर्थ बनाया गया है और वस्तुतः उसे ऐसा करने के लिए बाध्य भी किया गया है। यदि घटना के शिकार किसी व्यक्ति का या उसके कानूनी सलाहकार का ऐसा कोई विनिर्दिष्ट पहलू है, जिस पर वह जोर देना चाहता है, तो केंद्रीय सरकार उस पर विचार करेगी। पुनः, यदि कोई दावेदार स्वयं अपने खर्च से अपनी पसंद के विधि-व्यवसायी को बनाए रखता है तो ऐसे विधि-व्यवसायी को, उसके दावे से संबंधित किसी वाद या कार्यवाही के संचालन में सरकार के साथ सहयुक्त किया जाना होगा। इस प्रकार धारा 3 और 4 दोनों में, समुच्चयित रूप से, कमजोर, अशिक्षित, असहाय और गरीब लोगों के हित तथा उन व्यक्तियों के हित भी सुरक्षित रखे गए हैं, जो अपनी व्यवस्था इस अधिनियमिति

1989(12) eILR(PAT) SC 1

की सहायता के बिना भी कर सकते थे। इस प्रकार परिकल्पित समुच्चय (उक्त दोनों धाराओं का) द्वारा सरकार को घटना के शिकार ऐसे व्यक्तियों या उनके क़ानूनी सलाहकारों की पूर्ण सहायता से विदेशी प्रतिपक्षी से लड़ाई लड़ने के लिए समर्थ बनाया गया है, जो ऐसी कोई सहायता देने की स्थिति में हैं। यद्यपि धारा 3 द्वारा दावेदारों को ऐसे वादों या कार्यवाहियों में नाम से पक्षकारों (ई० ओ० नोमिनी) के फायदे से वंचित किया गया है, तथापि धारा 4 द्वारा उनके लिए उन सब चीजों को सारभूत रूप से परिरक्षित रखा गया है, जो वे स्वयं अपनी ओर से कार्यवाही करके प्राप्त कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं अपनी ओर से विधिक कार्यवाही करने के अधिकार से दावेदारों को यदि वंचित रखा गया है, तो दूसरी ओर, उसके द्वारा उन अधिकारों को परिरक्षित रखा गया है, जिनका प्रयोग परोक्ष रूप से किया जाएगा। अतः, हमारी राय में, धारा 3 और 4 को संयुक्त रूप से पढ़ने पर यह दर्शित होता है कि दावेदारों को किसी समुचित न्यायालय के समक्ष समुचित कार्यवाहियों में नुकसानी के लिए अपने दावों को प्रवृत्त कराने के अधिकार से वस्तुतः पूर्ण रूप से वंचित नहीं किया गया है। केवल इस अधिकार पर निर्बंधन ही अधिरोपित किया गया है, जो परिस्थितियों को देखते हुए, पूर्णतः युक्तियुक्त और न्यायोचित है। अतः अधिनियम की विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती।

151. अगला दृष्टिकोण, जिससे उक्त उपबंध की विधिमान्यता को चुनौती दी गई है, यह है कि सरकार को समझौता करने के लिए समर्थ बनाने वाला उपबंध विधिसम्मत नहीं है। इस संबंध में यह तर्क दिया गया है : विधान के उद्देश्य की केवल उस स्थिति में ही पूर्ति की जा सकती है, यदि उसके द्वारा सरकार को और अधिक प्रभावी रूप से अभियोजन चलाने के लिए अनुज्ञात किया जाता है, उस स्थिति में नहीं यदि उसके द्वारा सरकार को उसे वापस लेने या समझौता करने के लिए समर्थ बनाया जाता है। उनके अनुसार, अधिनियम में इस महत्त्वपूर्ण पहलू के संबंध में घटना के शिकार निर्धन व्यक्तियों को निराश किया गया है। अधिनियम द्वारा सरकार को समझौता करने के लिए प्रदत्त प्राधिकार, ऐसा कहा गया है, दावेदारों के प्रतिकर के अधिकारों के पूर्ण निषेध की कोटि में आता है और उसका इस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है कि उससे ऐसे अधिकार पूर्णतः महत्वहीन हो सकते हैं, जैसा कि वस्तुतः, ऐसा कहा गया है, इस मामले में हुआ है।

152. हमें यह प्रतीत होता है कि यह दलील गलतफहमी पर दी गई है, यह सामान्य ज्ञान की बात है कि किसी मुकदमे का संचालन करने के लिए दी गई कोई प्राधिकारिता तब तक प्रभावित नहीं हो सकती जब तक कि इसके साथ उस मुकदमे को, यदि परिस्थितियों में ऐसा करना आवश्यक हो, वापस लेने या उसमें समझौता करने की प्राधिकारिता भी साथ में न दी गई हो, ऐसे महत्व के मुकदमे की सनक और जटिलता की पूर्ण रूप से प्रत्याशा नहीं की जा सकती। इस बात की भी संभावनाएं थीं कि मुकदमा काफी लंबा लड़ा जाता और उसका दुखद परिणाम निकलता। इस बात की संभावनाएं थीं कि यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन अपनी ओर से या संबद्ध सरकार के आग्रह पर आहत व्यक्तियों को पर्याप्त प्रतिकर देने की इच्छुक होता। इस बात की भी संभावना थी जो न्यायमूर्ति कीनन के समक्ष साक्ष्य से पहले ही स्पष्ट हो चुकी थी कि उक्त कार्यवाहियां अंत में बातचीत से तय किए गए समझौते पर समाप्त होती। कोई भी व्यक्ति यह देख सकता है कि प्रकाशित इतने अधिक महत्व के या अत्यधिक

विभीषिका के अधिकांश मामलों में कार्यवाहियां समझौता में समाप्त होती हैं और ऐसा समझौता ऐसे मुकदमे द्वारा कारित लंबी यंत्रणाओं को दूर करने के लिए होता है। इसलिए मुकदमे को केवल इसलिए अयुक्तियुक्त नहीं माना जा सकता कि किसी वाद या अन्य कार्यवाहियों को संस्थित करने के अधिकार के साथ यह अधिनियम सरकार को कार्यवाहियों को वापस लेने या कोई समझौता करने की भी शक्ति प्रदान करता है।

153. सुनवाई के दौरान इन कार्यवाहियों के संचालन का भार सौंपने और वस्तुत: न्यायालय से बाहर समझौता करने की शक्ति केंद्रीय सरकार को सौंपने के विधायी प्रज्ञान (विधिमान्यता) के बारे में आशंकाएं व्यक्त की गई थीं। यह दलील दी गई थी कि केंद्रीय सरकार स्वयं एक संयुक्त अपकृत्य कर्ता है (इसलिए कुछ पीड़ित व्यक्तियों द्वारा इसके विरुद्ध वाद फाइल किया गया है) और संदेय प्रतिकर की रकम को न्यूनतम रखने में (पीड़ित व्यक्तियों के विपरीत) उसका भी हित है जिससे एक संयुक्त अपकृत्यकर्ता के रूप में अपने दायित्व को कम किया जा सके। हमें यह प्रतीत होता है कि यह दलील भ्रमयुक्त है जैसा कि मुख्य न्यायमूर्ति मुखर्जी द्वारा उल्लेख किया गया है, भारत संघ गैस रिसाव द्वारा प्रभावित व्यक्तियों में से स्वयं एक व्यक्ति है और अब आहत व्यक्तियों से बिल्कुल ही अलग यूनियन कार्बाइड से प्रतिकर के लिए उसने दावा किया है। मामले को इस दृष्टि से देखने पर भारत संघ भी उसी स्थिति में है जिसमें अन्य पीड़ित व्यक्ति हैं और यूनियन कार्बाइड के साथ मुकदमे में स्वयं के लिए और अन्य आहत व्यक्तियों के लिए संभव अधिकतम प्रतिकर की रकम अभिप्राप्त करने में उसका प्रत्येक हित है। इसलिए इन परिस्थितियों में भारत संघ ही सबसे उत्तम अभिकरण है जो अपनी ओर से और अन्य आहत व्यक्तियों की ओर से यूनियन कार्बाइड से अच्छी तरह मुकदमा लड़ सकता है। इस सुझाव का कि भारत संघ एक संयुक्त अपकृत्यकर्ता है, विद्वान् महान्यायवादी द्वारा बलपूर्वक प्रतिरोध किया गया है। किंतु यह मानते हुए भी कि इस मामले में भारत संघ का भी कुछ उत्तरदायित्व है, हम इस बारे में ऐसी कोई बात देखने में असमर्थ हैं कि भारत संघ यूनियन कार्बाइड के साथ कम परिनिर्धारण करके किस प्रकार लाभ या फायदा प्राप्त कर सकता है। जैसा कि मुख्य न्यायमूर्ति मुखर्जी द्वारा इस निर्णय में वाद में उल्लेख किया गया है, इस अधिनियम में और उसके अधीन स्कीम में उद्देश्य के लिए और इस त्रासदी से पीड़ित व्यक्तियों को संदेय नुकसानी की रकम के न्यायिकवत निर्धारण के लिए उपबंध किए गए हैं। सुनवाई के दौरान व्यक्त भय के लिए कोई भी आधार नहीं है कि सरकारी अधिकारी वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकेंगे और प्रतिकर की रकम काटने का प्रयास करेंगे जिससे यूनियन कार्बाइड से प्राप्त रकम से देय प्रतिकर की रकम अधिक न हो सके। यह एक सामान्य आधार है और वास्तव में विद्वान् महान्यायवादी ने निष्पक्ष रूप से यह स्वीकार किया है कि यूनियन कार्बाइड के साथ समझौता केवल यूनियन कार्बाइड और यू० सी० आई० एल० के ही विरुद्ध दावों का अंत करता है और किसी भी रूप में भारत संघ, मध्य प्रदेश राज्य या उसके मंत्रियों या अधिकारियों के विरुद्ध, यदि उन्हें सलाह दी जाती है, कार्यवाहियां करने के आहत व्यक्तियों के अधिकारों को, यदि कोई है, किसी भी रूप में प्रभावित नहीं करता। यदि भारत सरकार या उसके अधिकारी संयुक्त अपकृत्यकर्ता है, जैसा कि अभिकथन किया गया है, तो भारत संघ को यूनियन कार्बाइड के विरुद्ध दावों का कम रकम पर परिनिर्धारण करके कोई लाभ नहीं मिलेगा। इसके विपरीत यूनियन कार्बाइड के विरुद्ध

दावों का यथासंभव ऊंचे रकम पर परिनिर्धारण करने में उसका हित होगा जिससे एक संयुक्त अपकृत्यकर्ता के रूप में अपने दायित्व को उसी के अनुरूप कम कर सके। इसलिए इस विधान में जहां तक इसका संबंध मुकदमे का संचालन ही नहीं करना बल्कि उसमें यदि वह उचित समझे, परिनिर्धारण करने की जिम्मेदारी सौंपने का है, हमें कोई भी कमी दिखाई नहीं देती।

154. इस दलील के लिए भी कोई आधार नहीं है कि यह अधिनियम दावेदारों को समझौते के लिए किसी प्रस्ताव पर अपनी राय व्यक्त करने का उचित अवसर दिए बिना समझौता करने की शक्ति देता है। धारा 4 के अधीन अपने सुझाव पेश करने के दावेदार के अधिकार या वाद का संचालन करने पर किसी विधि व्यवसायी को अपने विचार व्यक्त करने के लिए प्रतिनिधित्व करने के अधिकार निश्चित रूप से उस वाद या अन्य कार्यवाहियों से संबंधित प्रत्येक कार्यवाही करने के अधिकार तक विस्तारित है। यदि कार्यवाहियों के दौरान किसी समझौते या परिनिर्धारण का कोई प्रश्न उद्भूत होता है तो उसका विरोध करने की दावेदारों को स्वतंत्रता है और केंद्रीय सरकार से समझौते पर पहुंचने में विनिर्दिष्ट पहलुओं पर विचार करने का अनुरोध करने की स्वतंत्रता है। दावेदारों को किसी विधि व्यवसायी को नियोजित करने की भी स्वतंत्रता है जो परिनिर्धारण के प्रस्तावों पर अपनी राय व्यक्त कर सके। इस अधिनियम के उपबंधों को पढ़ने पर यह स्पष्ट है कि वह प्रत्येक दशा में दावेदारों के अधिकारों की पूर्ण संरक्षा की गारंटी देते हैं। इसके सिवाय कि वे स्वयं वाद फाइल नहीं कर सकते, अपनी शिकायतों को दूर कराने के उनके अधिकारों को इस अधिनियम के उपबंधों द्वारा न्यून नहीं किया गया है। इस अधिनियम की धारा 3 और 4 को उचित रूप से पढ़ने पर हमारी राय में उसके उद्देश्य और कारणों पर प्रकाश पड़ता है जिनकी वजह से संसद् को इस विधान को अधिनियमित करने के लिए विवश होना पड़ा। किसी भी रूप में इन दावेदारों के अधिकारों को न्यून करने की बजाय इन उपबंधों में ऐसे शब्द प्रयोग किए गए हैं जिससे सरकार संसाधनों की अधिकतम रकम के लिए मुकदमे का संचालन कर सके और वह सभी सहायता इन दावेदारों को पहुंचा सके जो उसके बस में है जिससे यह मुकदमेबाज और दावेदार इस मुकदमे में सकारात्मक भाग ले सके।

155. किंतु तब यह दलील दी गई कि आहत व्यक्तियों को इस मामले में पेश किए गए समझौते के प्रस्तावों पर न्यायालय द्वारा उन समझौतों का अनुमोदन किए जाने से पहले विचार करने का अवसर प्रदान नहीं किया गया था। इस पहलू पर बाद में विचार किया गया है।

156. हमारे समक्ष एक दलील यह दी गई थी कि यूनियन कार्बाइड और यू० सी० आई० एल० उनके औद्योगिक क्रियाकलापों द्वारा कारित नुकसान के लिए जनता के प्रति केवल विशुद्ध उत्तरदायित्व के आधार पर ही नहीं बल्कि इस आधार पर भी उत्तरदायी हैं कि उनके विरुद्ध अधिनिर्णीत नुकसान में एक दांडिक उत्तरदायित्व भी शामिल होना चाहिए और इस पर समझौते के प्रस्ताव का अनुमोदन करते समय इस पर ध्यान नहीं दिया गया है। इस संदर्भ में एम० सी० मेहता के मामले के प्रति निर्देश किया गया है। इस तथ्य को उक्त समझौते में गणना में लिया गया था अथवा नहीं, एक मूल प्रश्न है। मुख्य न्यायमूर्ति मुखर्जी ने उल्लेख किया है और हम भी इस बात से सहमत हैं कि यह एक विधि

की अनिश्चित स्थिति है और इस बारे में इस समय कहना समयपूर्व है कि इस देश में इस मापदंड को स्वीकार किया गया है या स्वीकार किया जाएगा अथवा नहीं, इस अन्तरराष्ट्रीय स्वीकृति के बारे में कहने की आवश्यकता नहीं है, जो किसी अन्य देश में वे ऐसे मापदंड के आधार पर पारित डिक्री के निष्पादन के समय उद्भूत होना चाहिए। दूसरे क्या समझौते में इस तथ्य को विचार में लिया गया था यदि नहीं तो क्या इस मापदंड को विचार में न लेने में गलत है, ऐसे प्रश्न हैं जो समझौते के गुणत्व से संबंधित हैं जिनसे हमारा संबंध नहीं है। इसलिए हम यह महसूस करते हैं कि इस पहलू पर हमें कोई विचार व्यक्त नहीं करना चाहिए। हमें यह प्रतीत होता है कि यह दलील देना कष्ट कल्पित है कि इस अधिनियम के वे उपबंध जो भारत संघ को एक समझौता करने के लिए सशक्त करते हैं, असंवैधानिक होने की वजह से अभिखंडित कर दिए जाएं क्योंकि उनका भारत संघ द्वारा इस प्रकार निर्वचन किया गया है जिससे वह ऐसा समझौता करने में समर्थ हो गया है।

157. दलील यह है कि यह अधिनियम समझौता करने के लिए केंद्रीय सरकार को समर्थ बनाने वाली शक्ति और विवेकाधिकार प्रदान करता है किंतु इस बारे में कोई भी मार्ग-दर्शन या संकेत अधिकथित नहीं करता कि कौन से प्रक्रम पर या किन परिस्थितियों में समझौता किया जा सकता है या किस प्रकार का समझौता किया जा सकता है; प्रदत्त शक्ति को अमार्गदर्शित, मनमानी और असरणीबद्ध होने के कारण अभिखंडित किया जाना चाहिए। इस दलील को स्वीकार करना मुश्किल है। किसी मुकदमे का, विशेषत: इस प्रकार के किसी मामले में संचालन करने की शक्ति तभी प्रभावी होगी जबकि उसके साथ किसी भी प्रक्रम पर मामले में समझौता करने की शक्ति भी अनिवार्य रूप से उसके साथ दी गई हो। उन परिस्थितियों की कोई विस्तृत सूची कानूनी रूप से उपबंधित करना असंभव है जो उन निबंधनों के आधार पर किसी समझौते को न्यायोचित करती हो जिन पर कोई समझौता किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त इस अधिनियम को इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों का संचालन करने में केंद्रीय सरकार को अमार्गदर्शित या मनमाना विवेकाधिकार प्रदान करने वाला नहीं कहा जा सकता। इस अधिनियम की उद्देशिका से पर्याप्त मार्गदर्शन प्रकट होते हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि अधिनियम का उद्देश्य और प्रयोजन गैस रिसाव से पीड़ित व्यक्तियों के लिए शीघ्रतया और प्रभावी उपचार आभिनिश्चित करना है तथा इस अधिनियम के अनुसरण में किए गए सभी कार्य इस अधिनियम के उद्देश्य को कार्यान्वित करने के लिए होने चाहिए। किसी विशेष समझौते द्वारा इस उद्देश्य को प्राप्त कर लिया गया है अथवा नहीं, एक भिन्न प्रश्न होगा। किंतु इसके साथ ही यह कहना भी असंभव है कि यह अधिनियम स्वयं अभिकथित कारण से दोषयुक्त है। इसीलिए हम अपनी ओर से यह स्पष्ट करना आवश्यक समझते हैं कि हमें मेहता के मामले में व्यक्त मतों पर अपनी कोई राय व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है और ऐसा करने के लिए वह समझना भी नहीं चाहिए।

158. श्री शांति भूषण ने, जिन्होंने इस अधिनियम की विधिमान्यता के बारे में केंद्रीय सरकार की दलील का समर्थन किया है, इसके उपबंधों के बारे में अपना समर्थन सशर्त दिया है कि उस त्रासदी के परिणामस्वरूप पीड़ित व्यक्तियों के भरण-पोषण और अन्य आवश्यकताओं के लिए अंतरिम राहत का केंद्रीय सरकार का उत्तरदायित्व है। जब तक कि

1989(12) eILR(PAT) SC 1

उनकी ओर से फाइल किए गए वादों का सुनिश्चित परिणाम नहीं निकलता। आधुनिक कल्याणकारी राज्य का ऐसी विपत्ति में पीड़ित व्यक्तियों को मदद और सभी प्रकार की सहायता देने का उत्तरदायित्व है। ऐसी दलील देने का कोई अर्थ नहीं है। तथ्यतः जैसा कि विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति ने उल्लेख किया है इस अधिनियम के उपबंध और इस अधिनियम के अधीन स्कीम पीड़ित व्यक्तियों को अंतरिम राहत दिए जाने की परिकल्पना करती है इसलिए इस मुद्दे पर इस अधिनियम में कोई भी बात आपत्तिजनक नहीं है। तथापि हमारे विद्वान् साथी ने श्री शांति भूषण द्वारा दी गई दलील को स्वीकार कर लिया है जो एक कदम और आगे बढ़ गई थी कि यह अधिनियम जब तक असंवैधानिक नहीं होगा जब तक कि इसे अधिनियम में अंतर्निहित 'मुख्य अस्पष्ट वायदे' के साथ न पढ़ा जाए। हमें इस बारे में संदेह है कि यह दलील उसके पीछे परिकल्पना को न्यायोचित करती है अर्थात् श्री शांति भूषण के शब्दों में यदि पीड़ित व्यक्तियों को स्वयं अपना बचाव करने के लिए छोड़ दिया गया होता तो उन्हें यूनियन कार्बाइड से तत्काल प्रतिकर प्राप्त करने का एक सामान्य अधिकार होता और चूंकि इस विधान ने इस संबंध में उनके अधिकारों को केंद्रीय सरकार में निहित कर दिया है इसलिए इस अधिनियम का अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि यह अधिनियम केंद्रीय सरकार पर अंतरिम राहत उपलब्ध कराने के लिए दायित्व दर्शाता है। यद्यपि हम इस बात को पुनः दोहराते हैं कि ऐसी दशा में अपनी प्रजा की दशा सुधारने के लिए अंतरिम राहत देना राज्य का एक अनिवार्य दायित्व है और न कि मनुष्योचित जीवन की जरूरतें जैसा कि न्यायमूर्ति कीनन ने मत व्यक्त किया है इसलिए हम यह सोचते हैं कि इस प्रकार का दायित्व एक कल्याणकारी राज्य होने की वजह से पैदा होता है और इस बात के होते हुए भी कि यह कानून इस बारे में कुछ उपबंध करता है या नहीं, हमारी राय में इस अधिनियम की विधिमान्यता अंतरिम संदाय करने के लिए सुव्यक्ततः या विवक्षित रूप से उपबंधित करने पर निर्भर नहीं करती। हम ऐसा दो कारणों से कह रहे हैं। प्रथमतः यह एक मूल प्रश्न था और शायद अब भी है कि अपकृत्य में क्षति के लिए वाद फाइल करने वाला कोई वादी किसी डिक्री की प्रत्याशा में अग्रिम राशि या अंतरिम संदाय का हकदार होता है? वास्तव में यह मुख्य मुद्दा था जिस पर इस मामले में इस न्यायालय के समक्ष अंतिम आदेशों को चुनौती दी गई थी और घटित घटनाओं के संदर्भ में यह प्रश्न अब भी अनिर्णीत बना रहा। यहां पर वर्णन किया जा सकता है कि हमारी जानकारी में ऐसा कोई भी विनिश्चित मामला नहीं लाया गया है जिसमें इस देश में अपकृत्य के किसी मामले में कार्यवाही के निपटारे के लंबित रहने के दौरान अंतरिम संदाय का कोई आदेश दिया गया हो। भले ही ऐसे किसी मामले में अंतरिम संदाय का आदेश करने के लिए एक ठोस आधार हो सकता है किंतु किसी पूर्ण और विस्तृत विचार-विमर्श के अभाव में यह नहीं माना जा सकता कि पीड़ित व्यक्ति ऐसे संदाय के सामान्य और तत्काल अधिकार के हकदार हो गए हैं। दूसरे ऐसे अधिकार की विधिमान्यता को मानते हुए भी जो कुछ कहा जा सकता है वह यह है कि ऐसे राज्य को जिसने स्वयं को पीड़ित व्यक्तियों के स्थान पर रख लिया हो, वाद में ऐसे अंतरिम प्रतिकर के लिए मांग करनी चाहिए—जिसके लिए इस मामले में ऐसा किया गया है—और उस प्रतिकर को जो प्रतिवादियों से प्राप्त किया जा सके, पीड़ित व्यक्तियों में बांटा जाना चाहिए। यह अधिनियम दूषित होता यदि इसमें सरकार द्वारा ऐसे प्रतिकर के संदाय के लिए उपबंध नहीं किया गया होता भले ही यह हो सके कि वाद

में आहत व्यक्तियों के अधिकार पर अपने को प्रतिस्थापित करने से जो कुछ उत्तरदायित्व निकलता है उससे अधिक उस पर अधिरोपित करना है जैसा कि हम इस बात से सहमत हैं कि यह अधिनियम और इसके अधीन स्कीम आहत व्यक्तियों के लिए अंतरिम राहत की परिकल्पना करती है। यह मुद्दा शायद पूर्ण रूप से शैक्षणिक हैं। किंतु हम यह महसूस करते हैं कि यह वर्णन करना चाहिए कि हम इस मामले के इस पहलू पर मुख्य न्यायमूर्ति मुखर्जी से पूर्ण रूप से सहमत नहीं है।

159. एक और अन्य महत्त्वपूर्ण मुद्दा जिस पर हमारे समक्ष विस्तार में विचार किया गया था, समझौता या परिनिर्धारण के लिए इस अधिनियम द्वारा अधिकथित प्रक्रिया के बारे में इस अधिनियम की विधिमान्यता के संबंध में था। यह दलील दी गई थी कि यदि इस मामले को प्रतिनिधि-वाद के रूप में मान लिया जाए तो प्रस्थापित समझौते के पीड़ित व्यक्तियों को किसी उचित रीति में सूचना दिए बिना समझौता या परिनिर्धारण करना संभव नहीं होगा और उन्हें इस समझौते पर अपनी राय व्यक्त करने का अवसर प्रदान किए बिना भी संभव नहीं होगा (सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 नियम 3-ख के अनुसार)। यह दलील इस प्रकार है कि अधिनियम की धारा 4 या तो इन उपबंधों में रक्षोपायों का उपबंध करती है जिनमें कोई भी समझौता इस अधिनियम की भावना का पालन किए बिना किया जाए और यदि ऐसा नहीं है तो ये उपबंध इस अधिनियम के अतिक्रमणकारी होंगे या यदि यह अधिनियम अतिक्रमणकारी नहीं है तो उस दशा में धारा 4 के उपबंध दूषित हो जाएंगे क्योंकि ये उपबंध इस देश की सामान्य विधि द्वारा स्थापित मूलभूत नियमों के असंगत या अपकर्षी होने के कारण पीड़ित व्यक्तियों के अधिकारों का मनमाने रूप से वंचन करना संभव कर देते हैं। हम यह दृष्टिकोण अपनाने के लिए आनत हैं कि इस अधिनियम के अधीन लाए गए वादों को सिविल प्रक्रिया संहिता में प्रकल्पित प्रतिनिधि कार्यवाही की श्रेणी में लाना संभव नहीं है। यह अधिनियम कार्यवाहियों के उस वर्ग के बारे में है जो स्वतः सक्षम है और जिसके लिए धारा 4 में एक विशेष तरीका निर्धारित किया गया है। यह अधिनियम व्यष्टिक दावेदारों को वाद फाइल करने के उनके अधिकार से वंचित करता है और केंद्रीय सरकार में निहित करता है। भारत के भीतर वादों के संबंध में केंद्रीय सरकार एकमात्र वादी है और अन्य दावेदारों में से किसी को भी वादी या प्रतिवादियों के रूप में परिकल्पित नहीं किया गया है। उस त्रासदी से पीड़ित व्यक्ति काफी अधिक संख्या में हैं इसलिए उनको वाद फाइल करने के प्रक्रम पर कभी परिभाषित नहीं किया गया और न उनको समझौते के प्रक्रम पर परिभाषित करने की आवश्यकता है। इस मुकदमे का संचालन राज्य द्वारा अपनी हैसियत में किया गया है और वह प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक के अनुरूप है। अविभक्त हिन्दू कुटुंब के कर्ता द्वारा किसी मुकदमे की दशा में या ऐसे प्रतिपाल्य के फायदे के लिए किसी संरक्षक द्वारा मुकदमे की दशा में जो विधितः अक्षम है जैसे किसी परिवार के कनिष्ठ सदस्य या प्रतिपाल्य, उनसे कोई समझौता करने से पहले सहमति लेना आवश्यक नहीं है। ऐसे मामलों में न्यायालय उक्त समझौते की संवीक्षा करने के लिए ऐसे व्यक्तियों के संरक्षक के रूप में कार्य करता है और इस बारे में अपना समाधान करता है कि यह समझौता सभी संबद्ध व्यक्तियों के सर्वोपरि हित में है। यदि बाद में यह पता चलता है कि कोई कपट या दुरभिसंधि की गई है तो परिवार के कनिष्ठ सदस्यों या प्रतिपाल्यों को यह स्वतंत्रता होती है कि वे कर्ता या संरक्षक से हिसाब मांगे और उसके अलावा अन्य आकस्मिकताओं में उक्त समझौता प्रभावी और आबद्धकारी होगा। इसी तरह प्रभुत्व संपन्न

1989(12) eILR(PAT) SC 1

संरक्षक के रूप में केंद्रीय सरकार को ऐसा कोई समझौता करने की जिसे वह अपने हित में सर्वोपरि समझती है और न्यायालय का उस पर अनुमोदन प्राप्त करने की स्वतंत्रता होगी।

160. तथापि यह महसूस करते हुए कि इस मुकदमे को असंख्य पीड़ित व्यक्तियों की ओर से और उनके फायदे के लिए सही रूप से लड़ा गया है यद्यपि उसमें दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की पूर्णत: शनाख्त नहीं की गई है, इस अधिनियम में व्यष्टिक दावेदारों को एक निश्चित कार्य सौंपने की आवश्यकता समझी है और यह धारा 4 से प्रकट होता है। यह धारा यह निदेश देती है—

> "(i) केंद्रीय सरकार किसी ऐसे विषय का सम्यक् ध्यान रखेगी, जिस पर ऐसे व्यक्ति द्वारा अपने दावे के संबंध में जोर दिया जाना अपेक्षित है; और
>
> (ii) यदि ऐसा व्यक्ति वांछा करे तो ऐसे व्यक्ति के व्यय पर, उसके दावे से संबंधित किसी वाद या अन्य कार्यवाही का संचालन करने में उसकी पसंद के किसी विधि-व्यवसायी को सहयुक्त होने की अनुज्ञा देगी।"

यह उपबंध पर्याप्त रूप से दुर्घटना के शिकार प्रत्येक व्यक्ति के हितों की रक्षा करता है। यह प्रत्येक आहत व्यक्ति को केंद्रीय सरकार की जानकारी में किसी विशेष बात या परिस्थितियों को लाने के लिए समर्थ बनाता है जिसे वह किसी ऐसे मामले में दलील देता और यदि ऐसा कोई तथ्य केंद्रीय सरकार की जानकारी में लाया जाता है तो वह उसे गणना में लेने के लिए बाध्य है। दोबारा व्यष्टिक दावेदारों को कार्यवाहियों का संचालन करने में राज्य के काउंसेल की सहायता करने के लिए अपने स्वयं का काउंसेल नियोजित करने की स्वतंत्रता है। यदि इस मामले में वाद सामान्य रूप में चलाया जाता तो डिक्री के प्रक्रम पर या समझौते के प्रक्रम पर भी दावेदार प्रगतियों की बराबर जानकारी रखते और कानूनी उपबंध यह अभिनिश्चित करने के लिए अधिक पर्याप्त होते कि सभी दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों की राय न्यायालय में पेश की गई है। कोई भी परिनिर्धारण या समझौता न्यायालय द्वारा किसी दावेदार द्वारा पेश किए गए मतों का मूल्यांकन किए बिना नहीं किया जा सकता था। कानून में यह उपबंध किया गया है कि यद्यपि भारत संघ इस वाद में मुकदमे का स्वामी होगा फिर भी दुर्घटना के शिकार सभी व्यक्तियों के हित और उनके दावों में इंगित सीमा तक कार्यवाहियों में उनको सुने जाने का अवसर प्रदान करके सुरक्षित रखे जाने चाहिए। इस कानून का यह उपबंध उन वादों को लागू होने में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1 नियम 8 और आदेश 23 नियम 3(ख) के सिद्धांत को स्वीकार करता है यद्यपि दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के भाग लेने की सीमा तक यह उपबंध विधान में वर्णित उपबंध से कुछ भिन्न है फिर भी इसमें परिस्थितियों में संभव सीमा तक नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत को निगमित किया गया है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि इस कानून में इस आधार पर कोई त्रुटि है जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, कि यह दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को अपने विचार व्यक्त करने के अवसर से इनकार करता है या समझौते के द्वारा वाद का निपटारा करने में अपना प्रभावी पक्षकथन पेश करने में उनका अहित करता है।

161. जैसा कि हमने देखा है, इस मामले में दैवीय/आपातिक परिस्थितियों के कारण कुछ कठिनाई उत्पन्न हुई है अर्थात् समझौते की बातचीत शुरू से ही की गई और न्यायालय

में अंतरिम संदाय के लिए एक आदेश के विरुद्ध फाइल की गई अपील की सुनवाई में उसका अनुमोदन कर दिया गया। यद्यपि इस घटना के आरंभ से ही समझौते की बातचीत शुरू हो गई थी फिर भी यह कहा गया है कि उस समय बड़ा आश्चर्य हुआ जब उस समझौते को फरवरी, 1989 में न्यायालय में पेश किया गया। यह बिल्कुल ही सत्य नहीं है। यह उल्लेख किया गया है कि उस समय भी जब अंतरिम अनुतोष से संबंधित विवाद्यक पर निचले न्यायालयों में विचार-विमर्श किया गया था, संपूर्ण मुकदमे का समझौता करने का प्रयास किया गया था। इस समझौते के बारे में दावेदारों को जानकारी थी और वे यह प्रत्याशा कर सकते थे और उन्हें करनी चाहिए थी कि इस न्यायालय में भी ऐसे ही प्रयास किए जाएंगे। यद्यपि कुछ पक्षकारों ने विचारण न्यायालय में कार्यवाहियों के संचालन में सहायता की थी और विचारण न्यायाधीश ने उन कार्यवाहियों में उनके योगदान को स्वीकार किया था तथा वे उच्चतम न्यायालय में सुनवाई पर नजर रखने में सतर्क नहीं रहे और शायद वे इस धारणा में रहे कि इस न्यायालय में अपील केवल अंतरिम अनुतोष की मात्रा के ही संबंध में है। पक्षकारों का एक ग्रुप इस न्यायालय में हाजिर हुआ था किंतु उन्होंने इस प्रार्थना के अलावा कि उनको इस रकम में से उनका हिस्सा तत्काल संदाय किया जाना चाहिए जो यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन द्वारा इस समझौते के अनुसरण में इस न्यायालय से जमा किया जाएगा, अपनी ओर से दलील देने के लिए हाजिर होने का प्रयत्न नहीं किया कि समझौते की रकम पर्याप्त नहीं थी। या उस समझौते में कतिपय सुसंगत विचारणाओं को विचार में नहीं लिया गया था। केंद्रीय सरकार ने इस उपधारणा में कार्यवाही की गई प्रतीत होती है कि वह प्रभुत्वसंपन्न संरक्षक के रूप में तथा न्यायवादी की शक्तियों की दृष्टि में जो उसे अनेक दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों से प्राप्त हुई थी, इस मुकदमे में कार्यवाही कर सकती थी। यद्यपि इस दावे की शुद्धता का हमारे समक्ष प्रतिरोध किया गया है। समझौते के निबंधनों के वर्णन और न्यायालय द्वारा उनके अनुमोदन के बीच एक दिन का अंतराल था। शायद न्यायालय प्रस्थापित समझौते को अखबारों में रेडियो और दूरदर्शन पर अधिक प्रचार-प्रसार कर सकती थी और समझौता करने से पहले कुछ समय भी ले सकती। यदि ऐसा करने के लिए यह किया जाता कि ऐसे अन्य भी मुद्दे हो सकते हैं जो जनता से प्राप्त हो सकें। तथापि इस अधिनियम में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों को अपनी बात कहने का पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराया गया है यदि वे या उनके द्वारा विचारण न्यायालय में नियुक्त काउंसेल इस न्यायालय में की कार्यवाहियों के संपर्क में रहते तो वे निश्चित रूप से अपना पक्षकथन पेश कर सकते थे। यदि ऐसी कोई भावना उत्पन्न हुई है कि उनकी भावना को पूर्ण रूप से नहीं सुना गया है तो यह त्रुटि इस कानून की नहीं है बल्कि जब इस न्यायालय में अंतरिम आदेश के विरुद्ध अपील की सुनवाई की जा रही थी तब समझौते को अंतिम रूप देने में सहायक गतिविधियों के कारण थी।

162. एक दृष्टिकोण यह था जिस पर बहस के दौरान काफी बल दिया गया था कि इस तरह के मामले में अपराधी पक्षकारों के साथ देश की दंड विधि के अधीन शक्ति से बरता जाना चाहिए और समझौते के एक भाग के रूप में दांडिक अभियोजन को वापस लेने के निबंधन को शामिल करना पूर्णतः अनावश्यक था और इससे यह समझौता दोषपूर्ण हो गया है। मुख्य न्यायमूर्ति मुखर्जी द्वारा यह उल्लेख किया गया है और हम भी उनसे सहमत हैं। यह अधिनियम यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन या यूनियन कार्बाइड इंडिया लि० या अन्य के विरुद्ध गैस रिसाव द्वारा कारित नुकसानी के लिए सिविल दायित्व और कार्यवाहियों के बारे में ही

1989(12) eILR(PAT) SC 1

है। इस कांड में अंतर्वलित किसी भी पक्षकार के दांडिक उत्तरदायित्व के बारे में इस अधिनियम में कुछ नहीं कहा गया है। इसलिए स्पष्टतः समझौते के इस भाग में एक ऐसा निबंधन है जो इस अधिनियम के परिक्षेत्र से बाहर है। इसलिए इस अधिनियम की विधिमान्यता पर इस आधार पर आक्षेप नहीं किया जा सकता कि इसमें अपचारियों के दांडिक कार्यवाहियों को वापस लेने के लिए अनुज्ञात किया गया है और उनके विरुद्ध कार्यवाहियां वापस नहीं ली जानी चाहिए थीं। उक्त समझौते पर पहुंचने में इस पहलू पर विचार किया जा सकता था अथवा नहीं और उस समझौते में यह निबंधन शामिल किया गया है अथवा नहीं, एक ऐसा प्रश्न है जो समझौते की बिधिमान्यता से संबंधित है। यह प्रश्न हमारे समक्ष किए गए निर्देश के निबंधनों के बाहर है और इसलिए हम इस संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं।

163. हमारे समक्ष इस बारे में एक प्रश्न उद्भूत हुआ था कि क्या वास्तवित समझौता, यदि वह कानूनी उपबंध नहीं है, इस आधार पर अपास्त किए जाने के दायित्वाधीन है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का स्पष्टतः उल्लंधन किया गया है। इसलिए उक्त समझौते का गुणागुण हमारे समक्ष विवाद में नहीं था और हम इस बारे में कुछ नहीं कहते कि पुनर्विलोकन याचिका की सुनवाई करने वाले न्यायपीठ के हाथ उस पुनर्विलोकन आवेदन पर आदेश पारित करने से जिन्हें वह उचित समझते, अशक्त हैं या बंध जाने चाहिए जो पहले ही फाइल किया जा चुका है।

164. यथापि यह मत व्यक्त करते समय कि हमें निर्देशित प्रश्न केवल अधिनियम की विधिमान्यता तक सीमित है और समझौते की विधिमान्यता से उसका संबंध नहीं है, हमारे विद्वान् बंधु ने मामले के इस पहलू पर भी आनुषंगिक रूप से विचार किया है। उसने यह उल्लेख किया है कि वास्तव में न्याय किया गया है और किसी समझौते के लिए सुसंगत सभी तथ्यों और पहलुओं पर विचार किया गया है। उसने यह उल्लेख किया है कि याचियों की इस शिकायत को कि इस न्यायालय के आदेश ने समझौते के लिए कोई आधार नहीं दिया है, 4 मई, 1989 को विस्तृत कारण देते हुए पारित आदेश द्वारा दूर करने की ईप्सा की गई थी। इससे यह दर्शित होता है कि न्यायालय ने समझौते के निबंधनों पर आंकड़ों तथा न्यायालय के समक्ष रखी गई सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पूर्ण रूप से विचार किया था और उसका यह समाधान हो गया था कि प्रस्थापित समझौता एक निष्पक्ष और युक्तियुक्त समझौता है जिसका अनुमोदन किया जा सकता है। इस तरह की कार्यवाहियां न्यायालय का अनुमोदन अऋजु समझौतों को रोकने के लिए एक सही मायने में सेफ्टीवाल्व है और वस्तुस्थिति यह है कि उस देश के सर्वोच्च न्यायालय में इस मामले पर पूर्ण रूप से विचार किया गया है और समझौते पर अनुमोदन की मुहर लगाने के लिए उचित समझा गया है। उसने यह भी उल्लेख किया है कि इस तरह के मामले में विनिश्चयोत्तर सुनवाई का कोई लाभ नहीं होगा। उसने आगे यह उल्लेख किया है कि इस मामले में एक पुनर्विलोकन याचिका पहले ही फाइल की जा चुकी है और वह सुनवाई के लिए सूचीबद्ध हो गई है। न्यायालय ने 4 मई, 1989 के अपने आदेश में पहले ही यह आश्वासन दिया है कि उसे ऐसे किसी भी मामले पर विचार करने में बड़ी प्रसन्नता होगी जो समझौते के निबंधनों पर विचार करने में विचार से निकल गए थे। इन परिस्थितियों में क्या यह कहा जा सकता है कि इसमें न्याय की असफलता हुई है जो हमें इस समझौते को

1989(12) eILR(PAT) SC 1

मूल अधिकारों का पूर्णतः उल्लंघन करने के रूप में अपास्त करने के लिए विवश करता ? मु० न्या० मुखर्जी ने यह उल्लेख किया है कि इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक होना चाहिए। यह दलील दी गई थी कि यह धारणा है कि 'न्याय केवल किया ही नहीं जाना चाहिए बल्कि न्याय किया गया प्रतीत भी होना चाहिए' सूक्ति का पूर्णतः पालन नहीं किया गया है और शायद उस सुनवाई का और अधिक प्रचार और प्रसार किया गया होता तो कोई अन्य तथ्य और पहलू प्रकाश में आता जिन पर इससे भी अच्छा समझौता किया जा सकता था या कतई कोई समझौता नहीं किया जाता। उस धारणा पर अधिक प्रकाश डाला जा सकता था और इस न्यायालय के समक्ष लंबित पुनर्विलोकन याचिका की सुनवाई के समय उस कमी को पर्याप्त रूप से पूरा किया जा सकता था इस बात का उल्लेख मुख्य न्यायमूर्ति मुखर्जी द्वारा किया गया है। यद्यपि हम प्रथमदृष्टया इस बात से उनसे सहमत हैं कि इसके ठोस कारण हैं कि उक्त समझौते को इस आधार पर अपास्त क्यों नहीं कर दिया जाए कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया है और उन व्यवहारिक जटिलताओं के अतिरिक्त जो ऐसे किसी आदेश के परिणामस्वरूप उद्भूत हो सकती हैं, हम समझौते की विधिमान्यता के बारे में कोई अंतिम राय व्यक्त नहीं करना चाहते किंतु यह याचियों को विधि में अनुज्ञेय सीमा तक इस न्यायालय के समक्ष लंबित पुनर्विलोकन याचिका में इस बात को उठाने की स्वतंत्रता देते हैं।

165. एक और अन्य पहलू बाकी है जिसका हम इस संदर्भ में उल्लेख कर सकते हैं। इस अधिनियम की स्कीम यह है कि एक तरफ भारत संघ यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन और यूनियन कार्बाइड इंडिया लि० के विरुद्ध मुकदमा करेगा और दूसरी ओर उस त्रासदी के शिकार सभी व्यक्तियों से यह प्रत्याशा की गई है कि वे विहित प्राधिकारी के समक्ष अपने दावे फाइल करें और ऐसे प्राधिकारी से वे अपने प्रतिकर के दावों का अवधारण कराए। याचियों की ओर से इस संबंध में अधिनियमित कानूनी उपबंधों में कुछ कमियों का उल्लेख किया गया था। हमारे विद्वान् साथी ने इन पहलुओं पर विचार किया है और यह अभिनिश्चित करने के लिए पर्याप्त निदेश दिए हैं कि घटना के शिकार व्यक्तियों के दावों पर न्यायिकवत प्राधिकारी द्वारा विचार किया जाएगा और उसके विरुद्ध ऐसे अधिकारी को अपील भी होगी जिसके पास न्यायिक अर्हताएं हैं। (क्षतियों की प्रकृति को सारिणीबद्ध करके प्रतिकर की रकम का कार्यपालिका द्वारा अनियंत्रित रूप से तय किया जाता है)। इस रीति से इस अधिनियम के अधीन स्कीम अनेक दावेदारों को संदेय प्रतिकर के उचित निर्धारण के लिए उपबंधित करती है। उसके लिए दावे पहले ही फाइल किए जा चुके हैं और इनकी संवीक्षा की जा रही है और उन पर कार्यवाही की जा रही है। इस बारे में सही तस्वीर कि क्या प्रतिकर की वह रकम जिसके लिए दावों को निपटाया गया है, अल्प या पर्याप्त और अधिक है, केवल उसी प्रक्रम पर प्रकट होगी जब सभी दावों पर कार्यवाही की जा चुकी होगी और उनकी कुल रकम निर्धारित कर दी जाएगी। इन परिस्थितियों में हम यह महसूस करते हैं कि प्रतिकर की रकम के बारे में विनिश्चयोत्तर सुनवाई से कोई भी प्रयोजन हल नहीं होगा और समझौते के लिए उसे पर्याप्त समझने से भी कोई लाभ नहीं होगा।

166. इन कारणों से 14-15 फरवरी, 1989 के आदेशों में इस आधार पर विशेषकर पुनर्विलोकन याचिका के लंबन को ध्यान में रखते हुए हस्तक्षेप करना सही और उचित प्रतीत नहीं होता कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं किया गया है।

1989(12) eILR(PAT) SC 1

167. अपना निष्कर्ष देने से पहले हम इस देश की अपकृत्य विधि की स्थिति के बारे में कुछ शब्द जोड़ना चाहेंगे। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले हमारे देश का ग्रेट ब्रिटेन के साथ सहयोजन होने के कारण हमें सामान्य विधि (कामन ला) के सिद्धांत लागू होते थे। अपकृत्य के क्षेत्र में इंग्लैंड के कामन ला में ऐसे किसी व्यक्ति के आश्रितों या वारिसों द्वारा कोई भी कार्यवाही नहीं की जा सकती थी जिसकी मृत्यु किसी अन्य व्यक्ति के अपकृत्यकारी कार्य द्वारा हुई थी और वह इस सूक्ति 'कार्यवाही का व्यक्तिगत अधिकार व्यक्ति की मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है' पर आधारित था, यद्यपि उसी घटना में क्षतिग्रस्त व्यक्ति उसके साथ की गई गलती के लिए नुकसानी का दावा कर सकता था। इंग्लैंड में 1846 के फैटल एक्सीडैंट्स ऐक्ट को पारित करके इस स्थिति में सुधार कर दिया गया था और जिसे लार्ड कैंपबैल के अधिनियम के नाम से जाना जाता था। उसके तत्काल पश्चात् भारतीय विधानमंडल ने भी 1855 का घातक दुर्घटना अधिनियम अधिनियमित कर दिया। यह अधिनियम 1946 के इंगलिश ऐक्ट के ही समान था। यद्यपि इंगलिश ऐक्ट में सारभूत रूप से परिवर्तन कर दिए गए थे किंतु हमारी विधि वैसी ही बनी रही और वह अप्रचलित प्रतीत होने लगी। गैस रिसाव विभीषिका का परिमाण आंखें खोल देने वाला है जिसमें सैकड़ों जानें गईं और हजारों अपंग हो गए और पशुओं, पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं, कारबार और संपत्ति के नुकसान के बारे में तो कहना ही क्या। देश को इस अभिघातज अनुभव से और कम से कम भविष्य के लिए रक्षोपाय विकसित करने के लिए सबक सीखना चाहिए। हमारी यह राय है कि शताब्दियों पुराने उस विधान पर नए रूप में विचार करने का समय आ गया है जो आधुनिक संकल्पना में बिल्कुल ही व्यर्थ हो गया।

168. जबकि ऐसी बृहत मात्रा की विभीषिकाओं को रोकने के लिए उपाय ढूंढने का कार्य वैज्ञानिकों, तकनीशियनों का हो सकता है फिर भी विधि को भी ऐसे अपकृत्य कार्यों से पीड़ित व्यक्तियों के लिए प्रभावी और शीघ्र उपचार उपबंधित करने होंगे। घातक दुर्घटना अधिनियम के सीमित और निर्बंधित रूप में लागू होने के कारण यह अधिनियम ऐसी चुनौती का सामना करने के लिए उपयुक्त नहीं है। इसलिए हमारी यह राय है कि पुराने अप्रचलित अधिनियम में प्रबल संशोधन किए जाने चाहिए या ऐसा कोई विधान अधिनियमित किया जाना चाहिए जिसके अंतर्गत अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित मुद्दों से संबद्ध उचित उपबंध अंतर्विष्ट हों--

"(i) किसी विहित न्यायालय द्वारा दावों के अंतिम न्यायनिर्णयन के लंबित रहने के समय दोषरहित दायित्व के आधार पर किसी नियत अधिकतम प्रतिकर का संदाय (जैसा कि मोटरयान अधिनियम के अधीन);

(ii) समुचित मामलों में अंतरिम राहत प्रदान करने के लिए विनिर्दिष्ट शक्ति के साथ विशेष न्यायालय का सृजन;

(iii) ऐसे न्यायालय द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का विकास जो दावों के शीघ्र अवधारण में सहायक होगी और उन औपचारिकताओं को दूर करना जो नियमित न्यायालयों में कार्यवाहियों के साथ लगी हुई हैं; तथा

(iv) ऐसे ख़तरनाक क्रियाकलापों में लगे कारखानों और समुत्थानों को तृतीय पक्षकार जोखिम के विरुद्ध अनिवार्य बीमा कराना आवश्यक बनाने हेतु उपबंध।"

169. जो कुछ हमने ऊपर कहा है उसके अतिरिक्त हम यह और कहना चाहेंगे कि एक औद्योगिक विभीषिका निधि (इसको कोई भी नाम दिया जा सकता है) के सृजन के लिए हमारे विद्वान् साथी न्या० के० एन० सिंह द्वारा की गई प्रस्थापना गंभीर रूप से विचार किए जाने योग्य है। हम उनकी इस प्रस्थापना का भी पृष्ठांकन करते हैं कि केंद्रीय सरकार को यह सलाह दी जाती है कि भविष्य में वह पारदेशीय कंपनी को इस देश में कारबार करने के लिए अनुज्ञा देने से पहले कतिपय रक्षोपायों पर बल दे। कम से कम निम्नलिखित दो निदेशों पर ऐसे रक्षोपायों की आवश्यकता पर प्रस्तुत मामले में प्रकाश डाला गया है—

"(क) श्री गर्ग ने यह अभिकथन किया है कि भोपाल गैस संयंत्र में प्रक्रिया/संक्रिया को इस तरह गुप्त रखा गया था कि न तो प्राण घातक गैस के संयोजन के बारे में जो उस संयंत्र से निकली थी, और न उचित विष निवारक की इस देश में किसी भी व्यक्ति को जानकारी नहीं थी। जिसके परिणामस्वरूप उसके प्रभाव को कम करने के लिए उठाए गए कदमों में विलंब ही नहीं हुआ बल्कि वे पूर्णतः अपर्याप्त और निष्प्रभावी हो गए थे। यह आवश्यक है कि इस प्रकार की स्थिति को दूर किया जाए। इसलिए सरकार को, जब वह पारदेशीय कंपनी को इस देश में अपने उद्योग स्थापित करने के लिए अनुज्ञप्ति प्रदान करे, उस उद्योग में अंतर्वलित प्रक्रिया की प्रकृति की जानकारी प्राप्त करने के अधिकार पर जोर देना चाहिए जिससे दुर्घटना की स्थिति में शीघ्र कदम उठाए जा सकें।

(ख) अब हमने इस मामले में यह देखा है कि इस मामले के शिकार व्यक्ति इस तथ्य के कारण अत्यधिक रूप ने विकलांग (असहाय) हो गए हैं कि अपकृत्यकर्ता एक बहुराष्ट्रीय कंपनी की समनुषंगी कंपनी है जिसकी भारत में आस्तियां इस विभीषिका से उत्पन्न दावों की तुष्टि करने के लिए पूर्णतः अपर्याप्त हैं। इसलिए या तो अंतरराष्ट्रीय सहमति के द्वारा या पारस्परिक विधान द्वारा ऐसे कदम उठाने की आवश्यकता है जिसे इन अड़चनों को दूर किया जा सके और यह अभिनिश्चित किया जा सके : (i) कि इस देश में कोई उद्योग स्थापित करने की ईप्सा करने वाले विदेशी निगम इस देश में अपकृत्यकारी कार्यों के लिए कार्यवाहियों की बाबत भारत के न्यायालयों की अधिकारिता में अपने को प्रस्तुत करने के लिए सहमत हों; (ii) कि ऐसे निगम का उत्तरदायित्व उसकी उन आस्तियों तक ही सीमित न हो जो इस देश में पाई जाएं (या इससे संबद्ध कंपनी की आस्तियों) बल्कि दुर्घटना के शिकार व्यक्ति उस निगम की उन सभी आस्तियों तक अपनी पहुंच रख सके जो संसार के किसी भी कोने में हों; (iii) कि अपने देश की विधि के सम्यक् प्रक्रिया के दौरान भारतीय न्यायालयों से अभिप्राप्त किसी भी डिक्री का विदेशी निगम और इसके समनुषंगी कंपनी के विरुद्ध निष्पादन किया जा सके और अन्य देशों में कार्यवाहियों की अड़चन के बिरुद्ध उनकी आस्तियों के विरुद्ध डिक्री का निष्पादन किया जा सके।"

1989(12) eILR(PAT) SC 1

170. हमारे विद्वान् साथी न्या० के० एन० सिंह ने इस संदर्भ में बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए यूनाइटेड नेशन्स कोड आफ कंडक्ट (संयुक्त राष्ट्र संघ आचार संहिता) पर विस्तार में विचार किया है, जिसका अनेक देशों द्वारा अनुमोदन किया जाना है। हम यह उम्मीद करते हैं कि इस तरह की विपदाएं जैसी कि इस देश में घटित हुई हैं, निकट भविष्य में ऐसे मामलों पर अंतरराष्ट्रीय संहिता की शीघ्र स्वीकृति के लिए उत्प्रेरित करेंगी।

171. इन मतों के साथ हम विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा प्रस्थापित आदेश से सहमत हैं।

रा०